मुक्तिपथ

लेखक

इलाचन्द्र जोशी

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

जालंधर और इलाहाबाद

[मूल्य ५।)

प्रकाशक—

इन्द्रचन्द्र नारंग

हिन्दी-भवन

३१२ रानी मंडी

इलाहाबाद

पहला संस्करण—जनवरी १९५०

दूसरा संस्करण—अक्टूबर १९५१

मुद्रक—

ंग

भवन मुद्रणालय

३१२ रानी मंडी

इलाहाबाद

मुक्तिपथ

पहला परिच्छेद

आज तीन-चार दिन बाद सूरज के दर्शन हुए थे । पहाड़ में घनी बर्फ गिरने की खबर अखबारो में छप चुकी थी । लखनऊ में भी काफी जाड़ा पड़ रहा था । इसलिए धूप बहुत प्यारी मालूम हो रही थी । राजीव अमीनाबाद पार्क में एक बेंच पर बैठकर धूप खा रहा था और अलस भाव से मूँगफलियाँ तोड़-तोड़कर खाता जा रहा था । उसका शरीर न इकहरा था न दुहैरा । संतुलित कद का, अच्छा गठा हुआ सा लगता था । रंग उसका गोरा था । दाढ़ी के काले-काले घुँघराले बालों से मुँह ढका था । सिर के बड़े-बड़े बाल रूखे और बिना संवारे थे । उसकी आँखों में कभी निर्विकार, उदासीन भाव झलकता था, कभी वे एक अज्ञात तीव्र आवेग से प्रदीप्त हो उठती थीं । उसकी घनी काली भवें उसकी आँखों की रहस्यमयता में थोड़ा बहुत पर्दा अवश्य डाल देती थीं, फिर भी उनकी अर्द्धस्फुट व्यंजना काफी प्रभावोत्पादक जान पड़ती थी । उसकी लंबी नाक का सिरा कुछ गोलाई लिये हुए था । पर वह गोलाई का परिस्फुटन कुछ ऐसा विचित्र था कि ऐसा जान पड़ता था जैसे वह किसी अपरिचित व्यक्ति को ललकार कर किसी भेद भरे प्रश्न से अप्रतिभ करने के लिए सब समय तत्पर है । कुल मिलाकर

उसकी मुखाकृति में एक ऐसी विशेपता वर्तमान थी जिसकी अवज्ञा बिरला ही कोई जड़ व्यक्ति कर पाता हो। गौर से देखने पर उसकी उम्र तीस-बत्तीस के करीब जान पड़ती थी, पर सरसरी नजर से देखने पर काफी कम मालूम होती थी।

पार्क की घड़ी में दो बज चुके थे। चौराहे पर अखबार बेचने वालों ने बड़ा शोर-मचा रखा था। इक्कों और ताँगों की खड़खड़ाहट और मोटरो के गर्जन से कानो के पर्दे फटे जाते थे। पार्क के अगल-बगल के रास्तों में लोग व्यस्त भाव से आते-जाते थे। दुकानो में खासी भीड़ लगी हुई थी। ये सब दृश्य देख-देखकर राजीव का जी मचल-मचल उठता था। वह सोच रहा था कि ये सब अखबार बेचनेवाले, गाड़ी हाँकनेवाले, मोटर चलाने वाले, दुकानदार, सौदा खरीदनेवाले, रास्तो पर पैदल चलनेवाले इतनी व्यस्तता क्यो जता रहे हैं? जैसे ब्रह्मा की सारी सृष्टि का भार इन्हीं लोगो के सिर पर आ पड़ा हो! जैसे एक पल के लिए भी यदि ये लोग अपनी व्यस्तता त्याग दें तो सारी सृष्टि का काम बंद होकर प्रलय ही हो जाय! कितना भयंकर ढोंग है! कैसा घृणित ढकोसला है! सोचते-सोचते समस्त ढोंगी समाज के प्रति एक प्रचंड घृणा के भाव से उसकी आत्मा जर्जरित हो उठी। पास ही एक दूसरे बेंच पर एक आदमी सोया हुआ था और एक निश्चित ताल और लय से खर्राटे भर रहा था। एक तीसरी बेंच पर दो आदमी हाथ पाँव फैलाकर आलस्य के साथ अधलेटी अवस्था में बैठे हुए सामने वाले फुटपाथ की ओर निर्विकार भाव से देख रहे थे। इन लोगों

को देखकर अकारण ही उसका जी भर आया और एक निराली ही करुणा का-सा भाव उसके हृदय को गुदगुदाने लगा। उसे ऐसा लगा कि ये आलसी आदमी भी कर्म-चक्र मे उसी की तरह निर्दयता के साथ पिस जाने पर, संसार के कठोर लौह-नियमों से पैरों-तले रौंदे जाने पर इस कर्महीन पार्क में आकर विरक्त भाव से शून्य को आलिंगन कर रहे हैं।

दूसरे ही क्षण उसकी विचार-धारा फिर पलट गई। वह सोचने लगा, इन सब इस्पात की तरह कड़े नियमों के मूल परि-चालक हैं कौन ? कौन ऐसी माया है जिसने इन लोगो के हाथो में इतनी बड़ी ताकत की कुंजी दे दी है ? क्या सचमुच एक अदनी-सी चीज़ रुपये के भीतर इतनी बड़ी शक्ति छिपी हुई है ? या रुपये वालो के संगठन मे ? स्वार्थ, ढोग और झूठ ! ये तीन मूल शक्तियॉ उस संगठन की जड़ें निरंतर मजबूत करने में लगी है, और इन तीनो के सम्मिश्रण से एक इतना बड़ा मायाजाल फैला दिया गया है जिसकी आड़ मे बड़े-बड़े राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय 'आदर्शों' के ढकोसले रचे जा रहे हैं—जनहित, दलितोद्धार, महामानव का विकास, ये सब मानवता के इन पंडों द्वारा रचित अत्यंत घृणित प्रकार के ढोग नही तो और क्या हैं ! सब झूठ है ! सब स्वार्थियों के हथकण्डे है ! सब धूर्तता का विश्व-व्यापी चक्रजाल है ! सोच-सोचकर वह दॉतो को पीसने लगा।

उसकी मूँगफलियाँ खत्म हो चली थी। पास ही एक खोमचे-वाला पुकार रहा था—"लैया करारी।" जेब से दो पैसे निकाल-कर वह उसके पास गया और लैया खरीदकर पार्क के किनारे-

किनारे, सड़क के लगे-लगे खाता हुआ टहलने लगा। एक दूसरा खोमचेवाला चिल्ला रहा था—"मजे बादाम के हैं।" उसके पास दो पैसे और बचे थे। उनकी मूँगफलियाँ खरीदकर उन्हें कुर्ते की जेब मे डालकर वह फिर टहलने लगा। जब लैया निःशेप हो चुकी तो वह फिर से मूँगफलियाँ तोड़ तोड़कर खाने लगा। वह खाता हुआ टहल रहा था. और अनमने भाव से बाहर रास्ते मे लोगो का आना-जाना देख रहा था। एक फिटन दिखलाई दी। उस पर दो सुन्दरी युवतियाँ बैठी थी। इनमें से एक के सिर का पल्ला नीचे खिसका हुआ था। वह अत्यंत मधुरता के साथ मुसकराकर अपनी मद-भरी आँखों से बार-बार बिना किसी संकोच के राजीव की ओर देख रही थी। राजीव का सर्वांग उस मदमाती युवती को देखकर, न जाने क्यों, एक उत्कट घृणा और अपरिसीम वितृष्णा के भाव से कंटकित हो उठा।

अचानक रास्ते में किसी साँप को जाते हुए देखकर जिस प्रकार एक अव्यक्त भय और घृणा के मिश्रित भाव से शरीर के रोएँ भी खड़े हो जाते हैं, पर, साथ ही, आँखें भी उसी की ओर जा गड़ती हैं, राजीव का भी ठीक वही हाल हो रहा था। उस संकोचहीन, नागिन सी जूड़ा लटकाये हुए रमणी की तरफ से वह आँखें भी नहीं फिरा सकता था और साथ ही अरुचि के भाव को दबाने में अपने को असमर्थ महसूस कर रहा था। जब तक फिटन आँखो से ओझल न हो गई, वह उसी ओर ताकता रहा।

फिटन के अंतर्धान हो जाने पर वह सोचने लगा—यह

कैसा अनोखा आचरण है! संसार की प्रति पल की दिल दहलाने वाली हाय-हाय के प्रति उदासीन होकर, निस्संकोच भाव से मुसकराते हुए, किसी युवक पर अपनी आँखो के मद के प्रभाव की परीक्षा में रत रहना क्या किसी तरुणी के पक्ष में न्यायोचित है? उस सुन्दरी के मुख पर आत्म-तृप्ति का घृणित विलास झलकता हुआ देखकर उसके मन में और अधिक तीव्रता से अरुचि का भाव उमड़ उठा था। प्रतिक्षण जब असंख्य, दलित, पिष्ट आत्माओं के भीतर दैन्य और विद्रोह का संघर्ष चल रहा है, जब अनगिनत पेटों के भीतर सुबह की रोटी हज़म होने के पहले ही रात की रोटी की चिन्ता अपना तूफानी चक्र चलाने मे व्यस्त है, तब इस युवती की आत्म-तृप्ति भरी मुसकान की उपयोगिता क्या है? उसका मेल कहाँ बैठता है? उसका दाह निर्जन रेगिस्तान मे सूर्य की तीव्र प्रकाशमयी ज्वाला की तरह व्यर्थ है, वह चिताग्नि के विकट हास्य को तरह निष्ठुर व्यंग्य से भरी है। ऐसे विकट वैषम्य की प्रतिमूर्तियाँ भी इसी समाज के अन्दर हैं! और इतनी बड़ी भयङ्कर बात से किसी को आश्चर्य नहीं होता। इस चरम विषमता को स्वाभाविक समझ कर समाज उसे यथारूप स्वीकार किये हुए है। अपने स्थान से किसी तरह न हटाए जा सकने वाले महापाषाण की तरह ऐसी आतंक-जनक जड़ता युग-युगांत से समाज के प्राणों मे छाई है, और आज भी—जब बीसवीं शताब्दी आधी समाप्त हो चली है—वह वैसी की वैसी बनी हुई है!

सोचते-सोचते वह फिर एक बार अपने दाँतों को मिस-

मिसाने लगा और बँधी हुई मुट्ठी से किसी अज्ञात शत्रु के प्रति आक्रोश प्रकट करता हुआ हाथ झटकने लगा।

जब उसका उत्तेजित मस्तिष्क कुछ शान्त हुआ, तब उसे अकस्मात् अपने पिछले जीवन के विचित्र मनोभाव और अनोखी कल्पनाएँ स्मरण हो आईं। एक जमाना था (तब उसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष के करीब रही होगी), जब उसके अज्ञात मन मे यह हास्यास्पद आशा अस्पष्ट रूप से वर्तमान थी कि उमका विवाह किसी राजकुमारी के साथ होगा। यह भावना क्यो और कैसे उसके अंतर्मन मे उत्पन्न हो गई थी, वह नहीं जानता था। पर यह अवश्य उसके भीतर जड़ पकड़े थी। जब वह कुछ बड़ा हुआ तब भी कुछ समय तक वह इस कदर आत्मलीन था कि दिन मे कम से कम चार-पाँच बार अपने बाल सँवारता था और उसे सब समय शीशे मे अपना मुँह देखते रहने की इच्छा होती थी। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता गया और नवयौवन का रंग उस पर चढ़ता चला गया त्यों-त्यों अपने सौंदर्य की विशेषता के सम्बन्ध मे उसका विश्वास बढ़ता चला गया और अपनी उस सुन्दरता के प्रति उसकी ममता भी बढती गई। उसे इस बात का अनुभव भलो भाँति हो गया कि उसके चेहरे मे एक ऐसा जबर्दस्त आकर्षण है, जिसकी अवज्ञा सुन्दरी स्त्रियाँ कभी नहीं कर सकती। यद्यपि वह स्वभाव से कुछ संकोचशील था, तथापि वह अकसर दूसरे लोगों पर अपने रूप और व्यक्तित्व के प्रभाव की परीक्षा करने मे सुख पाता था। प्रचलित सामाजिक नैतिकता के अनुसार उसकी यह

प्रवृत्ति "निष्पाप कौतूहल-प्रियता" के अतिरिक्त और कुछ न थी। पर वह स्वयं जानता था कि वह घोर घातक और नृशंस आत्म-विलास की मनोवृत्ति थी। आज उसे यह सोचकर स्वयं आश्चर्य होता था कि बचपन से ही जीवन-संघर्ष के कटु अनुभव होते हुए भी इस प्रकार के आत्म-विलास की प्रवृत्ति उसके भीतर कैसे घर कर गई थी। असावधानी के किन अज्ञात क्षणों में इस चरम आत्मकामी मनोभावना ने उसके अन्तस्तल मे जड़ें पकड़ना आरम्भ कर दिया था? जो भी हो, पर कठोर जीवन की वास्तविकता के नाना उलटे सीधे चक्रों के फेर में पड़ने के कारण उसका चंचल पर भावुक हृदय गंभीरता धारण करने लगा। काल्पनिक जगत् की आत्म-विलासिता से विमुख होकर वह जीवन का यथार्थ रूप मे जानने के लिए विवश हुआ। और आज? आज उस विवशता ने उसके भीतर जलती हुई बालू की जो रुक्षता ठूँस-ठूँसकर भर दी थी वह आँधी के एक प्रचंड प्रवेग से श्मशान की राख की तरह चारों ओर बिखर रही है।

टहलते-टहलते अनेक अप्रिय भावनाएँ उसके मस्तिष्क मे कुलबुलाने लगीं। वह उनसे त्राण पाने के लिए छटपटाने लगा। वह बार-बार दाहिने हाथ को नीचे झटकता था और बार-बार दाँत पीसता था। बाजार का कर्णकटु कोलाहल उसकी दुश्चिन्ताओं की आग में घी डालने का काम कर रहा था। वह अपनी उपायहीनता से तंग आकर बार-बार बड़बड़ाता जाता था—"ढोंग है! सब झूठ है! सब ढकोसला है!" वह सोचने लगा कि वह सारा कोलाहल, जो उसकी एकांत चिंता मे बाधा पहुँचा

रहा है, केवल एक तुच्छ स्वार्थ के विराट आडंबर के सिवा और कुछ नहीं है, सारा आडंबर और सारी व्यस्तता केवल तुच्छ जीविका के लिए है, इस आदर्शहीन, घृणित जीविका को चलाने के लिए तमाम बाजार मे मिथ्यावादिता का जोर है। इस मिथ्यावादिता को मानव-समाज ने सृष्टि का एक अत्यन्त आवश्यक नियम मान लिया है, इसलिए किसी को इस पर आश्चर्य नहीं हो रहा है। अन्यथा यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो यह सब कैसी दिल दहलाने वाली ज्यादती है! दुकानदार मीठी-मीठी झूठी बातो से भोले, अनजान ग्राहकों को फुसला कर ठग रहे हैं—निश्चित दर से पैसा दो पैसा, जितना कुछ भी अधिक मिलने की संभावना हो, उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं; इक्के-तॉगे वालों मे संगठन का इस कदर अभाव है कि बिना झूठ बोले हुए सवारियो को गॉठने में असमर्थ है; अखबार बेचने वाले अखबारों मे छपी हुई महत्त्वहीन किंतु सनसनी फैलाने वाली झूठी खबरें सुना-सुनाकर पैसा कमाने की चिता मे हैं; किसी बजाज का दलाल जब किसी गरीब देहाती को फंसाकर उसे अच्छी तरह मूँड़ने में समर्थ हो रहा है, तो फूला नहीं समाता। यह सब किसलिए? केवल जीवन संग्राम में टिके रहने के लिए। जो ढीठ व्यक्ति अपेक्षाकृत शांतिप्रिय व्यक्ति को धक्के देकर, उसे निर्दयता से पैरों-तले कुचलने में समर्थ हो रहा है वह विजयोल्लास की उन्मत्तता से निष्ठुर हास्य कर रहा है, और पद-दलित व्यक्ति को निहायत हिकारत की नजर से देख रहा है। क्या इस प्रकार के जीवन-संग्राम में किसी प्रकार टिके

रहना ही चरम पुरुषार्थ है ? सब ढोंग है ! झूठ है ! नीचता है ! उसकी आँखो से फिर चिनगारियाँ निकलने लगीं। वह स्वयं नहीं जानता था कि कौन उसका मूल वैरी है जो समाज के केन्द्र मे बैठकर धोखेबाजी का इतना बड़ा जाल फैलाये हुए है, और स्वयं अदृश्य रहकर डोरे खीचता हुआ समाज और संसार के समस्त व्यवस्थापको को अपनी इच्छा के अनुसार नचा रहा है। वह केवल पिंजर-बद्ध हिंस्र जंतु की तरह अपने व्यर्थ मानसिक गर्जन से क्षुब्ध होकर फिर-फिर जी मसोस कर रह जाता था।

धीरे-धीरे उसके भीतर एक भयंकर प्रकार की स्थिरता अधिकार जमाने लगी। वह अपने अंतस्तल मे प्रलय की आग की-सी दहन-शक्ति का अनुभव करने लगा। वह सोचने लगा, इस प्रचंड अग्नि को किसी तरह बाहर निकालकर, सारे संसार को फूँककर यदि वह एक बार नये सिरे से उसकी रचना करने में समर्थ होता तो कम से कम वर्तमान युग के विश्वव्यापी मिथ्याचार की जड़ें तो नष्ट कर ही डालता।

इस प्रकार की विचित्र कल्पना करते-करते अचानक एक विचित्र प्रकार के भावोन्माद ने उसे धर दबाया। वह ऐसा अनुभव करने लगा जैसे वह लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में नहीं, बल्कि एक महाश्मशान में टहल रहा है, और वह सब कोलाहल उस श्मशान के भूत-प्रेत, यक्ष-पिशाचो की लास्य-लीला है। भौतिक लीला की उस रंगस्थली मे अपने को अकेला अनुभव करके वह एक प्रकार के अप्राकृतिक, विकृत और विकराल सुख का स्वाद पाने लगा। कुछ देर तक उसकी वह विचित्र मोहाच्छन्न

स्थिति बनी रही। जब मोह भंग हुआ तब वह उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रबल पीड़ा से मन-ही-मन कराहने लगा, और इस विपुल विश्व मे अपने को एकाकी, निःसहाय और गृहहीन समझकर आतंक की अनुभूति से काँप उठा। वह खड़ा न रह सका और हरी दूब के ऊपर चित लेट गया। उसकी छाती बड़े जोरो से धड़क रही थी। वह चेष्टा करने पर भी इसकी तीव्र अनुभूति को न रोक सका, और दोनो हाथ छाती पर रखकर विवश भाव से बहुत देर तक लेटा ही रहा। काफी देर तक लेट रहने के बाद जब उठ बैठा तब मन उसका स्थिर हो चुका था। आत्म-करुणा और अपने मन की निराशा-जनित प्रतिक्रिया पर उसे हँसी आने लगी। एक साधारण सी घटना से वह इस कदर डगमगा उठा, अपने चारो ओर ऐसी निराशा का मन्त्र फूँकने लगा! धिक्कार है उसकी इस कायरता पर!

दूसरा परिच्छेद

आज उसकी उत्तेजना का विशेष कारण भी था। जीविका का कोई उपाय ढूँढ निकालने के लिए वह तीन सप्ताह से लखनऊ में आकर भटक रहा था। अखबारों मे 'वांटेड' के कालम पढ़ कर, दो-तीन जगह आवेदन पत्र भेज कर, वह प्रबन्धकों से व्यक्तिगत रूप से मिल कर हार मान चुका था। आज फिर वह किसी तरह हिम्मत बाँध साबुन के एक बड़े कारखाने के मालिक से मिलने गया था। उन्हें कारखाने का हिसाब-किताब रखने के लिए एक आदमी की जरूरत थी। आफिस में पहुँच कर एक चिट

मे अपना नाम लिखकर उसने मालिक के पास भेज दिया। बहुत देर तक उसे बाहर एक बेंच पर बैठे रहना पड़ा। अंत मे जब बुलावा आया तब उसे ऐसा लगा जैसे वह फाँसी की आज्ञा सुनने की प्रत्याशा कर रहा हो। प्रोप्राइटर साहब के रूखे चेहरे से सुदृढ़ कठोरता का भाव व्यक्त हो रहा था। उन्होने राजीव से बैठने के लिये नहीं कहा, केवल प्रश्न के बतौर विकट दृष्टि से उसकी ओर ताकते रहे। राजीव भी बेवकूफो की तरह चुपचाप खड़ा रहा। उसने भी निश्चय कर लिया था कि अपने आप कुछ नहीं बोलेगा।

अंत में प्रोप्राइटर साहब को मौन भंग करना ही पड़ा। उन्होंने कटु व्यंग्य के स्वर में पूछा—"कहिए जनाब, आप कैसे तशरीफ लाये हैं? आपको जो कुछ कहना हो जल्दी कह डालिए, मेरे पास और भी बहुत-से जरूरी काम पड़े हुए है।"

राजीव ने एक बार सोचा कि बिना कुछ कहे उलटे पाँव लौट चले। पर फिर न जाने क्या सोच कर उसने सीधे ढंग से उत्तर दिया—" 'पायोनियर' मे पढ़ा है कि आपके यहाँ नौकरी की एक जगह खाली है। मैं उसी का उम्मेदवार बनकर आया हूँ।"

मुँह बिचकाते हुए प्रोप्राइटर साहब ने कहा—

"'पायोनियर' में पढ़ा है! ओह, ठीक है, याद आ गया। आपके 'कालीफिकेशन्स' क्या है?"

"मैंने बी० ए० तक पढ़ा है।"

"पढ़ा ही भर है, या पास भी किया है?"

"पास किया है।"

"सर्टीफिकेट है ?"

"था, इस वक्त नहीं है।"

"घर में है ?"

"जी नहीं, खो गया है।"

प्रोप्राइटर साहब के मुख पर क्रूर व्यंग्य की मुसकान झलक उठी। उन्होने कहा—"हूँ !" क्षणभर के लिए वह चुप रहे। उसके बाद बोले—"इसके पहले और कहीं काम किया है ?"

"प्रायः तीन महीने तक हिन्दी के एक अखबार मे प्रूफ-रीडरी का काम किया है।"

"हमे प्रूफ-रीडर की आवश्यकता नहीं है, एकाउंटेंट की आवश्यकता है।"

"मैं बुक-कीपिंग भी जानता हूँ।"

"सर्टीफिकेट है ?"

"जी नहीं।"

प्रोप्राइटर साहब इस बार बड़े मजे में मुसकराये। फिर बोले—"तीन महीने तक आपको 'एप्रेंटिस' के रूप में काम करना होगा। १५ रुपया माहवार दिया जायगा। अगर काम 'सेटिस्फेक्टरी' हुआ तो ३० रुपया माहवार मिलने लगेगा। मँहगाई ५ रुपया।"

अखबार में छपा था कि ८०) माहवार दिया जायगा। राजीव सन्न रह गया, उससे कुछ जवाब देते न बना। प्रोप्राइटर साहब ने वज्र गर्जन के स्वर मे कहा—"जल्दी जवाब दीजिए। आप राजी हैं या नहीं ! मेरे और भी काम पड़े हैं !"

राजीव बोला—"आप कहते क्या हैं ? पन्द्रह रुपये पर आप एक बी० ए० पास आदमी को नौकर रखना चाहते हैं !"

"अजी रहने भी दीजिए ! ऐसे बिना सर्टीफिकट वाले बी० ए० पास लड़के लखनऊ की गलियों में बहुत फिरा करते हैं । मेरा वक्त फिजूल जाया न कीजिए। अगर काम करना चाहते हो तो जल्दी बताइए, वर्ना......"

"आप नीच है।" राजीव के मुंह से बरबस निकल पड़ा।

"तुम कमीने कुत्ते हो। मेरे यहाँ नौकरी की खोज मे आकर मेरा ही अपमान करना चाहते हो ? निकलो यहाँ से !. अगर ....."

वह अपना वाक्य पूरा भी न कर पाये थे कि एक विचित्र घटना घट गई, जिसके लिए वह कतई तैयार नहीं थे। राजीव के भीतर बहुत देर से घृणा और प्रतिहिसा की भावनाएँ मुख बंद किये हुए स्टीम बॉयलर के धुएँ की तरह पुंजीभूत होती जा रही थी। अकस्मात् बॉयलर को फोड़ कर धुआँ बाहर फट पड़ा और राजीव ने प्रोप्राइटर साहब के बॉयें गाल पर अपने सुदृढ़ हाथ से दो तमाचे कस कर जड़ दिये। बाबू साहब अकचका कर कुर्सी सहित फर्श पर धड़ाम से गिर पड़े। उनके सँभल कर उठकर चिल्लाने तक राजीव काफूर हो गया। प्रति-हिसा-पूर्ति की एक निष्ठुर परितृप्ति का भाव मन में लेकर तेजी से कदम बढ़ाता हुआ वह पार्क मे जा पहुँचा।

———

तीसरा परिच्छेद

दूब के ऊपर बहुत देर तक चित लेटे रहने के बाद राजीव अंत मे जब उठा तब उसे सारे शरीर में एक अजीब सी कमजोरी अनुभव होने लगी और चक्कर-सा आने लगा। वह फिर बेबस होकर हाथ-पाँव पसार कर लेट गया। थोड़ी देर बाद उसने फिर एक बार उठने की चेष्टा की, पर फिर लेट गया। बहुत अधिक शराब पीने के बाद जिस प्रकार कोई शराबी रास्ते पर ही कहीं लेटने को विवश हो जाता है और बीच-बीच में अज्ञात चिन्ता में व्याकुल होकर किसी दूरस्थित अज्ञात आश्रय में पहुँचने के लिए उत्कंठित हो उठता है, और समझता है कि वहाँ समय पर न पहुँच पाने से अनर्थ हो जायगा, पर बारम्बार उठने की चेष्टा करने पर भी शारीरिक जड़ता से विवश होकर फिर लेट जाता है और विकलतावश रोने लगता है, ठीक वही दशा उस समय राजीव के मन की भी हो रही थी।

अन्त को प्रबल प्रयत्न करके समस्त शारीरिक और मानसिक जड़ता को झाड़-फटकार कर वह उठ खड़ा हुआ और हजरतगंज की तरफ चल दिया। बहुत देर तक वह हजरतगंज के आस-पास निरुद्देश्य भटकता रहा। रात को नौ बजे के करीब वह डेरे पर पहुँचा। वह बाबू उमाप्रसाद सक्सेना के यहाँ रहता था, जो अँगरेजी शासन काल में एक उच्च अधिकारी रह चुके थे, और अब कांग्रेसी राज स्थापित होने पर भी अपने उसी उच्च—

बल्कि उच्चत्तर—पद पर कायम थे। अँगरेजी शासनकाल मे जब कांग्रेसियो का दमन किया जा रहा था तब प्रान्तीय सरकार उनकी सूझबूझ पर बहुत विश्वास करती थी और कोई कार्रवाई करने के पूर्व उनसे सलाह लेती रहती थी। कांग्रेसी सरकार ने उनका पिछला विद्वेष भूलकर उनके अनुभवों से लाभ उठाने के उद्देश्य से उन्हें वही सम्मान दिया जो अंग्रेजो के जमाने में उन्हे दिया जा रहा था। बाबू साहब के पूर्वज उसी गॉव मे रहते थे जिस गॉव में राजीव का जन्म हुआ था। जब राजीव का परिचय उनसे हुआ था तब वह उससे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए थे और उन्हीं के आग्रह से राजीव ने उनके यहॉ डेरा जमाया था। उनके स्वभाव मे राजीव ने एक ऐसी व्यावहारिक सहृदयता पाई थी जो अन्य किसी अधिकारी मे उसे नही मिली थी। पहले ही दिन से वह उनसे और उनके परिवार वालो से इस कदर हिल गया था जैसे वह जन्म से उसी घर मे उसी परिवार में पला-पुसा हो। उस परिवार के रहन-सहन संस्कृति और मनोधारा से उसके जीवन का मेल बैठता हो, ऐसा नहीं। पर अपनी वर्तमान विवश स्थिति में उसे उस परिवार का वातावरण आपेक्षिक रूप से घर का सा लगा।

उसके पहुँचते ही उमाप्रसाद जी की स्त्री कृष्णा देवी उसके कमरे मे आईं। उन्होंने पूछा—"लाला, आज यह देर कैसी ?"

उमाप्रसाद जी के यहॉ सब लोग (केवल उमाप्रसाद जी को छोड़कर) शाम को जल्दी खाना खा लिया करते थे। नौकर, नौकरानी, महाराज और महाराजिन किसी ऐसे गैर आदमी के लिए देर तक टिके रहना पसंद नहीं करते थे। कहते थे—"दूल्हा

जलाया करते हैं तो क्या दिन-भर और रातभर वहाँ पहरा देते रहें? चूल्हे में जाय ऐसी नौकरी!" उमाप्रसाद जी को देर में आने की आदत थी, इसलिए कितनी ही ब्राह्मणियाँ और कितने ही महाराज इस्तीफा दे चुके थे। राजीव को प्रायः तीन महीने इस मकान में रहते हो चुके थे, इसलिए वह इन सब तथ्यों से परिचित था। वह आज इसी लिए पहले ही घबराया हुआ था।

उसने अपराधी की तरह कहा—"आज यों ही देर हो गयी, भाभी जी, माफ कीजियेगा। भैया (उमाप्रसाद जी) क्या खा चुके है?"

भाभी जी ने विरस भाव से, एक रूखी मुसकराहट के साथ उत्तर दिया—"नहीं, वह अभी नहीं आये। पर वह तो ठंढा, बासी खाना भी खा लेते हैं।"

इस तीखे व्यंग्य-बाण ने राजीव के मर्म में तीव्रता के साथ आघात किया। एक दिन उमाप्रसाद जी के यहाँ बसियौड़ा था। बसियौड़े के रिवाज से वह परिचित नहीं था। उसकी स्वर्गीया माँ इस प्रथा को शायद पसंद नहीं करती थीं। कुछ भी हो, जब उसके सामने बासी पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ और बरफ से भी ठंढे साग रखे गये, तब वह उन्हें देखते ही घिना गया और केवल एक-आध कौर किसी तरह मुँह में ठूँस कर उसने हाथ समेट लिये। बाद में मुँह में ठूँसा हुआ कौर भी उसने उगल दिया था। उसे निश्चित रूप से यह विश्वास हो गया था कि उसे जान-बूझ-कर सबकी जूठन दी गई है। इस धारणा से उसे मार्मिक पीड़ा पहुँची। और इसके बाद दो-तीन दिन तक उसने पेट में दर्द होने

का बहाना बनाकर कुछ खाया नहीं। उमाप्रसाद जी के कानों तक जब यह बात पहुँची तब उन्होंने पीछे ही पीछे कारण मालूम किया और राजीव को बुलाकर उसे समझा-बुझाकर मना लिया। रसोई के प्रबंध-विभाग वालों पर बड़ी डाँट पड़ी। तब से कृष्णा देवी उससे प्रसन्न नही थीं। अपने क्रान्तिकारी जीवन मे वह हर तरह का ठंढा बासी खाना खाने का आदी था, पर जान बूझकर दी गई जूठन खाने को तैयार नहीं था।

आज फिर अपनी पुरानी मूर्खता की याद दिलाई जाने पर राजीव तिलमिला उठा। उसने कहा—"भाभी जी, आप अभी तक वह बात नही भूली है। मै आपसे कितनी ही बार इसके लिए क्षमा माँग चुका हूँ, पर आप फिर भी अपने मन से वह बात नहीं निकालना चाहती। मै आवारा दो जून आप का आध सेर अन्न उड़ाता हूँ, यह ठीक है। आपको पूरा अधिकार है कि आप मेरा कान पकड़कर मुझे बाहर निकाल दें। पर एक तुच्छ बात को गाँठ बाँधकर सब समय उसी की रट लगाना क्या आप के लिए उचित है?"

इस आवारे से घर के सभी लोग अकारण डरते थे। किसी की समझ मे यह बात नहीं आती थी कि उससे क्यो डरना चाहिये, पर डरते सब थे। कृष्णा देवी भी कुछ कम नहीं डरती थीं। इसीलिए उससे कुढ़ती भी थीं। उसकी लेक्चरबाजी से घबराकर उन्होंने उसे शांत करने के इरादे से मुसकराकर कहा—"तुम भी कैसी बात करते हो, लाला! भाभी की इतनी भी दिल्लगी भी नहीं सह सकते? तुम्हारी इतनी घनी दाढ़ी देखकर

वैसे ही डर लगता है, उस पर तुम लेक्चर झाड़ने लगे हो।"

और कोई समय होता तो राजीव इस परिहास पर खूब जोर से हँसता, पर वह समझ गया था कि भाभी जी का पूर्वोक्त व्यंग्य और कुछ भी हो, सरल परिहास कदापि नहीं हो सकता। इस लिये वह चुप रहा।

कृष्णादेवी ने वहीं खड़े रहकर भीतर की ओर मुंह करके पुकारा—"बीबी।"

भीतर से आवाज आई—"हां!"

"एक थाली में परोसा लगा कर नीचे ले आओ।"

राजीव बोला—"सुनन्दा को बेकार कष्ट क्यों दिया जाय! मैं ही उधर चला जाऊँगा।"

कृष्णादेवी ने पूर्ववत् मुसकराकर कहा—"बीबी ऐसे कष्टों से खुश रहती हैं। तुम निश्चित रहो।"

थोड़ी देर बाद देव-कन्या के समान अनिन्द्य सुन्दरी एक प्रायः पचीस वर्षीया युवती एक चिट्टी-सी सादी साड़ी पहने हुए, एक हाथ में थाली और दूसरे हाथ में पानी का गिलास लेकर उस कमरे में आ खड़ी हुई।

सुनंदा का रूप राजीव नित्य देखता था और नित्य उसे वह नया जान पड़ता था। पहले से ही उसके लिये तैयार रहने पर भी हर बार उसे चकित रह जाना पड़ता था। प्रत्येक बार उसे लगता था जैसे उसकी मुखाकृति, रूप-रंग और वेशभूषा एकदम नये ही रूप में उसके सामने आई हो—यद्यपि वह सब दिन, सब समय उसी ढंग की सादी-सी साड़ी पहने रहती थी, और वही

अर्धव्यक्त मधुर मुसकान सब समय उसके ओठों के इर्द-गिर्द और उसकी आश्चर्यजनक बुद्धिमत्ता से चमकती हुई काली-काली बरौनियों की घनी छाया से घिरी हुई आँखो के कोरो में, झलकती रहती थी। राजीव को उसकी रूप-तरंगिमा मे एक ऐसा अलौकिक तेज प्रतिपल हिलोरें लेता हुआ-सा लगता था जो अपने आस पास के कर्दम-मलिन जीवन की तुच्छता को अपनी उज्ज्वल प्रभा से प्रदीप्त और महिमान्वित कर देता था। राजीव कई बार उसे गौर से देखने पर उसके मुख के प्रत्येक अवयव का विश्लेषण कर चुका था, और उसके रूप में उसे कहीं किसी प्रकार की त्रुटि नही दिखायी देती थी। पर एक बात पर उसका ध्यान विशेष रूप से जाता था। उसे लगता था कि सुनंदा के स्वभाव मे प्रत्यक्ष मे जिस हद तक कोमलता पायी जाती है वह उसके मुख पर उस हद तक व्यक्त नही हो पाती। एक कठिन दृढ़ता का-सा भाव उसके रूप को जैसे सब समय घेरे रहता था। उसकी स्निग्ध, सरस आँखो मे प्रशांत सागर का-सा एक ऐसा मधुर गांभीर्य घनीभूत रहता था कि राजीव को उसके तल प्रदेश मे डूब कर गोता लगाने की इच्छा होती थी। साथ ही वह डरता था कि कही उसमें गोता लगाने का प्रयत्न करते ही वह स्वयं डूब न जाये। घर के सब लोग—मालिक और मालकिन भी—राजीव से डरते थे। पर राजीव सुनंदा के व्यक्तित्व की अथाह गहराई से डरता था। दूसरे व्यक्तियो के आगे वह अपने अतस्तल की समस्त विद्रोही शक्तियो को एकत्रित करके उनके हृदय मे एक अज्ञात भय और संभ्रम का भाव

संचारित करने में समर्थ होता था । पर इस तेजस्विनी के आगे उसकी सारी शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती थीं और वह अपने को अत्यन्त क्षुद्र और घृणित समझने लगता था। यह गुप्त रहस्य शायद कृष्णा देवी भाँप गयी थीं। इसी कारण शायद परोक्ष रूप में राजीव से अपना 'बदला' चुकाने के लिये उन्होंने सुनंदा को नीचे बुलाया था। उन्होंने शायद सोचा था कि यह घमंडी युवक, जो बात-बात मे सब लोगों पर धौंस जमाता रहता है, जब दब-दब कर बीबी से बातें करेगा और यंत्र-परिचालित पुतले की तरह उसके इशारो पर चलेगा तब अच्छा तमाशा देखने में आयेगा।

सुनंदा ने थाली और गिलास मेज पर रख दिये । उसके मुख पर शान्त और मन्द मुसकान की जो रेखा सब समय वर्त-मान रहती थी, वह उस समय भी उसी स्तब्ध स्थिरता से विराज रही थी । राजीव उसकी ओर देखता और फिर आँखें फेर लेता था । कृष्णा देवी बड़े गौर से सारे रंग-ढंग देख रही थीं । वह इस बात पर ध्यान दे रही थीं कि राजीव के मुँह पर क्या रंग आ रहा है और क्या जा रहा है।

राजीव गरमागरम पराँठा तोड़ने लगा । ज्योंही उसने एक टुकड़ा तोड़कर ऊपर को उठाने की चेष्टा की त्योंही उस एक पराँठे में से एक पतला-सा साबुत पराँठा निकल आया। आश्चर्य-चकित होकर उसने एक बार कृष्णा देवी और एक बार सुनंदा की ओर देखा। कृष्णा देवी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। सुनंदा भी खुलकर मुसकराने लगी। कृष्णा देवी को इस बात पर हँसी आ रही थी कि बीबी ने उस अक्खड़ युवक को खूब बनाया है। वे

परॉठे सुनंदा ने ही खास तौर से राजीव के लिये बनाये थे।

राजीव भी नये रंग-ढंग देखकर मुसकराने लगा। परॉठे की ऊपरी परत जब वह आँवले की चटनी के साथ (जिसे वह खास तौर से पसन्द करता था) खाकर समाप्त कर चुका तब नीचे की परत मे से एक टुकड़ा तोड़ने लगा। पर फिर एक और परत उसमे से निकल आयी। कृष्णा देवी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयीं। राजीव समझ गया कि वह सब कारसाजी सुनंदा की है। वह परॉठे बनाने मे सिद्धहस्त थी, यह वह जानता था। कृष्णा जी की हँसी से वह संकुचित हो रहा था, पर सुनन्दा की विशेष कृपा से वह प्रसन्न भी था। जब दूसरी परत भी खा चुका तब तीसरी—और अन्तिम—परत के भीतर मसालेदार पिट्ठी निकली। इस पर कृष्णा देवी तो अट्टहास ही कर उठी—क्योंकि यह उनके लिये भी अप्रत्याशित था। इस बार राजीव ने भी अट्टहास में योग दिया। अबकी उसने पूरी दृष्टि से सुनन्दा की ओर देखा। सुनन्दा का गोरा मुख एक विचित्र विनोद की आभा से दमक उठा था। वह अन्तिम भाग इतना स्वादिष्ठ बना था कि राजीव जीभ चाटता ही रह गया। शेष परॉठो का भी वही हाल था। किसी के ऊपर के हिस्से मे पिट्ठी थी, किसी में बीच मे और किसी मे नीचे।

जब तक वह पूरा खाना न खा चुका तब तक कृष्णादेवी और सुनन्दा उसी के पास खड़ी रहीं। खा-पीकर उसने हाथ धोये। नौकर थाली उठाकर मेज़ साफ कर गया। कृष्णा जी और सुनन्दा भीतर चली गयी। राजीव ने भीतर से किवाड़ बन्द कर दिया और बिस्तर पर लेट गया।

चौथा परिच्छेद

लेटते ही साबुन के कारखाने के मालिक की काले भूत की सी डरावनी शक्ल उसकी आँखों के आगे नाचने लगी । जो अपमान उसने उसका किया था उसकी पीड़ा अभी तक उसे कचोट रही थी । यद्यपि उसका बदला उसने चुका लिया था, तथापि अभी तक उसके मन को पूरा सन्तोष नहीं हो पाया था । उसे लग रहा था कि क्यों उसने उस अर्थ-पिशाच का गला घोट कर उसी क्षण उसका काम तमाम न कर दिया ? क्यों उसे दूसरे गरीबों को सताने के लिये जीना छोड़ दिया ? "खून ! खून ! मैं उसका खून करूँगा !" और वह अपने दाँतों को किटकिटाता हुआ मन-ही-मन उस दृश्य की कल्पना करने लगा जब वह उस भूत का खून करेगा । सान पर चढ़ा हुआ एक मजबूत और चमकता हुआ छुरा छिपाये हुए वह सहसा उसके कमरे में घुस जायगा और झक से उसकी बाईं बगल में, ठीक पसलियों के नीचे भोंक देगा, और फिर उसी सफाई से भाग निकलेगा जिस सफाई से आज दिन में वह उसके गाल में थप्पड़ जमाने के बाद भाग निकला था ।

"पर क्या यह काम सचमुच इतना आसान है ?" वह फिर सोचने लगा—"दूसरी बार भी क्या मुझे इसी तरह भाग निकलने की सुविधा मिल जायगी ? आज की घटना के बाद से उसके आदमी चौकन्ना रहना सीख जायेंगे । आज इत्तफाक ही की बात थी कि किसी का ध्यान मेरी ओर नहीं

गया। सब अपने-अपने कामो में व्यस्त थे, वर्ना........नहीं, खून करने का यह तरीका अत्यन्त हास्यास्पद है। मै किसी भी हालत मे यह नही चाहूँगा कि मैं पकड़ा जाऊँ। ऐसा करने पर मै उस सुख का अनुभव ही कैसे कर पाऊँगा जो उसकी हत्या से मेरे मन मे जगेगा। इस सम्बन्ध मे अधैर्य से काम नहीं चलेगा। अत्यन्त सावधानी बरतनी होगी। अच्छा तो यह होगा कि कुछ दिनो तक इस भूत की गतिविधि पर बारीकी से गौर किया जाय। वह किस मकान मे रहता है, किस कमरे मे किस समय सोता है, किस समय जगता है, कारखाने मे किस समय जाता है, कब लौटता है, शाम को कभी पैदल टहलने जाता है या नही, जाता है तो किस ओर जाता है, रात मे कोई समय ऐसा रहता है या नहीं जब वह अकेला रहता हो—इन सब बातो की जानकारी बड़ी ही चतुराई से प्राप्त करनी होगी। खून करना है तो एक चालाक, अनुभवी और पेशेवर खूनी की तरह योजना बनानी होगी। अंडमान मे पुराने खूनी रहमान ने जो गुर मुझे बताया था उससे लाभ उठाना होगा। उसने बताया था कि 'खून ऐसे समय करना चाहिये जब तुम्हारा शिकार एकदम निश्चिन्त बैठा या लेटा हो, किसी भी प्रकार की आशंका से उसका मन ग्रस्त न हो और वह भविष्य की सुखद और सुनहरी योजनाएँ बनाने मे तल्लीन हो।' उसने यह भी कहा था कि 'तुम्हारे चेहरे से यह भाव लेशमात्र भी व्यक्त नहीं होना चाहिए कि तुम किसी भी प्रकार की चिंता मे डूबे हुए हो या किसी भी कारण से खिन्न हो। सभी परिचित और अपरिचित व्यक्तियो से सहज प्रसन्न

भाव से मिलते हुए तुम्हें अपने शिकार की टोह में रहना चाहिए।' ठीक है, रहमान की ही बात मान कर चलूँगा। पर··· पर·········"

और फिर एक दूसरी ही विचार-धारा उसके मन के एक कोने मे बह चली। "मान लिया जाय", वह सोचने लगा—"मैं उस भूत की हत्या करने में सफल हो जाऊँ और दुनिया की और पुलिस की नजर बचाकर भाग भी निकलूँ, तो भी उससे क्या लाभ मुझे और दुनिया को होगा? उससे देशवासियों के आगे मैं कौन-सा बड़ा आदर्श रख सकूँगा? इसके अलावा फिर एक बार खुफिया पुलिस के आदमियों से बच-बच कर चलता हुआ, उन्हें धोखे मे रखने के लिये नये-नये वेश बदलता हुआ, जहाँ भी मैं जाऊँगा वहीं मेरी हत्यारी आत्मा मुझे सब समय कचोटती रहेगी। सब समय अपने से और संसार से शंकित और भीत रहता हुआ मैं अपने अपराधी जीवन की गाड़ी को केवल इसलिये ठेलता रहूँगा कि मैं किसी तरह जीता रहूँ। ऐसे जीने में क्या सुख हो सकता है? नहीं इस प्रकार की व्यक्तिगत हिंसा से न तो मेरा कोई हित हो सकता है न समाज का। पर यदि हत्या न करूँ तो क्या करूँ? जीवन-भर इस प्रकार का मार्मिक अपमान चुपचाप पीता चला जाऊँ? [समाज मे आज ऐसे व्यक्तियों ने चारों ओर से जीवन की सहज प्रगति का रास्ता रोक रखा है जो किसी भी क्षेत्र में स्वल्प शक्ति प्राप्त कर लेने पर जीवन-संघर्ष में असफल व्यक्तियों को निर्ममता से कुचल सकने में ही जीवन की चरम सार्थकता माने बैठे है।' ऐसे

क्रूर कायरों पर सचाई और ईमानदारी से भरी 'नीति का और अहिंसा के उच्च आदर्श से पूर्ण व्यवहार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार के व्यवहार को ऐसे अहम्मन्य कापुरुष लोग व्यक्ति की कमजोरी मान कर उस पर और अधिक अत्याचार करने लगते हैं। ऐसे नीचों को यदि सबक सिखाना है तो हिंसा के बिना काम नहीं चलेगा। इसलिए मैं अवश्य हत्या करूंगा। पर......पर .....क्या छुरा चलाने का साहस मुझ मे होगा? असंभव! जो लोग ऐसा कर सकते हैं उनका रक्त मांस कुछ दूसरी धातु का बना होता है। मैं पिस्तौल से काम लूँगा..."

और उसे उस दिन की याद आयी जब प्रायः चौदह वर्ष पूर्व उसने जबलपुर के पास विंध्याचल की पहाड़ियों में खुफिया पुलिस के एक दल द्वारा घेर लिये जाने पर एक छोटे से टीले की आड़ मे छिप कर धायॅ से एक आदमी को तत्काल जीवन के उस पार पहुँचा दिया था, दो को बुरी तरह घायल कर दिया था और शेष बचे हुए चौथे को आतंकित करके भगा दिया था! उन दिनों वह क्रान्तिकारी दल का एक प्रमुख सदस्य था। कैसा अद्भुत जीवन था वह! तब उसकी नसो मे खून नही वरन् सब समय बिजली दौड़ती रहती थी। उन दिनो वह उन्नीस वर्ष का नवयुवक था। एक पहलवान को अपना गुरु बनाकर उसने दंड पेलना, दूसरी तरह की कसरतें करना और कुश्ती लड़ना सीख लिया था। पहलवान बड़ा धनी था। वह शौक से दंगलबाज बना था। राजीव को वह प्रतिदिन सेर-भर बादाम की लुकदी खिलाकर कम से कम तीन सेर दूध पिलाया

करता था। उस नयी जवानी मे इस नियमित व्यायाम और पर्याप्त पौष्टिक भोजन के फलस्वरूप राजीव का गठा हुआ शरीर दर्शनीय था। उसके तमतमाये हुए मुख से सब समय जैसे रक्तमिश्रित मद टपकता रहता था। उसने केवल स्वास्थ्य का सुख प्राप्त करने के लिए अपना स्वास्थ्य नहीं बढ़ाया था। उसके सामने एक निश्चित उद्देश्य और आदर्श था। दलित और अपमानित देशमाता की मर्म विदारक गुहार उसके मन के कानों से होकर उसकी अंतरात्मा तक पहुँच चुकी थी। जब से उसने सुना कि लाला लाजपतराय की मृत्यु में निरंकुश शासनाधिकारियों का कितना बड़ा हाथ है तब से वह और अधिक विचलित हो उठा। अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका बदला चुकाये बिना वह नहीं रहेगा यह निश्चित प्रतिज्ञा उसने कर ली थी। उसे लगता था जैसे उसकी स्वर्गीया माँ ही देशमाता के रूप मे उसे पुकार रही है। उसने उस महा आह्वान का पालन करने के पूर्व अपने क्षीण स्वास्थ्य को सुधारने का निश्चय किया। उसके बाद एक दिन वह क्रांतिकारी दल के तत्कालीन प्रधान नेता से भेंट करने में सफल हो गया। सब प्रकार की परीक्षा लेने के बाद जब नेता को उसकी सच्ची लगन, और चारित्रिक दृढ़ता पर विश्वास हो गया तब उन्होंने उसे पिस्तौल चलाने की शिक्षा देना आरंभ कर दिया। कुछ दिनों में वह ऐसा पक्का निशानेबाज बन गया कि उसे स्वयं अपनी उस पटुता पर आश्चर्य होने लगा। उसके बाद उसने भिन्न-भिन्न स्थानों में डाक और खजाने की लूट, और शस्त्रागारों पर आक्रमण में भाग लिया। जबलपुर

के शस्त्रागार पर भी धावा बोलने की योजना उसके दल के कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने बनायी थी। इसका कारण यह था कि उन दिनों जबलपुर के शस्त्रागार में बाहर से कुछ ऐसी नयी नयी पिस्तौलें और रायफिलें आई हुई थी जो तब भारत मे अन्यत्र सुलभ नही थी। उन्ही को प्राप्त करने का लोभ था। पर जिस दिन धावा करने की योजना बनायी गयी थी उसके तीन दिन पहले ही किसी जरिये से खुफिया पुलिस को खबर लग गई। राजीव और उसके साथी शहर की सीमा के चारो कोनो मे अलग-अलग स्थानो मे छिपे हुए थे। उन्होने स्वयं अपने भी गुप्तचर खुफिया पुलिस के पीछे लगा रखे थे। राजीव के अधिकांश साथियों को उन्हीं गुप्तचरो द्वारा समय पर सूचना मिल गयी थी, इसलिए वे पुलिस की पकड़ मे आ सकने की सम्भावना के पूर्व ही भाग निकले। पर राजीव जिस गुप्त स्थान मे ठहरा था उसका पता लगाने में दल के गुप्तचरो को देर हो गयी। फल यह हुआ कि वह अंत तक अपेक्षाकृत असावधान रहा। योजना की तारीख की सुबह तक भी जब न तो अपने किसी साथी से उसकी भेंट हो पायी न कोई गुप्तचर ही यह सूचना देने उसके पास आया कि मामला ठीक है और तैयारियाँ पूरी है तब वह शंकित हो उठा और अत्यंत सावधानी से बच निकलने का प्रबन्ध करने लगा। इतने में उसने एक अजनबी को मकान मालिक से, जो कुम्हार था, बातें करते सुना। वह अजनबी कुछ ऐसे प्रश्न कर रहा था जिनसे यह स्पष्ट हो गया कि वह राजीव की तलाश मे है। वह तत्काल पिछवाड़े के रास्ते से होकर भागा। जिस मकान

में उसने डेरा जमाया था वह शहर की सीमा के बाहर तीन-चार मील की दूरी पर था। संध्या हो चली थी। भागता हुआ वह एक कच्ची सड़क में आ पड़ा जो सीधे एक पहाड़ी की ओर जाती थी। वह सड़क छोड़कर पहाड़ी की ओर चल पड़ा। इतने में उसने देखा कि चार आदमी शस्त्रास्त्र से सुसज्जित उसी की ओर चले आ रहे है। वह एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी की ओर छिपता हुआ और उन हथियारबंद सिपाहियो की ओर नजर रखता हुआ भागता रहा। इसी लुकाछिपी के चक्कर मे एकबार वह ऐसा फँसा कि जिस मोड़ से वह घूमा था उसके सामने वाले मोड़ से सिपाही आ पहुँचे। उसके लिये इधर-उधर बढ़ने का कोई रास्ता नहीं रह गया था। प्रायः तीस गज के फासले पर जब वे रह गये तब राजीव ने उस अनिवार्य स्थिति के लिये अपने भीतर पूरा साहस बटोर लिया और एक दूसरे से प्रायः सटे हुए दो टीलो में छिपकर उसने पिस्तौल का ऐसा निशाना लगाया कि एक सिपाही तत्काल खतम हो गया, दो बुरी तरह घायल होकर गिर पड़े और चौथा पत्ता तोड़ भागा।

अँधेरा होने लगा था। राजीव बुरे चक्कर में फँस गया था। नीचे सड़क की ओर जाना एकदम सुरक्षित नहीं था। ऊपर पहाड़ी टीलों के बीच बड़े-बड़े पत्थरों के ऊपर से होकर चले चलने के सिवा और कोई रास्ता उसके लिये नहीं रह गया था। वह भूत-भविष्य की कोई बात सोचे बिना दुःस्वप्न-यात्री की तरह उसी विकट और जटिल रास्ते से होकर आगे बढ़ता रहा— जिधर को पाँव ले जाते थे उसी ओर। कई बार ठोकरें खायीं,

दाहिने पाँव से खून निकलने लगा । एक चप्पल एक पत्थर की ठोकर से उखड़ कर अँधेरे मे न जाने कहाँ खो गयी, पर वह चलता ही रहा—एक ही चप्पल पहने । रात हो आयी थी—कृष्णपक्ष की भयावनी रात । केवल आकाश मे टिमटिमाते हुए तारे जितना कुछ भी प्रकाश दे पाते थे उसी के सहारे वह चलता रहा । एक जगह वह कुछ अनमना हो गया था और कुछ स्पष्ट सी चिंता-छायाएँ हलके—किन्तु मटमैले—बादलों की तरह उसके मस्तिष्क में छाने लगी थी । इसी अन्यमनस्कता मे एक टीले से उसका सिर ऐसा टकराया कि वह प्रायः बेहोश होकर गिर पड़ा । उसकी वह आधी बेहोशी गहरी नींद मे परिणत होने ही को थी कि सहसा उसने पास ही कहीं से दो बड़े-बड़े पत्थरो के लुढ़कने की सी आवाज सुनी । तत्काल वह पिस्तौल ठीक से पकड़ कर चौकन्ना हो गया । ठीक उसी समय प्रायः उलटी दिशा मे टार्च का-सा प्रकाश जल उठा । निश्चय ही सिपाहियो का दूसरा दल आ पहुँचा था । उसकी सारी थकावट पल मे रफू हो गयी । फिर एक बार पहले की ही तरह अतिमानुषिक स्फूर्ति उसमे आ गयी । वह लोमड़ी की तरह दुबकता और अँधेरे मे यथासंभव कोई शब्द किये बिना टटोलता हुआ बायें को, कुछ नीचे की ओर, मुड़ा । उसकी जेब मे दियासलाई थी—वह सिगरेट पीता था । पर इस स्थिति में दियासलाई जलाना सीधे मौत को बुलाना था । गिरते-पड़ते, रुकते-चलते वह इत्तफाक से ऐसे स्थान मे आ पड़ा जहाँ दोनो हाथो से टटोलने पर ऐसा लगा जैसे वह गुफा की तरह की कोई जगह हो । उसका मुँह

केवल इतना ही खुला था जितने में एक आदमी दुबक कर भीतर चला जाय। उसके भीतर कोई भी जंगली जानवर हो सकता था। और कोई समय होता तो वह निश्चय ही इस संभावना पर सोचता। पर उस समय इस बात की कोई कल्पना ही उसके मन में नहीं जगी। उसने सोचा कि इस संकट की घड़ी में प्राण-रक्षा का उससे अच्छा साधन दूसरा नहीं हो सकता। वह अपने समस्त अंगों को सिकोड़ कर किसी तरह उसके भीतर घुस गया। घुसने की इस क्रिया में उसका सारा शरीर स्थान-स्थान पर छिल गया था। उसकी तनिक भी परवा न कर वह भीतर जाकर अंधेरे में टटोलता हुआ एक बड़ा-सा पत्थर ढूँढने लगा। पत्थरों का कोई अभाव उस पथरीले पहाड़ी स्थान में नहीं हो सकता था। जल्दी ही एक काफी बड़ा पत्थर उसके हाथ लगा। उसे दोनों हाथों से लुढ़काता हुआ वह गुफा के मुख तक ले आया। भाग्य से वह पत्थर ऐसा 'फिट' बैठा कि प्रवेश द्वार एकदम बंद हो गया। केवल बाईं ओर एक आधे अंगुल बराबर पतला छिद्र रह गया। इस समय उसे जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन नहीं हो सकता। जैसे वह चारों ओर से अत्यंत सुदृढ़ रूप से सुरक्षित लौह-दुर्ग के भीतर आ गया हो। वह उसके भीतर केवल अपने को छिपाने में ही समर्थ नहीं हुआ, वरन् उस पहाड़ी स्थान की रात की सर्दी से भी उसकी रक्षा हो गयी। वह निश्चिन्त होकर चारों खाने चित्त लेट गया और पिस्तौल सिरहाने रख दी। बहुत देर तक वह बाहर उस पतले से छिद्र की ओर देखता रहा जो पत्थर से ढक नहीं पाया था। एक बार सहसा

उसने एक प्रकाश झलकता हुआ देखा और कुछ खसड़-खसड़ शब्द भी सुना। फिर लगा कि दोनो उसके थकित मस्तिष्क से उत्पन्न भ्रम के सिवा और कुछ नही थे। वह भ्रम रहा हो चाहे वास्तविकता रही हो, पर उसके बाद फिर उसने किसी तरह का न प्रकाश देखा न कोई शब्द ही सुना। धीरे-धीरे उसका शरीर अवश होता चला गया और कब वह गहरी नींद मे सो गया यह वह नहीं जान पाया।

× × ×

जब नींद खुली तब छिद्र से होकर देखा कि पौ फटने लगी है। उसने सोचा कि खतरा उठाये बिना काम नहीं चलेगा। पिस्तौल हाथ मे लेकर, पत्थर हटाकर, एक बार चौकन्नी दृष्टि से चारों ओर देखकर वह अपने अङ्गो को सिकोड़ कर बाहर निकला और पूरब की ओर चल पड़ा। प्रायः आधे मील तक आगे बढ़ने के बाद उसने नीचे का रास्ता पकड़ लिया। जब नीचे समतल भूमि पर आया तो जानबूझकर जंगल के बीचोबीच घुस गया। उसी जंगली रास्ते से होकर वह एक गॉव में आ पहुँचा।

उसके बाद वह किस प्रकार उस दिन के लिए एक किसान का मेहमान बनकर, वेश बदल कर रात में निकटतम स्टेशन में जा पहुँचा, फिर रेल पर सवार होकर भाग निकला और अन्त मे प्रायः दो महीने के चक्कर के बाद फिर अपने दलवालो से जा मिलने मे समर्थ हुआ यह एक लंबा किस्सा है।

उस चक्कर से तो वह बच गया, पर प्रायः एक वर्ष बाद लाहौर मे वह एक नये चक्कर मे फँस गया। इस बार वह

नहीं बच पाया। खुफिया पुलिस की लपेट में आ गया। दल के चार व्यक्तियों के साथ उसे काले पानी की सजा हुई और वह अंडमान भेज दिया गया। उसे इस बात पर बराबर आश्चर्य बना रहा कि अधिकारियों की किस भूल से वह फाँसी की सजा पाने से बच गया। कुछ वर्ष बाद उसे अंडमान से अलीपुर सेंट्रल जेल मे लाकर रख दिया गया। पिछली घटना से प्रायः एक वर्ष पूर्व वह उस बन्दी जीवन से रिहा होकर फिर एक बार मुक्त मानव-संसार के बीच मे चला आया था। पर बाहर आने पर उसने युद्ध से ध्वस्त, अभाव-ग्रस्त, सर्वव्यापी नैतिक पतन और भ्रष्टाचारिता के रोग के शिकार मानव-जीवन का जो रूप देखा उससे उसके मन में संदेह होने लगा कि वह कठोर बन्दी जीवन से छुटकारा पाकर मुक्त मानवता के बीच में आया है। उसे लगा कि बाहर भी मानव पग-पग में बंधनों से जकड़ा हुआ है। अन्न, वस्त्र, चीनी, नमक, तेल, लकड़ी, प्रतिदिन के जीवन की इन अनिवार्य रूप से आवश्यक वस्तुओं तक मे बंदिशें लगी हुई हैं। उस पर मँहगाई और उसपर भी अर्थाभाव! महायुद्ध अपने पीछे एक ऐसी गहरी काली छाया छोड़ गया है जिसके कारण देश स्वतंत्रता के निकट पहुँचने पर भी परतंत्रता से बुरी तरह जकड़ा हुआ सा लगता है। यद्यपि महायुद्ध को बुलाने में देश का कोई हाथ नहीं था तथापि अपने खूनी पञ्जों की खरोंच से युद्ध ने उसे भी अछूता नहीं रहने दिया। केवल देश की जनता ही नहीं, वरन् समग्र मानवता राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से इस कदर परतंत्र

हो उठी है कि कराहने तक के लिए उसे 'परमिट' माँगना पड़ता है। सड़ी-गली सभ्यता की विषैली साँसो से भाराक्रांत वातावरण मे उसका दम घुटा जा रहा है, पर उससे मुक्त होने का उपाय उसे नहीं सूझता, कोई ज़रिया नज़र नहीं आता। कौन उबारेगा इसे इस वज्र-कठिन, निष्ठुर, निर्मम दानवीय बंधन से ? सोच-सोचकर राजीव के भीतर एक ऐसी टीस उठी कि वह चीख मारते-मारते रह गया। उसके बाद ही एक विचित्र ऐंठन का अनुभव करता हुआ वह छटपटाने और करवटें बदलने लगा।

करवटें बदलता हुआ वह अपने दीर्घ और कठिन कारावास की बातें सोचने लगा। कैसे निष्ठुर अमानुषिक पीड़न उसने उस महाकाल के समान कभी अंत न होने वाली कराल अवधि मे सहे! मानवता की कमजोरियों से परिचित रहने पर भी उस अनुभव के पूर्व वह इस बात की कल्पना नही कर सकता था कि एक मानव दूसरे मानव के साथ इस प्रकार का नृशंस व्यवहार कर सकता है, किसी भी कैदी से—चाहे उसका अपराध कितना ही भीषण क्यों न हो—अपने को सभ्य मानने वाला कोई शासक संप्रदाय ऐसी विकट बर्बर प्रतिहिंसा के साथ पेश आ सकता है। पर इस घोर नारकीय यातना और यंत्रणा के बीच मे भी वह न जाने किस प्रचंड, अतिमानुषी इच्छाशक्ति के सहारे, सुदूर भविष्य की किस महान्—किंतु धुँधली—आशा मे वज्र के समान दृढ़ और इस्पात के समान दुर्दमनीय होकर खड़ा रहा। छुटपन में उसने मौंट क्रिस्टो के काउंट की कहानी पढ़ी थी। उसे याद था कि वह एक दूरस्थित एकांत द्वीप मे एक चट्टान के ऊपर

खड़े दुर्गम दुर्ग के भीतर प्रायः पन्द्रह वर्षों तक लौह-शृंखलाओं के कठोर बन्धन से जकड़ा हुआ किन भीषण परिस्थितियों का सामना किस दृढता से करता रहा—इस आशा में कि एक न एक दिन वह उस वज्रकारा से मुक्त होकर ही रहेगा और तब उन नीचों, स्वार्थ-लोलुप नरक के कीड़ों और भ्रष्टाचारियों से बदला लेगा और उनका दलन करेगा, जिन्होंने उसे विना अपराध के उस दुर्ग में जीवन भर के लिये कैद कर दिया है और जो स्वयं नाना छल-प्रपंचों और हीन उपायों द्वारा गुलछर्रे उड़ाते रहे हैं। उन्नत प्रतिहिंसा-जनित उस आशा से बल पाता हुआ वह दीर्घ पंद्रह वर्षों के बाद अन्त में एक दिन स्वयं अपने ही पराक्रम से उस असंभव परिस्थिति से मुक्त हुआ और उसके बाद उसने उन दुराचारियों का भंडाफोड़ किया जो उस समय शक्तिमद से मत्त होकर, स्वयं भोग-विलास में गले तक डूबे हुए, निरीहों पर अमानुषिक अत्याचार कर रहे थे, और फिर एक-एक करके उन सब से उसने अपना बदला चुकाया।

मौंट क्रिस्टो के काउंट के किस्से को बार-बार याद करता हुआ राजीव रौरव-परीक्षा की उस लंबी अवधि में अपने को स्थिर रखे रहा और देशोद्धार के संबंध में भविष्य की योजनाएँ बनाता रहा। उसके साथ के आजन्म कारावास-भोगी दूसरे अपराधियों में से कुछ तो मर चुके थे, कुछ घुल-घुलकर दम तोड़ रहे थे, कुछ पागल हो चुके थे, कुछ कंकालावशेष अवस्था में मरते-मरते जी रहे थे और कुछ जीते-जीते मरने जा रहे थे। पर राजीव ने न जाने कौन-सा योगबल अपने भीतर पा लिया था कि कठोर से

कठोर पीड़न से उसके चेहरे मे एक भी शिकन नहीं आती थी। दिन भर मशीन की तरह खटने और संध्या को अखाद्य और अपर्याप्त भोजन से गुजारा करने को बाध्य होने पर भी वह किसी भी तरह के रोग को अपने पास नही फटकने देता था। पाषाण-कीट की तरह उसने अपने स्वभाव को ऐसा कठिन बना लिया था कि केवल हवा और मिट्टी खाकर भी वह जी सकता था। वह मरना नही चाहता था—जीवन के मोह के कारण नहीं, वरन् मानव-सेवा के महान् व्रत की पूर्ति के उद्देश्य से। एक निश्चित लक्ष्य उसके सामने था, जिसका अस्पष्ट स्वप्न वह शायद तब से देखता जा रहा था जब वह माँ की गोद में खेला करता था। उसकी बिना पूर्ति के वह किसी भी हालत मे अपने को मृत्यु के हाथो नही सौंपेगा—इसके लिये चाहे स्वयं यमराज के दूतो से उसे क्यो न लड़ना पड़े। किसी भी कठोर से कठोर परिश्रम की क्लान्ति, किसी घोर से घोर अपमान की ग्लानि से वह अपने को इस दृढ़ निश्चय से नही डिगने देगा। यह कठोर प्रतिज्ञा उसकी अजेय आत्मा के भीतर घर कर चुकी थी। इसी वज्र निश्चय का यह फल था कि उस नारकीय यंत्र मे बारह वर्ष तक अनवरत, अत्यंत निर्ममता के साथ पिसते रहने के बाद जब वह बाहर आया तब उसके स्थिर शांत मुख पर उस क्लिष्ट जीवन की थकान का लेशमात्र चिह्न भी वर्तमान नही था। यह ठीक है कि अब उसका वह पहले का-सा गठा हुआ शरीर, चौड़ी छाती और भरपूर रक्त से तमतम करती हुई मुख-कांति नही रह गयी थी, फिर भी अभी तक उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा

था । और सब से बड़ी बात यह थी कि उसकी शारीरिकता में जो कमी आ गयी थी उसकी पूर्ति एक अद्भुत आध्यात्मिक तेज और बल ने कर दी थी। यही कारण था जिस समय वह कारावास से बाहर निकला उस समय उसकी आयु ३४ वर्ष की होने पर भी वह २४-२५ वर्ष का सा युवक लगता था। देख कर यह विश्वास करना कठिन था कि वह नरक-निर्वास की कठिन परीक्षाओं में होकर बाहर निकला है, वरन् लगता कि तीर्थस्नान करने के बाद तरोताजा होकर आया है।

पर बाहर आने के बाद जीवन का जो कर्दम-मलिन रूप उसके सामने आया, जो कटु से कटुतर अनुभव उसे होने लगे, उनके कारण उसे ऐसा लगा कि जिस अच्छेद्य कवच से आज तक उसका शरीर मन और आत्मा सुरक्षित थे उसमें किसी भाले के कठोर आघातों से एक एक करके छिद्र पर छिद्र होते चले जा रहे हैं। चारों ओर उड़ने वाली महाश्मशान की सी राख से जैसे उसकी समस्त चेतना ढकने लगी। मानवता के उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में उसका विश्वास डिगने सा लगा।

"यह सब मेरी ही कमजोरी है जो मैं इस तरह से सोचने लगा हूँ," वह मन ही मन कहने लगा—"मेरी ही दुर्बलताएँ बाहरी दुःख-दैन्य, पाप, प्रलोभन और पीड़न का रूप धारण किये हुए हैं। मुझे फिर एक बार अपनी इस कमजोरी पर विजय पानी होगी और निराशा का भूत भगाना होगा। जीवन का चरम रूप ऐसा कभी नहीं हो सकता, यह मेरा भ्रम है।" और सोचते-सोचते वह सोने का प्रयत्न करने लगा।

पाँचवाँ परिच्छेद

उमाप्रसाद जी अभी नहीं आये थे। घर के सब लोग—नौकर चाकर भी—सो गये थे। केवल सुनंदा और उमाप्रसाद जी का पन्द्रह साल का लड़का भवानीप्रसाद अभी तक जगे हुए थे। सुनन्दा उमाप्रसाद जी के लिए ठहरी हुई थी कि वह आयें तो उन्हे खाना खिलाये। कृष्णा जी को जल्दी सो जाने की आदत थी। उनका स्वास्थ्य यद्यपि साधारणतः ठीक ही था, तथापि घरवालो और घर के परिचित लोगो मे यह धारणा सी जमी हुई थी—या जमा दी गयी थी—कि उनकी तबीयत ठीक नही रहती। कृष्णाजी ने कभी इस बात का खंडन नहीं किया, बल्कि बातचीत के सिलसिले मे वह अक्सर, बिना पूछे ही, उसका समर्थन करती रहती थीं। इसलिए उनके जल्दी सो जाने की बात किसी को खटकती नहीं थी। यह ठीक था कि वह शरीर से कुछ मोटी थी। और इस मोटेपन को वह प्रतिदिन पौष्टिक पदार्थों के सेवन द्वारा बढ़ाती ही चली जाती थीं। कुछ चीज़ें (जैसे बादाम का हलवा, पिस्ते की लौजी) तो वह अक्सर अकेले ही अपने कमरे में खाती रहती थीं—बच्चो तक को नहीं देती थीं। शायद इसी पौष्टिक भोजन और मोटेपन का ही यह फल था कि वह जाड़े की रातों में आठ—अधिक से अधिक नौ—बजे बाद जग नहीं पाती थीं। इसलिये सुनन्दा ही पर उन्होंने उमाप्रसाद जी को खिलाने का भार छोड़ दिया था।

उमाप्रसाद जी रात में बड़ी देर से घर लौटते थे, और कभी-

कभी एक या दो बजे तक भी सुनन्दा को उनके लिए ठहरे रहना होता। इस बीच वह कभी कोई पुस्तक पढ़ती, कभी न चाहने पर भी दो-एक झपकियाँ ले बैठती। दिन भर के काम के बाद रात में इतनी देर तक जगना उसे कभी खला हो, इसका आभास कभी उसके एक भी शब्द से या व्यवहार से शायद ही किसी को मिला हो। किताब पढ़ते या झपकियाँ लेते हुए भी वह सजग रहती थी। उसके कान जरा-सी आहट पाते ही खड़े हो जाते।

पर आज उसका चित्त किसी कारण से कुछ चंचल था। न तो वह पुस्तक पढ़ने में जी लगा पाती थी, न झपकियाँ ही ले पाती थी। केवल इस कमरे से उस कमरे में और उस कमरे से इस कमरे में अकारण आती-जाती थी। लगता था जैसे वह बहुत व्यस्त हो, हालाँकि इस समय व्यस्तता का कोई विशेष कारण नहीं रह गया था। तमाम दिन इस कदर व्यस्त रह चुकी थी कि अब व्यस्तता के लिए अधिक गुंजाइश नहीं रह गयी थी।

भवानीप्रसाद अपने कमरे में एक उपन्यास पढ़ने में तल्लीन था। उपन्यास पढ़ने का ऐसा चसका उसे लग गया था कि हिन्दी या अँगरेजी का अच्छा बुरा जो भी उपन्यास पाता उसी को एक रात में या एक दिन में समाप्त कर डालता। कभी-कभी सारी रात जगा रहता और सुबह बहुत देर से उठता। सुनंदा ने उसके पास जा कर कहा—"भवानी, बहुत देर हो गयी, सो क्यों नहीं जाता?" वह अच्छी तरह जानती थी कि उससे सोने के लिए कहना व्यर्थ है, वह इस आदेश का पालन कभी नहीं करेगा। पर बहुत देर तक अपने अकेलेपन से तंग आ कर वह

किसी से बात करने के लिए तड़प रही थी।

भवानी उस समय जिस घटना को पढ़ने में तन्मय था उसमे नायिका अपने प्रियतम के विरह से अत्यंत व्याकुल होकर "प्राणनाथ, अब मै अधिक सहन नहीं कर सकती !" कहती हुई नदी मे डूबकर आत्महत्या करने की तैयारी कर रही थी। इसलिए सुनंदा के पुकारने से वह प्रायः चौक उठा। कहानी मे 'ससपेन्स' से 'क्लाइमेक्स' के निकट पहुँचने पर उसका हृदय धड़क रहा था। उस धड़कन मे जो एक रोमांचकर सुख था उसे सुनंदा की गद्यात्मक वाणी ने नष्ट कर दिया। वह मन-ही-मन कहने लगा—"सारा मजा किरकिरा हो गया !"

पुस्तक को आँखों के सामने से हटाकर उसने पूछा—"क्या कहती हो बुआ ?"

"अब सोओगे नहीं ?" सुनंदा ने अपना प्रश्न दुहराते हुए कहा।

भवानी ने उसके प्रश्न का उत्तर देना अनावश्यक समझकर कहा—"बुआ, एक प्याला चाय बना सकती हो ?"

सुनंदा ने अत्यंत स्नेहपूर्वक मुसकरा कर मधुर तिरस्कार-भरे स्निग्ध स्वर मे कहा—"कैसा निखट्टू लड़का है। इस समय भी इसे चाय की सूझी है !" और वह भीतर चली गयी। बिजली की अँगीठी जलाकर उस पर उसने चाय की केतली चढ़ा दी। थोड़ी देर मे जब चाय बन चुकी तब वह एक बड़ा-सा प्याला भरकर भवानी के पास ले गयी। भवानी ने बड़ी कृतज्ञता से मुसकरा कर उसे ग्रहण किया। केतली मे चाय का पानी अभी और बचा था। सुनंदा ने एक दूसरे प्याले में उसे छानकर डाला और

दूध-चीनी मिलाकर उसे राजीव के पास ले गयी। धीरे से राजीव के कमरे का किवाड़ खोलने पर उसने देखा, कमरे की बत्ती बुझ चुकी है। उसने बटन दबाकर बत्ती जलायी। वह जानती थी कि राजीव को देर से नींद आती है। और उसका अनुमान ठीक ही निकला। बत्ती जलते ही राजीव ने आँखें खोल कर देखा।

सुनंदा ने प्रायः काँपती हुई आवाज़ में कहा—"राजीव बाबू, क्या सो गये हैं? आपके लिये चाय लायी हूँ, पियेंगे?

राजीव चाय बहुत कम पीता था, और असमय तो कभी पीता ही न था। पर इनकार करने से सुनंदा बुरा मानेगी इस खयाल से उसने कहा—"चाय लायी हो? अच्छा किया तुमने। बहुत देर से प्यास लगी थी, पर इस सर्दी में ठंढा पानी पीने का साहस नहीं होता था।" कहकर वह पलँग पर उठ बैठा और हाथ बढ़ाकर चाय का प्याला थामकर धीरे से पीने लगा। सुनंदा दरवाजे के पास फर्श पर ही बैठ गयी।

"अरे, नीचे क्यों बैठ रही हो? एक कुर्सी ले आओ कहीं से!" राजीव ने कहा।

"यहीं ठीक है," धीरे किन्तु निश्चित स्वर में सुनंदा बोली।

"क्या अभी भैया नहीं आये?"

"नहीं।"

"अब तो बड़ी देर हो चुकी है!"

"हाँ"

इस संक्षिप्त उत्तर के बाद राजीव को आगे कुछ प्रश्न करने का साहस नहीं होता था। साथ ही वह यह भी नहीं समझ पाता था कि

जब सुनंदा को कुछ कहना ही नहीं है तब वह वहाँ बैठ क्यों गयी है।

वह धीरे—बहुत धीरे—आधा-आधा घूँट करके चाय पी रहा था और प्रायः आधी आँखों से सुनंदा की ओर देख रहा था। वह देख रहा था उस आश्चर्यमयी नारी के नित्य नवीन रूप से सुन्दर लगने वाले तेजोद्दीप्त मुख की अपूर्व आभा को। वह अपने मन में यह अनुभव कर रहा था कि सामने बैठी हुई उस विधवा नारी की आत्मा प्रतिदिन के कर्म-क्लिष्ट जीवन की सैकड़ो उलझनो से जकड़े रहने पर भी पराजय स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है। जीवन मे किसी के प्रति कोई शिकायत उसे नहीं है। वह न तो किसी की करुणा की भिखारिणी है और न आत्म-करुणा ही वह कभी अपने मन में जगाती होगी, क्योंकि उसका कोई भी चिह्न उसके सुन्दर मुख की सुकोमल तथापि सुदृढ़, स्वस्थ और सरल अभिव्यक्ति मे नही पाया जाता। उसके गालो की हड्डियाँ अवश्य कुछ उभर आयी हैं, ठुड्डी और गाल के बीच मे दोनो ओर कुछ दबाव अवश्य आ गया है, माथे पर एक-आध रेखा भी अवश्य खिच गयी है, तथापि कुल मिलाकर शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का ही परिचय उसके चेहरे से मिलता है।

दोनों मौन थे। सुनंदा बड़े ध्यान से राजीव का चाय पीना देख रही थी और राजीव उसके मुख पर झलकने—और बीच-बीच में बदलने—वाले प्रत्येक भाव पर गौर कर रहा था।

जब वह चाय पी चुका तब प्याला पलंग के नीचे रखने लगा। उसके कमरे में न तो कोई टेबिल थी न कुर्सी। सुनंदा ने तत्काल

हाथ बढ़ाया। राजीव ने प्याला उसके हाथ में देते हुए कहा—"वाह, बहुत सुन्दर चाय बनी है। तुम इस कला में सिद्धहस्त हो इसमें संदेह नहीं।" और उसने अपने दाढ़ीमंडित मुख की स्वाभाविक गंभीरता के ऊपर मुसकान की एक हलकी-सी परत चढ़ा दी।

सुनंदा इस विचित्र स्वभाव वाले प्रौढ़ युवक की घनी, काली, घुँघराली दाढ़ी देखकर यद्यपि सहमी सी रहती थी, तथापि इतना वह निश्चित रूप से जान गयी थी कि वह अत्यन्त सहृदय और समझदार है। यही कारण था कि एक ओर वह उससे बेहद कतराती थी और दूसरी ओर किसी अज्ञात कारण से उसके प्रति ऐसे तीव्र आकर्षण का अनुभव करती थी कि बरबस समय-असमय उसके पास चली आती थी। उसका कतराना जैसा सहज लगता था उसके आकर्षण की अभिव्यक्ति भी वैसी स्वाभाविक जान पड़ती थी। जैसे उसके मन के भीतर कहीं, किसी भी प्रकार की कोई उलझन, कोई गाँठ न हो।

ऐसे अवसर बहुत कम आते थे जब सुनंदा राजीव के मुख पर मुसकान की क्षीण झलक भी पाती हो। इसलिए आज जब राजीव ने सहज भाव से मुसकराते हुए उसकी चाय बनाने की कला की प्रशंसा की तब वह रह न सकी। पलटे में हास्य का छींटा कसती हुई बोली—"चाय बनाना भी किसी कला में शुमार है यह मुझे नहीं मालूम था!"

"कला जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित किये हुए है। उसकी अवज्ञा न तुम कर सकती हो न मैं। जीवन में जहाँ कहीं भी असंतुलन और असामंजस्य है वहाँ संतुलन और

सामंजस्य लाकर, जहाँ कहीं भी विशृंखलता और अव्यवस्था है वहाँ शृङ्खला और व्यवस्था प्रदान कर कला ने जीवन को रूढ़ता की स्थिति से प्रौढ़ता प्रदान की है। सभ्यता ने मानव-जीवन को असंख्य अभिशाप प्रदान किये है, पर कला का एक ऐसा वरदान उसने दिया है कि वह एक गुण उसके समस्त दोषो को ढक देता है।"

"यह लो, आपने तो एक अच्छा खासा लेकचर दे डाला! अच्छा राजीव बाबू, आप कोई भी बात सीधे और हलके ढंग से क्यो नहीं कह पाते? छोटी से छोटी बात को इतना गंभीर क्यो बना डालते है?"

राजीव "हो हो!" करके हँस पड़ा। वह भूल गया कि रात के एकांत मे उसका अट्टहास सोने वालो को जगा सकता है। फिर बोला—"तुम ठीक कहती हो, सुनंदा, अपनी यह मूर्खता कभी-कभी मुझे भी कुछ विचित्र सी लगने लगती है। प्रत्येक बार सोचता हूँ कि साधारण व्यक्तियो की तरह ही हँसूँ और हलके-फुलके ढंग की बातें किया करूँ, पर फिर जब किसी से बातें करने लगता हूँ तो पंडिताई बघारने लग जाता हूँ। जीवन भर अकेला रहा हूँ न, इसीलिये अकेले मे तरह-तरह के विषयो पर कुछ अनोखे ढंग से सोचने का आदी हो गया हूँ। और जब बाते करने लगता हूँ तब बोलने और सोचने मे कोई अतर मेरे लिए जैसे नहीं रह जाता।"

जब वह बोल रहा था तब सुनन्दा अत्यन्त विचित्र, उत्सुक और कुतूहली दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी, जैसे उस चिर-एकाकी प्रौढ़ युवा के रहस्यमय व्यक्तित्व को स्तर-प्रति-स्तर

चीरकर देखना चाहती हो। उसके जीवन के सम्बन्ध में सुनंदा ने केवल इतना ही सुन रखा था कि वह क्रांतिकारी रह चुका है और प्रायः बारह वर्ष कठोर कारावास मे बिता चुका है। इसके अतिरिक्त न उसके जीवन की भूतकालीन परिस्थितियों के सम्बन्ध मे कोई जानकारी उसे थी न वर्तमान की। पर प्रारंभ ही से, न जाने किस रहस्यानुभूति की प्रेरणा से, उसे ऐसा लगने लगा था कि वह दाढ़ीधारी विचित्र प्राणी पारिवारिक स्नेह से वंचित रहा है। इस कारण पहले ही दिन से उसके प्रति एक अदम्य समवेदना का भाव उसके मन में उमड़ उठा था। और आज राजीव ने जब उसे यह बताया कि वह जीवन भर अकेला रहा है तब जैसे उसके अन्तर के अजानित हाहाकार का स्वर सुनंदा के अंतर के कानों में साँय-साँय करके बजने लगा। उसकी इच्छा हुई कि खूब रोये। एक अनमने क्षण में वह अपने को भूलकर सचमुच राजीव के सामने ही रोने जा रही थी। पर तत्काल गले तक उमड़े हुए आँसुओं को एक घूँट में पी गई। उसके बाद छद्म मुसकान-भरी दृष्टि से बोली—"बात चल रही थी कला को लेकर। आप कह रहे थे कि कला जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अपनाये हुए है। जब चाय बनाना एक कला है तब निश्चय ही दाढ़ी रखना भी एक कला है! क्या मैं जान सकती हूँ कि आपकी इस दाढ़ी ने आपकी किस रूढ़ता को प्रौढ़ता प्रदान की है?"

इस बार राजीव जो "हो हो हो हो" करता हुआ जो ठठाया तो फिर उसके लिए सँभालना कठिन हो गया। "हाः हाः हाः हाः हाः! हिः हिः हिः हिः हिः!" की जो पटाखों से भरी आतिश-

बाजी छोड़ना उसने आरम्भ किया तो फिर ताँता टूटना कठिन हो गया। सुनन्दा आज उसे इस कदर हँसाने में सफलता पाने पर अवश्य बहुत प्रसन्न हो रही थी, पर रात के उस सन्नाटे मे उसका हास्य, कला और व्यावहारिकता दोनो के दृष्टिकोणों से, जो असमंजस उपस्थित कर रहा था उससे वह भयभीत हो उठी।

"बीबी", सुनन्दा ने चौककर पीछे की ओर मुड़कर देखा। सामने गलियारे पर कृष्णा देवी खड़ी और आँखें तरेरती हुई उसकी ओर देख रही थी। वह हड़बड़ाती हुई उठी। अपराधियो की सी शक्ल बनाती हुई कृष्णाजी के आगे खड़ी हो गयी।

"अभी तक वह नहीं आये क्या !" प्रायः झिड़कती हुई आवाज मे कृष्णा जी ने कहा और फिर एक बार तीखी आँखो से उन्होंने राजीव की ओर देखा। 'वह' से उनका उद्देश्य उमा प्रसादजी से था।

"नहीं !" दबे हुए स्वर मे सुनन्दा बोली।

"तुम यहाँ क्या कर रही हो ?"

"कुछ नहीं।" इस बार सुनन्दा के स्वर मे दृढ़ता थी। एक पल मे उसने अपनी अन्तःप्रज्ञा द्वारा यह महसूस कर लिया कि उसने कोई अपराध नही किया और अपराध न करने पर भी अपराधी का-सा रुख अख्तियार करने मे सारी स्थिति अनावश्यक रूप से अशोभनीय हो उठेगी, जिसकी ग्लानि केवल उसी तक सीमित न रहकर निर्दोष राजीव तक को अपने छुतहा प्रभाव से धर दबायेगी।

"बड़ी ठठोली चल रही थी !" कटु व्यंग्य कसती हुई कृष्णा

जी बोलीं—"ठहाकों के मारे एक झपक सो भी न पायी ! तुम लोगों को नहीं सोना है तो कम से कम बच्चों पर तो रहम किया करो । दूसरों की नींद खराब करने पर क्यों तुले हो !" कहकर कृष्णाजी ने फिर एक बार सामने वाले कमरे में कंबल ओढ़े बैठे हुए हतबुद्धि राजीव की ओर तिरस्कार भरी तीखी दृष्टि से देखा।

"मुझे सोना अवश्य है, भाभी, और मैं सोना भी चाहती हूँ। पर जब समय पर सोने की सुविधा मिले तब न !" कृष्णाजी की तरह ही तीखे स्वर में उत्तर देती हुई सुनंदा बोली।

"ठीक है, ठठोलियों और ठहाकों के मारे सुविधा कहाँ मिल पाती है !"

"तुम जान बूझकर उलटी बातें कर रही हो, भाभी ! जाओ, चुपचाप सो जाओ, इस समय तुम्हारा जी ठिकाने नहीं है। निश्चिंत रहो, अब से न ठठोलियाँ होंगी, न ठहाके सुनोगी !" और बिना प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किए सुनंदा सीधे अपने कमरे की ओर चली गयी। कमरा बगल ही में था। भीतर जाकर उसने किवाड़ फेर दिये।

भाभी जी भीतर ही भीतर जलभुन कर रह गयीं। फिर एक बार उन्होंने वक्र दृष्टि से राजीव की ओर देखा। सहसा राजीव उठ खड़ा हुआ और सारे शरीर में कंबल लपेटे भाभी जी के सामने आकर खड़ा हो गया। दोनों हाथ जोड़कर बोला—"भाभी जी, मुझसे गलती हो गई, क्षमा कीजिएगा। मुझे यह ख्याल ही न रहा कि आप लोग सोये हुए हैं। इसमें सुनंदा का कोई दोष नहीं है। इसमें सारा अपराध मेरा......"

उसकी बात पूरी होने के पहले ही सुनंदा के कमरे का

दरवाजा खुला और दरवाजे से ही सुनंदा बोली—"अपराध न करने पर भी जो व्यक्ति अपराध स्वीकार करता है वह कायर होता है, राजीव बाबू ! आज तक मैं आपको चाहे जो समझती रही होऊँ, कायर नहीं मानती थी। पर आज देखती हूँ, इस गुण मे आप किसी से पीछे नहीं हैं।"

राजीव भ्रांत दृष्टि से सुनंदा की ओर देखता रह गया। सुनंदा की बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें जैसे दहक रही थी। इतनी बड़ी ज्वाला उन प्राणों के भीतर छिपी रह सकती है, जिन्हें वह इतने दिनों तक कोमल करुणा का आगार समझता आया है, इस बात की कल्पना राजीव ने कभी स्वप्न मे भी नही की थी। वह सहम गया और फिर बेवकूफों की तरह कृष्णा जी की ओर देखने लगा। उसने देखा, कृष्णा जी के मुख का रंग जैसे उड़ गया था। शायद वह भी सुनंदा के उस आकस्मिक भाव-परिवर्तन के लिए तैयार नही थीं। सुनंदा का सिंहिनी का सा वह रूप शायद वह भी आज पहली बार देख रही थीं।

सुनंदा ने फिर भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये थे। राजीव क्षण भर के लिए अनिश्चित और अनमने भाव से खड़ा रहा और सुनंदा के कमरे के दरवाजे की ओर देखता रहा। उसके बाद सहसा, जैसे किन्हीं अदृश्य हाथों के धक्के से, पीछे हटकर चुपचाप अपने कमरे की ओर लौट गया। कृष्णा जी भी खिसि-यानी सी वापस चली गयीं। भवानी शोर सुनकर अपने कमरे के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ था। उसकी आँखो से पता चलता था कि जो बातें उसने सुनी थीं उनसे वह किसी भी निष्कर्ष पर

नहीं पहुँच पाया है। अपनी माँ और राजीव के चले जाने पर वह फिर अपने पलंग पर लेटकर उपन्यास पढ़ने लगा।

छठा परिच्छेद

राजीव के पिता स्वर्गीय चिरञ्जीवप्रसाद वर्मा एक साधारण सिपाही से जमादार के पद पर पहुँचे ही थे कि उन्हें सन् १९१६ में, पहले महायुद्ध के अवसर पर, फ्रांस जाना पड़ा। वहीं जर्मनों के खिलाफ लड़ते हुए उनकी मृत्यु हो गई। अपनी गर्भवती स्त्री को अकेली छोड़कर उन्हें जाना पड़ा था। उसके विदेश जाने के प्रायः दो मास बाद राजीव का जन्म हुआ था। इस प्रकार राजीव ने अपने पिता को जन्म से ही नहीं देखा। पिता नामधारी जीव किसी व्यक्ति से किस रूप में सम्बन्धित है, पारिवारिक संस्थिति में उसका ठीक क्या स्थान है, और वह पुत्र के मन में ठीक किस प्रकार की भावनाएँ (स्नेह, प्रेम, घृणा या भय) जगाने में समर्थ होता है, इस सम्बन्ध में कोई भी निश्चित धारणा उसके मन में वर्षों तक नहीं जम पाई। ससुराल में कोई भी सगा-सम्बन्धी विशेष सहानुभूतिशील न होने से उसकी माँ अपने मायके जाकर रहने लगी थीं। राजीव से पहले वह दो लड़कियों की माँ बन चुकी थीं। तीनों बच्चों को लेकर जब वह मायके पहुँचीं, तब आरंभ में तो उनके भाइयों और भाभियों ने उनका विशेष स्वागत नहीं किया, पर जब उन्होंने पति के वेतन में से मिलने वाली कुल रकम उन लोगों को सौंपनी शुरू कर दी तो ये लोग कुछ सन्तुष्ट हुए। वर्मा जी के पिता मामले-मुकद्दमे

मे पड़कर अपनी प्रायः सारी सम्पत्ति नष्ट कर चुके थे । गॉव मे जमीन का जो टुकड़ा नाम-मात्र को शेष रह गया था उसको लेकर भी गॉववालो से राजीव की मॉ को दिन-रात झगड़ना पड़ता था । कच्चे मकान का एक खॅडहर भी पैतृक सम्पत्ति के रूप मे शेष था । उसके पिताजी वर्षो से यह सोचते आए थे कि उस पर कुछ रुपया खर्च करके उसे वासयोग्य बनाया जाय । पर वह अवसर कभी न आ पाया, और वह बहुत दिनों की मन की मुराद मन ही मे लेकर लड़ाई में चले गये ।

जब साल भर बाद उनकी मृत्यु का समाचार मिला तब राजीव की मॉ अपना सिर पीटकर रह गई । जो पेशन उन्हे मिलती थी उससे किसी तरह अपना निर्वाह करने लगी । राजीव अपनी मॉ और बहनो की स्नेहछाया मे बिना किसी अभाव का अनुभव किये बड़ा होता चला गया । प्रायः बारह वर्ष की अवस्था मे उसकी छोटी बहन की मृत्यु हो गई । इस घटना से राजीव की मॉ का मातृ-हृदय, जो पति की मृत्यु से पहले ही बहुत कुछ भग्न हो चुका था, एकदम फटने को हो गया । उनकी बड़ी लड़की चौदहवॉ वर्ष पार कर चुकी थी, और गॉववाले उसके सम्बन्ध मे कानाफूसी करने लगे थे । इसलिए राजीव की मॉ अपनी छाती पर एक बहुत बड़ा पत्थर रखकर अपनी छोटी लड़की की मृत्यु के दुःख को दबा गयी, और बड़ी लड़की रामा के लिए कोई योग्य पात्र ढूॅढकर उसके हाथ पीले करने की चिंता में जुट गयी । छः महीने तक अक्लांत उद्योग करते रहने के बाद अन्त मे बड़ी मुश्किल से एक पात्र जुटाने मे समर्थ हुई । यह तो नही कहा जा

सकता कि पात्र उनके मन के अनुकूल था। वह अधेड़ हो चला था और दो पत्नियों को एक-एक करके परलोक पहुँचाने के बाद तीसरा विवाह करने की फिक्र में था। पर राजीव की माँ को इस बात पर संतोष कर लेना पड़ा कि उसकी सांसारिक स्थिति अच्छी है और उससे पल्ला बँध जाने पर उनकी लड़की प्रतिदिन का भोजन और वस्त्र जुटाने की ग्लानि-कर समस्या से मुक्त हो जायगी। उस व्यक्ति का नाम था जानकीशरण सिन्हा। वह बरेली में ठेके का काम करते थे, और उसके अतिरिक्त और भी बहुत सी तिकड़मों से अच्छा रुपया पीटते थे।

रामा का विवाह हो जाने पर राजीव भी माँ के और बहन के जोर डालने पर बरेली चला गया और वहाँ हाई स्कूल में पढ़ने लगा। हिन्दी मिडिल की पढ़ाई वह पहले ही समाप्त कर चुका था। वहीं उसने तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करते हुए बी० ए० तक की पढ़ाई किसी तरह समाप्त की। जब वह इंटर-मीडियेट में पढ़ता था तभी उसकी माँ असंख्य पार्थिव चिन्ताओं से मुक्त होकर चल बसीं। और एक दिन समाचार मिला कि रामा भी क्षय रोग भुगत कर मृत्यु की गोद मे शरण ले चुकी है। राजीव ने एक लबी साँस खींची और अपने पथ पर अकेला चलता रहा। कुछ अपने प्रकृतिगत संस्कारों और कुछ बाह्य परिस्थितियों के चक्रों के कारण वह एक दिन क्रांतिकारियों के दल में सम्मिलित हो गया।

\+ \+ \+

कमरे में जाकर, किवाड़ बन्द करके, बत्ती बुझाकर जब राजीव फिर पलंग पर लेटा तब सारी स्थिति को ठीक से समझने

की चेष्टा करने लगा। पर जैसे कुछ भी ठीक से नहीं समझ पा रहा था। उसने पिस्तौल चलाना, खुफिया पुलिस को छकाना, देश के लिए बलि होना, कारावास की कठोर परीक्षा मे उत्तीर्ण होना, यह सब सीखा था। पर दो महिलाओ के बीच आज जो वाक्-युद्ध हुआ था उसका कारण वह स्वयं होने पर भी उसकी समझ में न आया कि कैसे निरपराधिनी की रक्षा की जाय और स्वयं अपनी सफाई किस रूप में दी जाय। यहाँ वह निपट निस्सहाय और निकम्मा सिद्ध हुआ। बल्कि उस नारी ने उसे घोर ग्लानिकर अवमानना की स्थिति से बचाया जो स्वयं असहाय थी और जिसे अकारण क्रूर आघातो का शिकार बनाया जा रहा था। जीवन के इस क्षेत्र मे अपनी घोर पराजय की अनुभूति से वह सत्रस्त हो उठा। जीवन के कितने महत्त्वपूर्ण पहलू से वह इतने वर्षो तक एकदम अनभिज्ञ रहा! पारिवारिक जीवन की प्रात्यहिक दिनचर्या और द्वन्द्वचक्र के भीतर जीवित जगत् का कितना बड़ा अश समाहित है, इसकी तनिक भी जानकारी उसे इतने दिनो तक नही थी। राजनीतिक कूटचक्रो से वह भली भाँति परिचित था। सरकारी और गैर-सरकारी दाँव-पेंचो, विविध राजनीतिक दलो और गुटो के बीच चलने वाले संघर्षो और द्वन्द्वों से संबंधित कोई भी बात उससे छिपी नही थी। पर आज जिस अदनी-सी बात पर इतना बड़ा कांड हो गया, दो निकट संबंधी नारियो के बीच अत्यंत अशोभन ढंग से कहा-सुनी हो गयी, उसका मूल रहस्य कहाँ पर है यह जान पाना उसके लिए जैसे पत्थर पर सिर पटकने के बराबर था।

"अच्छा, भाभी जी क्या सचमुच इस बात से अप्रसन्न हुई थी कि उनकी नींद उचट गयी थी, या और भी कोई कारण उनके मन में था ? वह जिस प्रकार के ताने कस रही थीं और सुनंदा जिस ढंग से उनकी बातों का उत्तर दे रही थी उससे तो यही लगता है कि उनके मन में कुछ दूसरी ही बात है । तब क्या हो सकती है वह बात ? सुनंदा दिन-भर गिरस्ती के कामों में इस कदर उलझी रहती है कि एक क्षण के लिए भी विश्राम का अवकाश नहीं पाती और रात में भी बारह-एक बजे तक उसे ड्यूटी बजानी पड़ती है। दाल-चावल बीनने, महाराज को रसोई का सामान सहेजने, बच्चों को खिलाने-पिलाने और सुलाने, भवानी और उसकी जीजी प्रमीला को समय-असमय चाय पिलाने से लेकर रात में भैया की प्रतीक्षा में बारह-एक बजे तक बैठे रहने तक के सब कामों का उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर लिये हुए है। उसके कारण भाभी जी को इस कदर निश्चिन्तता है कि जब चाहें तब सोती हैं, जब चाहें तब घूमती हैं । यह सब होने पर भी उसके प्रति इतना बड़ा आक्रोश उनके मन में क्यों है ? यह ठीक है कि सुनंदा उनके पति की सगी बहन नहीं है; दूर का कोई रिश्ता मानकर वह उमाप्रसाद जी को भैया और कृष्णा जी को भाभी कहती है। उमाप्रसाद जी ने संभवतः उसकी अनाथ अवस्था के कारण उसके प्रति दयालु होकर ही उसे बुलाया होगा । पर चाहे किसी भी दृष्टिकोण से, किसी भी कारण से बुलाया हो, वह उनके और उनके परिवार के लिए वरदान-स्वरूप सिद्ध हुई, इसमें संदेह की कहीं कोई गुञ्जाइश ही नहीं है । यह मैं स्वयं आँखों से देख रहा

हूँ। इस बात के लिए कृतज्ञ होने के बजाय भाभी जी उसे खरी-खोटी सुनाने से बाज नहीं आतीं।" मानव-स्वभाव की इस कृतघ्नता की कल्पना से राजीव आतंक से सिहर उठा।

"पर ठहरो!" वह मन ही मन अपने-आप से कहने लगा—सहसा उसे जैसे कोई इलहाम हुआ हो—"तुम यह बात क्यों भूल गये कि सुनंदा विधवा है और किसी भी भारतीय विधवा के लिए यह अत्यन्त अनुचित है कि वह किसी भी पुरुष के साथ एकांत में बातें करे? ठीक है! भाभी जी के क्रोध का कारण मेरा ठहाका मारना उतना नहीं है जितना यह कि मैंने एक विधवा युवती से आधी रात के सन्नाटे में बातें की हैं! मेरी और सुनंदा की इस भूल की ओर संकेत करना और भविष्य के लिए हमें सचेत करना ही भाभी जी का उद्देश्य रहा है। उन्होंने अपने दृष्टिकोण से उचित ही किया है। उनके उद्देश्य का कोई गलत अर्थ लगाना उनके प्रति सरासर अन्याय है। वह सुनंदा से उम्र में सयानी हैं और अधिक अनुभवी हैं। उसके इस लोक और परलोक के हित को ध्यान में रखकर ही उन्होंने कुछ कड़ी बातें कही हैं! 'अप्रियस्य च सत्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः', ऐसा हमारे प्राचीन नीतिकार हमें बता गये हैं। ठीक है, सुनंदा के लिये इस लोक के हित से भी अधिक परलोक के हित की आवश्यकता है!" और इस तरह का तर्क उसके निद्रालु मस्तिष्क में उठते ही उसकी इच्छा फिर एक बार जोर से ठहाका मारने की हुई।

"परलोक का हित!" वह कल्पना में दाँत पीसता हुआ मन-ही-मन कहने लगा—"जैसे धर्म के ये ठेकेदार परलोक जाकर

वहाँ का लेखा-जोखा सब जान चुके हों। यमराज से और उनके ऊपर के उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित देवताओं से बातें करके मानव-समाज के और उन लोगों के बीच के संबंधों के समझौते पर हस्ताक्षर करके आये हों। इन धर्मध्वजियों ने और उनके पूर्वजों ने सदियों से सरल विश्वास-परायण समाज को बहका कर, उनके मन पर परलोक का ऐसा आतंक जमा रखा है कि आज के युग में भी, जब कि नये निर्माण के पूर्व चारों ओर ध्वंस और अविश्वास की भावना मानव की छाती को जकड़े हुए है, समाज उस जीर्ण संस्कार का अनुसरण अंधभाव से किये चला जा रहा है। असहाय विधवाओं को, परलोक के अनिश्चित बैंक में पूंजी जमा होते चले जाने के प्रलोभन द्वारा, इस लोक के निश्चित मानवीय अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। अंधे समाज की असंख्य मूर्खताओं में से यह मूर्खता अभी तक एक विशिष्ट रूप धारण किए हुए है।"

सातवाँ परिच्छेद

राजीव कुछ देर तक इसी तरह सोचते रहने के बाद जब थक गया तब दिन भर की सारी घटनाओं को भूलकर शांति से सो जाने का प्रयत्न करने लगा। पर रह-रह कर असंख्य अनिश्चित कल्पनाएँ और अस्पष्ट स्मृतियाँ, जैसे उसे खिझाने के लिये, उसके मस्तिष्क के असंख्य अणु-कोशों से बाहर निकल कर उसके मन के साथ आँख-मिचौनी का खेल खेलने लगीं। जैसे उसे आज रात भर न सोने देने का निश्चय किये बैठी हों।

काफी देर तक वह उन्हीं से उलझता रहा । सारे बँगले मे में और चारो ओर के वातावरण मे स्तब्ध सन्नाटा छा गया था। बीच-बीच मे सड़को पर आवारा कुत्तो के भूँकने का शब्द सुनायी देता था। सहसा एक परिचित 'कार' के भीतर प्रवेश करने का शब्द सुनायी दिया। निश्चय ही वह उमाप्रसाद जी की 'कार' थी। कुछ देर बाद बरसाती पर 'कार' का दरवाजा बंद होने का शब्द सुनायी दिया और इसके साथ ही राजीव ने सुनंदा के कमरे का किवाड़ खुलने का भी शब्द सुना । बरामदे में जूता चरमराते हुए किसी ने, संभवतः उमाप्रसाद जी ने, भीतर प्रवेश किया।

"आज देर हो गयी, सुनंदा, मैं तुम्हे बताना भूल गया था कि आज मुझे एक डिनर-पार्टी मे निमंत्रण था। 'डिनर' के बाद गप-शप मे इतनी देर हो गयी। तुम सो जाओ, मैं इस समय कुछ नही खाऊँगा।" यह उमाप्रसाद जी कह रह थे।

"कम से कम दूध तो पी लो भैया।" यह सुनंदा का स्वर था।

'न, न, मै दूध-वूध कुछ नहीं पीऊँगा। जाओ, देर हो गयी तुम आराम करो।"

"अच्छा दूध न सही, चाय तो पी ही सकते हो। अभी एक मिनट में बनाये देती हूँ।"

"अच्छी बात है, पर चाय नहीं, एक कप 'काफी' बना के पिला सको तो......देखना, खूब स्ट्रांग रहे।"

राजीव लेटे ही लेटे अपने कानो को उसी ओर लगाये था। उमाप्रसाद जी जूता चरमराते हुए किसी दूसरे—संभवतः अपने—कमरे में चले गये, यह भी राजीव ने कानो के जरिये से जान

लिया। पास ही डिब्बों के खुलने और प्याला तश्तरी और चम्मच के खनकने की आवाज आयी। केतली में शायद पहले ही से पानी खौलने के लिये रख दिया गया था। राजीव को एक विचित्र सुख का अनुभव हो रहा था। जब-जब वह किसी चीज के खनकने या खड़कने की आवाज़ सुनता था तब-तब उसे सुनन्दा की निकटता का अनुभव होता था। लगता था जैसे स्वयं सुनन्दा बोल रही है।

कुछ देर बाद प्याला, तश्तरी और चम्मच की खनखनाहट ऐसे जमे हुए ढंग से हुई कि राजीव समझ गया, 'काफी' तैयार होकर प्याले में ढाल दी गयी है।

"ले आयी हो? बड़ी जल्दी तैयार हो गयी।" उमाप्रसाद जी को कहते सुना गया।

प्रायः पांच मिनट तक सन्नाटा रहा। उसके बाद फिर राजीव ने पास वाले कमरे में प्याले और तश्तरी के खनकने का शब्द सुना। इस बार राजीव के मन में प्याला खनकने के शब्द के साथ ही मृदु-मृदु भय और साथ ही उत्सुकता-जनित कम्पन होने लगा।

और जहाँ डर वहाँ बाघ का घर! कुछ ही देर बाद सचमुच उसके कमरे का किवाड़ खुला, और—

"राजीव बाबू, यह लीजिए, 'काफी' लायी हूँ।" ऐसे स्वर में सुनन्दा बोली जैसे वह निश्चित रूप से पहले ही से जानती हो कि राजीव अभी तक जगा ही होगा। इसके बाद बायें हाथ से दरवाजे के पास लगा हुआ बटन दबाकर उसने बत्ती जला दी।

राजीव धड़कते हुए कलेजे से हड़बड़ाता हुआ उठ बैठा और

तत्काल कम्बल के भीतर से उसने प्याले के लिए हाथ बढ़ा दिया। वह आपत्ति जताना चाहता था। वह कहना चाहता था कि "कुछ देर पहले चाय पी चुका हूँ और अब 'काफी' पीने से एकदम नहीं सो पाऊँगा। पर सुनन्दा ने जिस आत्मविश्वास से उससे 'काफी' पीने के लिये कहा, यह नहीं पूछा कि "काफी पीजिएगा ?" इसका ऐसा मंत्र-प्रभाव उस पर पड़ा कि उसकी जीभ में जैसे ताला लग गया और वह कठपुतले की तरह प्याला लेकर घूँट-घूँट करके पीने लगा। सुनंदा इस बार बैठी नहीं, पर खड़ी रही। इस बार राजीव को उसकी आँख से आँख मिलाने का साहस नहीं होता था। राजीव 'काफी' पीता हुआ कनखियों से उसकी ओर देख लेता था। वह देख रहा था उस आश्चर्यजनक रूप से साहसी नारी को जो कुछ ही देर पूर्व की अशोभन घटना के बावजूद अर्द्धरात्रि के उस एकांत मे उसे काफी पिलाने आयी थी, जो कटु व्यंग्यों की बौछार की ताजी स्मृति मन मे लिये हुए भी स्निग्ध, मंद मुसकान मुख पर झलकाये हुए उसके सामने खड़ी थी।

"तुम सचमुच बड़ी बहादुर हो, सुनन्दा", मूर्ख राजीव के मुँह से इतनी बात निकल ही आयी, हालाँकि उसने निश्चय किया था कि इस बार एक शब्द भी वह नहीं बोलेगा—किसी और कारण से नहीं, केवल इस आशका से कि कही कृष्णा जी इस बार भी न जग पड़ें और फिर एक बार, उमाप्रसादजी की उपस्थिति में, कुछ व्यर्थ की कहा-सुनी हो जाय। पर सुनन्दा को पूर्ण आत्म-विश्वास से मुसकराते देखकर उससे नहीं रहा गया और फक से उसके मुँह से उस तरह की बेवकूफी की बात निकल पड़ी।

"जल्दी पी लीजिए, 'काफी' ठंडी हो जायगी।" उसकी बात के उत्तर में सुनन्दा बोली, और ऐसा कहते हुए उसकी मुसकान और अधिक उभर आयी।

सहसा किसी के चप्पलों की आवाज़ सुनकर राजीव चौकन्ना हुआ। उसके थोड़ी ही देर बाद उसने घबराकर देखा, सामने उमाप्रसाद जी खड़े हैं।

"ओह, राजीव, तुम हो। अभी तक सोये नहीं ?"

सुनन्दा सामने से हटकर एक कोने में खड़ी हो गयी।

"नहीं भैया," अपने स्वर में यथेष्ट दृढ़ता लाने का प्रयत्न करता हुआ राजीव बोला—"आज शाम से मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं है। अभी तक आँख नहीं लग पायी। मुझसे क्या कोई काम था ?"

"नहीं," उपेक्षा का भाव जताते हुए उमाप्रसादजी तनिक रूखे स्वर में बोले—"मैं यों ही चला आया था—यह जानने के लिए इस समय कौन जगा है, सुनन्दा किससे बोल रही है।"

"राजीव बाबू को 'काफी' बहुत पसन्द है। एक प्याला बचा था, इसलिए मैं इनके लिए भी ले आयी।" सहज स्वाभाविक स्वर में, उसी स्निग्ध मुसकान के साथ सुनन्दा ने कहा।

राजीव उसका वह धैर्य और अविचल शान्त भाव देखकर हैरान था। साहस और वीरता की पूजा उसने जीवन में बराबर की थी, इसलिए इस बार भी उसने उस वीर नारी को मन-ही-मन प्रणाम किया।

"ओह, ठीक है !" कहकर उमाप्रसाद जी चले गये।

राजीव सोचने लगा कि जब भावावेग में वह कह उठा था कि "सुनन्दा, तुम बड़ी बहादुर हो," तब उसकी यह बात उमाप्रसाद जी के कानों तक पहुँची या नहीं ? और यदि पहुँच चुकी है तो उन्होंने उसकी उस बात को किस रूप में ग्रहण किया ? उसे अपनी वह उत्सुकता स्वयं निरर्थक लगी, क्योंकि वह जानता था कि उसके प्रश्न का उत्तर किसी भी रूप से प्राप्त हो सकना असंभव है।

जब वह पी चुका तब खाली प्याले के लिये सुनंदा ने स्वयं हाथ बढ़ाया—उसी शांत, मधुर, अकपट मुसकान से भरी मुखमुद्रा और बड़ी-बड़ी आँखों की स्निग्ध सौहार्दपूर्ण चितवन के साथ।

बत्ती बुझाकर, किवाड़ फेर कर जब सुनंदा प्याला लेकर चली गयी तब राजीव के अन्तर से केवल एक ही आवाज निकलने लगी—"आश्चर्य ! आश्चर्य !"

आठवाँ परिच्छेद

सुनन्दा दूसरे दिन नित्य की तरह तड़के सवेरे उठी। उसका यह नियम था। रात मे चाहे कितनी ही देर तक जगी क्यों न रहती हो, सवेरे, पौ फटने के पूर्व ही, वह निश्चित रूप से पलँग पर से उठ जाती थी। उठकर नहा धोकर, वह पूजा के कमरे मे चली गई ! इस कमरे की सफाई वह प्रतिदिन स्वयं अपने हाथ से करती थी। कमरे मे पूरब की ओर की दीवार पर, नीचे के हिस्से मे, बायीं ओर रामायतन का चित्र, दायीं ओर हनुमानजी का एक अलग चित्र, और उन दोनों के ऊपर बीच मे शिव और पार्वती का बड़ा-सा चित्र टँगा था। उन तीनों के ऊपर एक ओर बुद्ध की

ध्यानमग्न प्रशांत मूर्ति और सुदर्शन चक्रधारी कृष्ण की ज्ञान-ज्वाला पी हुई निर्विकार, निर्लिप्त सौम्य मूर्ति के चित्र टँगे थे। दोनों चित्र किसी अपेक्षाकृत अच्छे कलाकार की कृति जान पड़ते थे। एक ओर धूपदान और दूसरी ओर बत्तीदान बड़े करीने से रखे हुए थे। धूपदान मे धूप की दो बत्तियो जल रही थीं, जिनसे दो टेढ़ी-मेढ़ी, किन्तु प्रायः समानांतर, रेखाओं मे रेशम की लच्छियों की तरह धुआँ ऊपर को उठ रहा था। बत्तीदान मे ताँबे के एक झलमलाते हुए दीये में सीधी, नुकीली दीप-शिखा प्रायः अकंपित रूप से जल रही थी। उसकी वह आश्चर्यजनक रूप से स्थिर ज्योति कमरे की छत पर से नीचे लटके हुए बिजली के लट्टू के प्रकाश से भी जैसे तनिक मन्द नहीं हो पाई थी। अगल-बगल मे, उत्तर और दक्षिण की दीवारों से जुड़े हुए दो समान आकार वाले आलों पर भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की हाथीदाँत की बनी छोटी छोटी मूर्तियाँ अत्यन्त कलात्मक ढङ्ग से सजाकर रखी हुई थीं। नीचे फर्श पर एक चौड़े से, पीढ़ानुमा तख्त पर प्रायः उतनी ही चौड़ी कुश की चटाई बिछी थी। सुनन्दा उसी पर पद्मासन की तरह पलथी मारकर बैठ गई। कमर, पीठ और सिर को योगियो की तरह सीधा करके सामने चित्रों की ओर मुँह किये वह अधमुँदी आँखों से ध्यान—और, शायद मौन जप भी—करने लगी। ध्यान कर चुकने के बाद वह पास ही एक छोटी-सी तिपाई पर रखी हुई गीता की पुस्तक खोलकर मौन भाव से पढ़ने लगी। दो तीन अध्याय पढ़ चुकने के बाद वह उठ खड़ी हुई।

वहाँ से अपने कमरे में गई। उजाला हो गया था। सूरज

प्रायः निकलने को था। उसके किवाड़ खोलने की आवाज से उमा-प्रसादजी की प्रायः ढाई साल की लड़की जानकी जग गई। वह सुनन्दा ही के साथ, उसी के पलँग पर, सोया करती थी। शीतल प्रसाद उससे दो साल बड़ा था। वह भी उसी कमरे मे उसके पलँग से सटे हुए एक छोटे से पलँग पर सोता था। वह अभी नही उठा था।

सुनन्दा जानकी को गोद मे लेकर उसका मुँह चूम कर उसे गुसलखाने मे ले गयी। कुछ देर बाद उसका हाथ-मुँह धोकर उसे फिर कमरे मे ले आयी। उसके कपड़े बदल कर, कंघी-चोटी करने के बाद एक बढ़िया सा केक उसे खाने को दिया और ऊपर से एक गिलास मे दूध लेकर पिला दिया। इस बीच शीतलप्रसाद भी जग गया था। पलँग पर लेटे लेटे नकियाता हुआ ही बोला—"बुआ, आज हम दूध नही पीयेंगे, चाय पीयेंगे।"

"कान पकड़ेंगे दुष्ट के!" सस्नेह डाँट बताती हुई सुनन्दा बोली—"बच्चे भी कभी चाय पीते है? क्या पीते हैं बच्चे, बताओ तो रानी बिटिया?" जानकी की पीठ पर हाथ रख कर पुचकार कर सुनन्दा ने पूछा।

"गेग, बिछगुट औ' दू'।" जानकी ने तत्काल बड़े उत्साह से उत्तर दिया। उसका उत्तर सुनकर शीतल खिलखिला-कर हँसता हुआ उठ बैठा। सुनन्दा भी हँस पड़ी और उत्कट दुलार से बार-बार उसका मुँह चूमती हुई कहने लगी—"बड़ी रानी बिटिया है हमारी।"

उसके बाद उसने शीतल को आज्ञा दी कि जल्दी हाथ-मुँह धोकर आये। शीतल चला गया। कुछ देर बाद जब शीतल लौट

कर आया तब उसे भी बिस्कुट देकर वह दोनों भाई-बहिन को खेलने के लिए छोड़ गयी और स्वयं प्रमीला के कमरे में गयी। प्रमीला उमाप्रसाद जी की बड़ी लड़की थी। युनिवर्सिटी में एम० ए० प्रीवियस में पढ़ती थी। उसने अपना विषय राजनीति—बल्कि कूटनीति—चुना था। बड़ी ढीठ लड़की थी। प्रतिदिन साइकिल से युनिवर्सिटी जाती और साइकिल से ही वापस आती। घर के सब लोग उससे डरते थे। किसी का भी कोई दबाव वह तनिक भी सहन नहीं कर पाती थी। पर थी बड़ी समझदार और उस सारे घर में एक मात्र वही समय-असमय सुनन्दा का पक्ष लिया करती और सुनन्दा के सम्बन्ध में अकसर अपनी माँ से भी झगड़ पड़ती थी।

प्रमीला अभी तक सोयी हुई थी। सुनन्दा ने पहले उसका नाम ले-लेकर उसे जगाने प्रयत्न किया, पर इतने पर भी जब वह न उठी तब उसे धीरे से हिलाना आरम्भ किया। "ऊँ!" कहती हुई प्रमीला करवट बदलने लगी।

"यह लो फिर सोने लगी! उठेगी नहीं? दोपहर होने को है! चल उठ! जल्दी!" और वह फिर उसे हिलाने लगी। "ऊँ!" कहकर प्रमीला ने फिर करवट बदली।

"बड़ी बेहया लड़की है!" सुनन्दा कुछ खीझकर बोली—"इम्तहान के सिर्फ दो-ढाई महीने बाकी रह गये हैं, और इसे इतनी बेफिक्री है कि सिवा सोने के और किसी बात की चिंता नहीं।"

प्रमीला ने फिर एक बार जोर से 'ऊँ!" करके अँगड़ाई ली और तब बोली—"बुआ, चाय लाई हो क्या?"

"बुआ चाय लाई हो क्या ?" उसकी नक़ल उतारती हुई सुनन्दा बोली—"बिना हाथ-मुंह धोये, बिना कुल्ला किये ही क्या चाय पियोगी ! दिन पर दिन तेरी आदत बिगड़ती जा रही है। उठ, कुल्ला-वुल्ला कर। मै चाय लाती हूँ।"

प्रमीला अनिच्छा से, गरम रेशमी लिहाफ का मोह त्याग कर धीरे से उठी। वह समझ गयी थी कि आज किसी कारण से बुआ का मिजाज ठीक नही है, अन्यथा वह उसे अक्सर पलँग पर ही चाय पिलाती रही है। इसलिए आज उसके आदेश का पालन किये बिना निस्तार नहीं।

प्रमीला को उठाकर सुनन्दा चाय बनाने चली गई। एक बड़ी केतली मे पानी खौलने ने लिए उसने पहले ही रख दिया था।

नौकरानी की सहायता से उसने एक बड़े बर्तन मे चाय का पानी उँड़ेलकर उसमें दूध-चीनी मिलाकर अलग-अलग प्यालो मे उसे भरा। सब से पहला प्याला उसने अपनी भाभी के लिए नौकरानी के हाथ भेज दिया। वह जानती थी कि भाभी पलँग पर लेटे-लेटे चाय के लिए बेचैन हो रही होंगी और बिना उसके वह पलँग पर से हिलेंगी नहीं। उसके बाद प्रमीला और भवानी के लिए उसने चाय भेजी। भैया और राजीव के लिए उसने यह सोचकर चाय नहीं भेजी कि दोनों रात मे देर से सोये है, बाद मे पी लेंगे। उसके बाद सभी नौकरों को चाय पिलायी और अन्त में जो आधे प्याले के करीब चाय बच गयी उसे स्वयं पीकर वह रसोई का प्रबन्ध करने के लिए चली गयी।

राशन का हिसाब ठीक रखने के उद्देश्य से वह महाराज से

स्वयं अपने सामने आटा और चावल निकालने के लिए कहती थी। किस दिन कौन-कौन सी तरकारियाँ किस विधि से बनेंगी यह भी वह स्वयं बड़े विस्तार से महाराज को बता जाती थी। एक-आध विशेष तरकारी वह अपने ही हाथ से बनाती थी। नयी-नयी विधियों से दाल, कढ़ी, भाजी, चटनी आदि बनाने की कला में वह सिद्धहस्त थी। महाराज यह बात जानता था, इसलिये छोटी से छोटी बात के लिए बिना उससे पूछे वह कोई चीज नहीं बनाता था। प्रत्येक मसाले का अनुपात वह ठीक-ठीक नाप-तौल से बताती थी।

"बीबी, राशन अब सिर्फ दो ही दिन के लिए बचा है। आज मँगवा लेना", पुराने महाराज गंगादीन ने कहा।

"हाँ, हाँ, मुझे याद है, डायरी में नोट किया हुआ है, तुम इसकी चिंता न करो। यह बताओ कि आज दाल किस चीज की बना रहे हो?"

"मूँग चुक गई है, खाली अरहर है। वही चढ़ा रहा हूँ।"

"ठीक है। वही बनाओ। और देखना, इसमें थोड़ी सी मेथी, थोड़ा सा सोवा और दो-चार अच्छे लाल-लाल टमाटर काटकर छोड़ देना। अदरक भी मैंने मँगाया था, बुलाकी लाया है?"

"हाँ, लाया तो है।"

"तो उसे भी छोड़ना न भूलना। तरकारी काहे की बनाओगे?"

"तुम्हीं बताओ।"

"एक तरकारी मटर, आलू, गोभी, टमाटर सब को मिला कर

बना देना—रसेदार। और एक बैंगन की कलौंजी बना देना, सूखी की जगह पर आज वही रहेगी। देखना, कलौंजी में मसाले ठीक से डालना—जो-जो मसाले मैंने उस रोज बताये थे याद हैं न ?"

"सब याद हैं।"

"तब ठीक है। और नमक भी अंदाज से डालना। उस रोज़ नमक कुछ ज्यादा हो जाने से भवानी ने उसे चखा तक नहीं। और चटनी आज भी आँवले की बने। प्याज, अदरक और हरा धनिया उसी के साथ पिसवा लेना। जीरा पीसने के पहले उसे हलकी आँच मे थोड़ा सा भून लिया जाय। जब सब पिस जाय तब बच्चों के लिए थोड़ी-सी चटनी अलग निकाल कर बाकी में पाँच-सात हरी मिर्चें पीस कर मिला ली जायँ—बुलाकी से कह देना। वह गया कहाँ, पता नहीं चलता। ऐसा गँवार है कि जिस काम को भेजो पहले तो घंटों बिता देगा और फिर अधूरा करके लौट आयेगा। उस रोज फुलौरियों के लिए बेसन में डालने को सोडा मँगाया, पूरे घंटे भर बाद लौटा और जब आया तो सोडा वाटर की एक बोतल सामने रख दी !" कहकर सुनंदा खिलखिला उठी और महाराज भी अट्टहास कर उठा।

रसोई का प्रबंध कर चुकने के बाद सुनंदा 'भंडार-गृह' मे गई। ताला खोलकर भीतर जा कर उसने देखा कि राशन का कितना सामान बचा है, दाल, मसाला, घी, नोन, तेल, लकड़ी का क्या हाल है। सब-कुछ देख चुकने के बाद महाराज से कहा—"फुर्सत पा जाओगे तो मुझसे राशन कार्ड लेते जाना। आज शाम तक राशन आ जाना चाहिए, नहीं तो बाद में कठिनाई पड़ेगी।"

उसके बाद वह अपने कमरे में वापस गयी। इस बीच जानकी कई कांड कर चुकी थी। एक पुस्तक खोलकर फाड़ डाली थी, 'काफी' का एक छोटा-सा खुला टिन उलट दिया था, 'काफी' के चूर्ण से मुँह भर लिया था, सुनंदा की साड़ियाँ और दूसरे कपड़े इधर उधर बिखेर दिये थे; आदि-आदि। देखकर सुनंदा खीभ उठी और उसे डाँट बताने लगी। उसका वह रुख देखकर जानकी शांत भाव से खड़ी हो गयी और उसे मनाने के उद्देश्य से बड़े प्यार-भरे स्वर मे बोली—"बुआ बली अच्छी है !" उसकी चतुराई देखकर सुनंदा का सारा क्रोध जाता रहा और वह हँस पड़ी। उसे गोद मे लेकर, अपने रूमाल से उसका मुँह पोंछकर वह उसका कपाल चूमने लगी। उसके बाद उसे समझाने लगी कि इस तरह के उपद्रव करने से कितना नुकसान होता है और बुआ को कितना कष्ट होता है। जानकी बड़ी सयानी लड़की की तरह ध्यानपूर्वक सुनने लगी। उसके बाद बोली—"अब नहीं कलेंगे।"

नौकरानी को बुलाकर सुनंदा ने सारे कमरे की सफाई करायी। उसके बाद जानकी को नीचे बिठा कर कागज-पेंसिल लेकर उसने उन सब चीजों की सूची तैयार कर डाली जिन्हें उसी दिन खरीद लेना आवश्यक था।

नवाँ परिच्छेद

यह सब कर चुकने के बाद जानकी को नौकरानी की देख-रेख में छोड़कर वह बिजली की अँगीठी के पास गयी और 'काफी' तैयार करने लगी। जब तैयार हो चुकी तब एक भरा

प्याला लेकर उमाप्रसाद जी के कमरे में जाकर उन्हें पुकारा। उनकी नींद खुल चुकी थी। वह प्रायः हड़बड़ाते हुए उठ बैठे। सुनंदा कुछ देर वहीं खड़ी रही। जब कृष्णा जी ने नहा धोकर कमरे मे प्रवेश किया तब वह जाने लगी। जाते हुए उसने पूछा—"भैया, एक प्याला और लोगे?"

"अच्छी बात है।" धीरे से उमाप्रसाद जी ने कहा।

सुनंदा एक दूसरा प्याला भर कर ले आई और धीरे से पास ही रखी हुई तिपाई पर उसे रखकर चली गई। उसके बाद एक प्याला और भरकर राजीव के कमरे की ओर बढ़ी। चाय और 'काफी' का ही एक बहाना था जिसके जरिये से वह राजीव से दो बातें कर पाती थी। इसलिए इस अवसर को वह किसी भी हालत में नहीं चूकना चाहती थी।

किवाड़ खोलकर उसने देखा, राजीव पलॅग पर बैठा हुआ एक पुस्तक पढ़ने में तल्लीन है।

"बहुत देर के जगे है, क्या?" सुनंदा ने कहा—"मै तो सोचती थी कि आप अभी तक सोये होंगे।"

राजीव ने खुली हुई पुस्तक मेज पर उलटकर रख दी और शांत भाव से, धीमे स्वर में कहा—"मुझे देर तक सोने की आदत नहीं है।"

सुनंदा ने राजीव की नजर बचाकर बड़ी सफाई से पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर सरसरी नजर डाल कर उसका नाम पढ़ लिया—"वीम्यन इन बांडेज।"

वह हाई स्कूल तक अंगरेजी पढ़ी हुई थी और उसके बाद

घर पर भी—मुरादाबाद मे—उसने अपना अंगरेजी ज्ञान काफी बढ़ा लिया था। लखनऊ आये उसे प्रायः आठ वर्ष हो चुके थे। यहाँ भी प्रारम्भिक दो वर्ष उसे अंगरेजी सीखते रहने और उमाप्रसाद जी के पुस्तकालय से कुछ पिछले युगो के और कुछ नये युग के अंगरेज लेखको की रचनाएँ पढ़ते रहने का अवकाश मिला था। बाद मे वह गिरस्ती के धंधों में ऐसी उलझ गई थी, कि उसका पढ़ना-लिखना एक प्रकार से छूट गया था। पर आज राजीव के पास उक्त पुस्तक देखकर उसके मन मे बहुत दिनों से दबी हुई आकांक्षा के साथ-ही-साथ एक वर्णनातीत वेदना जाग उठी और टीस मारने लगी। 'वीम्यन इन बांडेज' क्या पुस्तक के इस नाम ही में कोई जादू था? या उस जादू का यह कारण था कि उस पुस्तक में राजीव दिलचस्पी ले रहा था?

प्याला राजीव की ओर बढ़ाती हुई सुनन्दा बोली—"मुझे पता नहीं था, राजीव बाबू कि आप स्त्रियों के प्रति इतने सहानुभूतिशील हैं।" उसके मुख पर एक कृत्रिम व्यंग-भरी मुसकान झलक रही थी।

प्याला हाथ में लेते हुए राजीव चौंक-सा उठा; जिसके फलस्वरूप प्याला हिला और बहुत-सी 'काफी' तश्तरी में जा गिरी। घबराई हुई दृष्टि से उसने पूछा—"क्यों? किस बात से तुमने यह अनुमान लगाया?" उसे संदेह हो रहा था कि कल जो उसने अपना अपराध बताकर कृष्णा जी से क्षमा माँगी थी उसी सम्बन्ध में सुनन्दा कुछ कहने जा रही है। उस अप्रिय घटना को वह एक प्रकार से भूल चुका था। उसकी याद फिर से उभर आने

उसका जी खराब हो गया।

"स्त्रियों की बन्धनग्रस्त अवस्था के प्रति आप इस कदर सचेत है!"

"यह तुमने कैसे जाना ?" आश्चर्य से राजीव ने पूछा।

"वीम्यन इन बांडेज!" फिर वही व्यंग-भरी मृदु-मधुर मुसकान।

"ओ हो! होः होः होः।" बात समझ मे आने पर राजीव अट्टहास न रोक सका।

"फिर ठहाका!" कृत्रिम डॉट से आँखें तरेरती हुई सुनन्दा बोली—"कल के अपराध के लिए क्षमा माँगने पर भी आप फिर वही अपराध कर रहे हैं!"

राजीव तत्काल सहमकर, सिकुड़कर रह गया। जीभ काटते हुए दबे स्वर में उसने कहा—"मैं तो भूल ही गया था। सचमुच गलती हुई मुझसे। तुम जाओ, सुनंदा। नहीं तो फिर डॉट पड़ेगी। नौकर को भेज देना, वह प्याला ले जायगा।" और वह अत्यन्त गम्भीर भाव से, जल्दी-जल्दी 'काफी' गटकने लगा।

"अरे, आप तो इतनी जल्दी घबरा भी जाते हैं, राजीव बाबू! एक भूतपूर्व क्रान्तिकारी को यह नहीं सुहाता।" इस बार जैसे सुनंदा के स्वर में एक वास्तविक, गंभीर और तीखा व्यंग भरा था।

"क्या नहीं सुहाता ?"

"यही, ज़रा-ज़रा सी बात पर बुरी तरह घबरा उठना, बात-बात मे दबकर अपना झूठ-मूठ का अपराध स्वीकार कर लेना और क्षमा माँग लेना।"

राजीव अकृत्रिम विस्मय से उसकी ओर देखता रह गया। उसकी साहसिकता का थोड़ा-बहुत परिचय वह कल ही पा चुका था और उसके पहले भी। पर आज उसे लग रहा था कि उसकी सीमा कहाँ पर है इसका अंदाज लगा पाना उसके लिए असम्भव है। वह खोयी हुई आँखों से देख रहा था सुनन्दा के गोरे, तमतमाये-से मुख पर झलकता हुआ स्वतःप्रदीप्त प्रकाश, उसकी घनी, काली, सब समय प्रायः तनी हुई भौंहों की वक्र रेखाएँ, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की नीली झाँई के भीतर विभासित होता हुआ आश्चर्यजनक आत्म-विश्वास और उसी आत्म-विश्वास-जनित 'हलका-सा व्यंगाभास'। कहाँ से पाया उस कर्म-चक्र से पिसी हुई चिर-एकाकिनी नारी ने वह आत्म-विश्वास? उसके भीतर कौन ऐसी रहस्यात्मक शक्ति छिपी है जो उसे समस्त संसार के विरोध की सम्पूर्ण अवज्ञा करके अपनी ही अंतःप्रज्ञा द्वारा निर्धारित कर्तव्य-पथ की ओर निश्चिंत भाव से बढ़े चले जाने की प्रेरणा देती रहती है?

"तुम ठीक कहती हो, सुनंदा," अत्यन्त गंभीर भाव से राजीव ने कहा। "इधर कुछ समय से मैं स्वयं यह महसूस करने लगा हूँ कि मेरे स्वभाव में किन्हीं कारणों से कायरता आने लगी है। जिस बात को मैं नैतिक और चारित्रिक दृष्टि से उचित और न्यायसंगत मानता हूँ उसे न तो स्पष्ट कह पाता हूँ न उसके अनुसार चल पाता हूँ। यह बात सदा मेरे स्वभाव के विपरीत रही है। जेल से छूटने के बाद मैं अपने को चारों ओर से जिन झूठे बंधनों से जकड़ा हुआ पा रहा हूँ वे यद्यपि मकड़ी के जाले से ज्यादा

मजबूत नहीं हैं, तथापि बड़े चिपचिपे हैं। ये जाले केवल मेरे चारों ओर तने हुए नहीं हैं, बल्कि जैसे कोई उन्हें मेरे भीतर भी बुनता चला जा रहा हो। मुझे याद है, एक बार जब मै खुफिया पुलिस की नजर से बचने के लिए एक पहाड़ी खोह के भीतर घुसा था तब वहाँ मुख-द्वार पर और भीतर कुछ दूर तक इस कदर जाले पर जाले तने हुए थे, और वे जाले भी इस कदर घने थे कि मेरे सिर के बालों मे, मुख में, आँखो मे, नाक मे, पीठ मे चिपकते चले गये, यहाँ तक कि मेरा सारा शरीर जालमय हो गया। जब मैं बाहर निकला तब उन जालो को निकालने मे मेरा प्रायः सारा दिन चला गया। जैसी खीझ और परेशानी उस दिन मुझे हुई वैसी कभी नहीं हुई। खुफिया पुलिस के बड़े-बड़े जालों से मैं बड़ी आसानी से, मछली की तरह पानी मे तैरता हुआ पार निकल गया हूँ, रेलगाड़ियो में खजाना लूटते हुए और शस्त्रागारो पर धावा बोलते हुए बख्तरबन्द सिपाहियों के जाल से मैं साफ बचकर निकल गया हूँ, पर मकड़ियो के उन घने और एक-दूसरे से सटे हुए जालों के भीतर जब मैं फँसा तब उन्हें तोड़ने पर भी उनसे छुटकारा न पा सका। ठीक उसी तरह के जाल आजकल मुझे घेरे हुए है।"

सुनंदा बड़े गौर से, भावमग्न दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी, जैसे उसके आशय को ठीक-ठीक समझने का प्रयत्न मस्तिष्क की पूरी शक्ति से कर रही हो।

"वे कौन से जाल हैं, राजीव बाबू ?" वह पूछे बिना न रह सकी।

"झूठी सामाजिकता, अंध परम्परा से प्रचलित मिथ्याचार-पूर्ण अलौकिकता और झूठे शिष्टाचार द्वारा फैलाये गये जाल।"

"यहाँ तो बड़े-बड़े जाल बिछाये जा रहे हैं! चाय पी चुके लाला ?" सहसा कृष्णा जी ने सुनंदा के पीछे से होकर प्रवेश करते हुए कहा।

दोनो चौंक पड़े। फिर भी सुनंदा स्थिर खड़ी रही। राजीव को अचानक यह महसूस हुआ कि कृष्णाजी जैसे जानबूझ कर उन दोनो के बीच की एकांत वार्ता को भंग करने के उद्देश्य से आई है, उसका कुशल-समाचार पूछने नहीं। पर वह सोचने लगा—वह इस बात से क्यों चिढ़ती हैं कि वह और सुनन्दा बीच-बीच में कुछ बोल लेते हैं ? वे लोग कोई ऐसी बात तो करते नहीं जो किसी भी दृष्टि से आपत्तिजनक हो। झूठी लौकिकता की दृष्टि से भी उन दोनों के बीच के क्षणिक वार्तालाप से परिवार की या समाज की कोई हानि होती हो, ऐसा भी नहीं है। सक्सेना परिवार मे पर्दा प्रथा का अस्तित्व किसी भी रूप में अवशिष्ट नही है। तब क्यों सुनंदा पर इस कदर कड़ी नजर रखी जा रही है ? यह कृष्णाजी का सुनंदा के प्रति व्यक्तिगत विद्वेष है या समाजगत ? कृष्णाजी यह क्यो नहीं देख पा रही है कि उनके दृष्टिकोण की यह संकीर्णता व्यावहारिक नीचता मे परिणत होती चली जा रही है ?

'व्यावहारिक नीचता' की बात मन में जगते ही राजीव को अपने भीतर उसी पुरानी शक्ति का अनुभव होने लगा जिसे वह अपने जीवन में बराबर किसी भी अन्याय और अत्याचार के

विरोध में उमड़ता हुआ पाता था। और उस शक्ति के जगते ही उसका आत्म-विश्वास भी पूरे प्रवेग से जग उठा।

कृष्णाजी के कटु व्यंग का उत्तर देते हुए वह बोला—"हाँ भाभी जी, आपने ठीक ही कहा है। यहाँ निश्चय ही बड़े-बड़े जाल बिछाये जा रहे है—अन्याय और अत्याचार को फँसाने के लिए, और उन्हे कसकर बाँधकर उन्हें उनके असली रूप में सबके सामने रखने के लिये।"

"तुम्हारी बात मैं समझी नहीं।" भ्रांत भाव से राजीव की ओर देखती हुई कृष्णा जी बोलीं।

"भाभी जी, आप न तो समझ ही पायेंगी, न समझने की आवश्यकता ही है। समय आने पर सब कुछ स्पष्ट हो जायगा।" उसी दृढ़ आत्म-विश्वास भरे स्वर में राजीव बोला।

उसकी आँखों मे एक ऐसा प्रज्वलित गांभीर्य वर्तमान था जिसे देखकर कृष्णा जी सचमुच भीत हो उठीं। उन्हें याद आया कि राजीव एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी रह चुका है—एक ऐसा क्रांतिकारी जिसके लिये न तो अपने प्राणों का कोई मूल्य है, न जो दूसरों के प्राण लेने में हिचकता है।

सुनंदा भी शायद राजीव की उस दृष्टि से कुछ विचलित हो उठी थी। बोली—"लाइये राजीव बाबू, प्याला इधर दे दीजिये। आप तो 'काफी' पी चुकने पर भी प्याले को छोड़ना ही नहीं चाहते—जैसे यह प्याला न होकर आपकी चिर-प्रिय पिस्तौल रही हो।" उसकी आँखों की सांकेतिक दृष्टि में दुष्टता भरी थी।

राजीव यह भूल गया कि एक ही क्षण पहले उसके भीतर

प्रचंड विद्रोही शक्ति उफन उठी थी। वह फिर "होः ! होः !"
करके हँस उठा।

"फिर ठहाका !" कृत्रिम आक्रोश से आँखें तरेरती हुई सुनंदा बोली—"देखते नहीं, भाभी जी खड़ी हैं। कल मैं उन्हें वचन दे चुकी हूँ कि अब से न तो ठठोलियाँ सुनने मे आयेंगी न ठहाके।"

"ठीक, ठीक ! मैं फिर भूल गया था। भाभी जी, क्षमा..."

"फिर क्षमा माँगने का भूत तुम्हारे सिर पर सवार हो गया !" कहते ही सुनंदा ने भीतर-ही भीतर जीभ काटी। उसके मुँह से, न जाने भीतर के किस धक्के से, असावधानीवश 'तुम्हारे' शब्द निकल गया था। वह आज तक राजीव के लिए बराबर 'आप' सर्वनाम का प्रयोग करती आयी थी, हालाँकि राजीव प्रथम परिचय के कुछ ही दिनो बाद उसे 'तुम' कहकर सम्बोधित करने लगा था। वह सोचती थी कि राजीव को उससे 'तुम' कहने का सहज अधिकार है, क्योंकि वह उसे अपने से बहुत बड़ा मानती थी—केवल उम्र की दृष्टि से ही नहीं, वरन् बल, बुद्धि, विद्या और प्रतिभा की दृष्टि से भी। कभी-कभी उसके मन मे राजीव के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में एक विचित्र कल्पनात्मक अनुभूति जगती और उसे लगता कि राजीव अपने असली रूप मे खड़ा होने पर इतना ऊँचा हो उठता है कि आकाश की छत से सिर टकरा जाने के भय से उसे अपना सिर कुछ नीचे झुका-कर चलने को बाध्य होना पड़ता है। इसलिए उसका अधिकार-पूर्ण 'तुम' सम्बोधन प्रारम्भ ही से सुनन्दा को सहज और प्रिय लगता था। पर स्वयं उसे आज तक कभी राजीव को 'तुम' कहने

का साहस न हुआ। आज न जाने अन्यमनस्कता के किस क्षण मे वह 'तुम्हारे' कह बैठी। "छी-छी !"—वह मन ही मन कहने लगी—"वह अपने मन मे जाने क्या कहेंगे। और भाभी जी जाने क्या सोचेंगी। भाभी जी एक तो यों ही राजीव बाबू की जाल-सम्बन्धी व्याख्या से और मेरे विद्रूप से अप्रतिभ हो उठी हैं, तिसपर......छी-छी !" उसने फिर जीभ काटी।

राजीव अभी तक प्याले को अनमने भाव से पकड़े हुए था।

'लाइये, प्याला दीजिये !' तकाजे के स्वर मे सुनन्दा बोली।

राजीव ने खाली प्याला बढ़ा दिया। इस बीच कृष्णा जी चुपके से चली गयी थीं। कब गयीं, अपनी अन्यमनस्कता मे दोनो न जान पाये। प्याला हाथ मे लेकर जब सुनन्दा जानें लगी, तब राजीव ने सहसा उसे टोकते हुए कहा—"सुनन्दा, सुनो !"

"क्या बात है ?" उसकी ओर मुड़कर सुनन्दा ने कहा।

"सुनन्दा, तुम जितनी ही सुन्दरी हो उतनी ही महान् भी।" अत्यन्त गंभीर भाव से, बहुत ही धीमे स्वर मे राजीव बोला। "इसलिए एक बात मैं तुम से कहे देता हूँ। घर-गिरस्ती की यह चहारदीवारी चाहे कैसे ही मजबूत इस्पात की बनी क्यों न हो, वह तुम्हारे समान तेजस्विनी नारी को अपने घेरे में सदा के लिए नही बाँध सकती। या तो वह तुम्हारे तेज से गलकर ढह जायगी या तुम्हे जल्दी ही एक दिन स्वयं अपने ही तेज में अपनी ही आहुति दे देनी होगी ......"

सुनन्दा क्षण भर के लिए सन्नाटे में आ गयी और निश्चल पगों से खड़े रहकर अपलक आँखों की स्तब्ध दृष्टि से राजीव

की ओर देखती रह गयी। दूसरे ही क्षण वह सहसा बिना कुछ बोले, कमरे से बाहर निकल गयी।

दसवाँ परिच्छेद

राजीव को 'काफी' पिला चुकने पर सुनन्दा को सुबह के प्रारम्भिक कर्तव्य-कर्मों से अवकाश मिला। वह उसका प्रतिदिन का कार्यक्रम था। नित्य तड़के उठकर स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ के बाद सबको जगाना, किसी को पुचकारना, किसी को ताने सुनाना, किसी पर रोब जमाना और किसी को फटकारना पड़ता था। और अन्त में सबको चाय या काफी पिलानी पड़ती थी। नित्य एक ही प्रकार के कर्म-चक्र की एकरसता से वह कभी-कभी ऊब जाया करती थी और एक विचित्र अवसाद और उदासी की अनुभूति घने कुहरे की तरह उसके भीतर घर कर लेती। पर यह अनुभूति क्षणिक होती थी और वह फिर एक सहज कर्तव्य-भावना की प्रेरणा से दुगने उत्साह के साथ गार्हस्थिक प्रबन्ध के कामों में जुट जाती।

पर आज जब वह राजीव के पास से लौटकर अपने कमरे में आयी तब एक निराली ही वेदना उसके मन और प्राणों में भर गयी थी। उस वेदना में अवसाद की जड़ता नहीं, वरन् प्रलय के से विक्षोभ की एक प्रचंड गतिशीलता थी। उसमें प्रतिदिन के निर्विचित्र कर्मचक्र से उत्पन्न ऊब नहीं, वरन् एक ऐसा संवेग था जो उसे उस कर्म-चक्र के बहुत ऊपर उठाकर उससे बहुत दूर, एक तूफानी झोंके से उड़ा ले जाना चाहता था।

कमरे मे उस समय कोई नहीं था। जानकी बाहर नौकरानी के साथ चली गयी थी और शीतल भी कहीं किसी दूसरे कमरे मे शायद खेल रहा था। भीतर से किवाड़ बन्द करके सुनंदा पूरब की ओर की खिड़की के पास खड़ी हो गयी। बाहर लान मे एक सफेद गाय चर रही थी। अनमने भाव से उसी की ओर देखती हुई वह सोचने लगी—राजीव बाबू ने यह क्या अनोखी पीड़ा जगायी! इतने दिनों तक यह वेदना अवश्य ही गुप्त रूप से उसकी अन्तरात्मा को नसों में सञ्चरित हो रही थी; पर आज उसकी बाहरी नसों मे तीव्र वेग से प्रवाहित होने वाले रक्त के साथ ही वह कैसी प्रबलता से उमड़ पड़ी है! कौन इसके वेग को रोकेगा! इस प्रलयंकर, विकराल वेदना के सागर की उमड़ती हुई, क्षुब्ध गर्जन करती हुई लहरें समस्त विधि-विधान और सामाजिकता के प्रति विद्रोही होकर, लौकिकता के जहाज को सागर के अतल गर्त में विलीन करने के लिये व्याकुल हो उठी हैं। आज तक वह शान्त रूप से, अपने अन्तर्मन के अपरिस्फुट असंतोष को दबाती हुई, संसार, समाज और परिवार के सारे कर्म-चक्र को बिना किसी शिकायत के निभाती चली आ रही थी। पर आज अचानक यह कैसी सर्वध्वंसी झंझा उसके भीतर हाहाकार मचाने लगी! दुःसह पीड़ा से छटपटाती हुई वह खड़ी न रह सकी और पलँग पर लेट गयी। ऊपर से प्रशान्त रहने वाले उसके मन के भीतर ऐसी तांडवीय अशान्ति छिपी थी, इसके पहले इसका तनिक भी अनुभव उसे नहीं हुआ था।

काफी देर बाद उसका चित्त जब धीरे-धीरे कुछ स्थिर हो

पाया, तब अपने पूर्व जीवन की स्मृतियों को वह जगाने लगी। बहुत छोटी अवस्था से ही उसे छोटी से छोटी बात पर गंभीरता से विचार करने की आदत पड़ी हुई थी। जब उसके साथ की लड़कियाँ खेल-कूद मे मग्न रहतीं, वह अपने पास-पड़ोस की सयानी स्त्रियों के बीच जा बैठती और ध्यानपूर्वक उनकी बात-चीत सुनती हुई उनसे सीना-पिरोना और बुनना-काढ़ना सीखती रहती। स्कूली पढ़ाई मे भी वह इस कद्र दिलचस्पी लेती जैसे वह उसके जीने और मरने का प्रश्न हो। रात मे सोने के पूर्व वह अपनी अम्मा से रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुना करती। अपनी प्रकृति का भावुकता और असाधारण बुद्धि-मत्ता के कारण वह दस वर्ष की आयु मे ही इतनी सयानी हो उठी कि गृहस्ती का जितना धंधा उसकी अम्माँ किया करती थी वह उनसे कहीं अधिक करने लगी, और वह भी पूरी योग्यता से साथ। उसके पिता मुरादाबाद की म्युनिसिपलिटी में क्लर्की करते थे। उनके तीन लड़कियाँ थीं। दो का ब्याह करने मे उनके जीवन की तीन-चौथाई शक्ति व्यय हो चुकी थी। सुनंदा सबसे छोटी लड़की थी। उसकी सुन्दरता और असाधारण बुद्धिमत्ता देखकर उसके भविष्य के लिये बहुत चिंतित रहने पर भी वह उससे प्रसन्न रहते थे। वह उसे बहुत प्यार करते थे और चाहते थे कि वह अधिक से अधिक शिक्षा प्राप्त करे। इसलिये वह हाई स्कूल की अंतिम परीक्षा पास करने तक उसकी पढ़ाई का खर्चा किसी तरह जुटाते रहे। उसके आगे पढ़ाने का साहस उन्हें नहीं हुआ। ५० रु० मासिक पाने वाले एक क्लर्क के लिये, जो दो

लड़कियो के विवाह से पहले ही दिवालिया हो चुका हो, लड़की को उच्च शिक्षा देते चले जाना संभव नहीं था—विशेष कर जब शिक्षा वर्ष-प्रति-वर्ष महँगी होती चली जा रही थी। इसके अतिरिक्त लड़की सयानी हो चली थी और अब मुंशीजी को अधिक चिता उसके विवाह की थी। सुनंदा ने जब हाई स्कूल पास किया था तब वह सोलहवाँ वर्ष पार कर चुकी थी। स्कूल की नियमित पढ़ाई उसने बहुत देर में शुरू की थी। उसके पिता किसी ऐसे वर की खोज मे थे जो योग्य हो, समझदार हो, रुपये-पैसे का लोभी न हो और लड़की के रूप और गुण को ही अधिक महत्त्व देता हो। पर धीरे-धीरे उन्हें यह पता लगने लगा कि इस तरह की बातें केवल स्वप्नो की दुनिया में या किस्से-कहानियो मे ही संभव हो सकती हैं, यथार्थ जीवन मे नहीं। जब बहुत खोज और प्रयत्नो के बाद भी कोई सफलता न मिली तब तंग आकर अत मे मुंशीजी ने यह निश्चय किया कि लड़की को आगे पढ़ाकर, ट्रेनिंग पास करा लिया जाय, जिससे वह किसी स्कूल मे अध्यापन कार्य करके अपना जीवन-निर्वाह स्वयं कर सकने योग्य हो जाय। उसके बाद विवाह की सुविधा होगी तो अच्छा ही है, न होगी तो भी कोई बात नहीं। यथार्थ की चपेटों ने उन्हें प्रगतिशील बना दिया था। पर सुनंदा की माँ इस डर से कि लड़की यदि सचमुच अविवाहित रह जाय तो अपने साथ माँ-बाप को और पुरखो को भी, नरक में डुबावेगी, रात-दिन ब्याह के लिये हाय-हत्या मचाये रहतीं।

सुनंदा को ये सब बातें अत्यंत मार्मिक पीड़ा पहुँचा रही थीं।

उसके माँ बाप उसके लिये वर की खोज कर रहे हैं और कोई भी वर उसे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हो रहा है, इस बात की कल्पना उसे घोर अपमान-जनक लग रही थी। उसकी विद्रोही आत्मा रह-रहकर भीतर ही भीतर छटपटाती थी, मुक्ति का कोई उपाय न देखकर उसे जी मसोस कर रह जाना पड़ता था।

अंत मे एक दिन अचानक मुंशीजी के हृदय की धड़कन बन्द हो जाने से उनकी मृत्यु हो गयी। सुनंदा की माँ सिर पीट कर रह गयीं। पति की मृत्यु से लड़की की चिता दुगने वेग से उनके सिर पर सवार हो गयी। पास-पड़ोस की परिचिता स्त्रियो के आगे रोवा-पीटी मचाकर उनके द्वारा उनके पुरुषों से सुनंदा के लिये कोई वर ढूँढने के लिये मिन्नतें करने लगीं। अन्त मे उनके भगीरथ प्रयत्न सफल होते दिखायी दिये। एक वर मिल गया। वर अधेड़ था, तीसरी शादी थी, पिछले विवाहो से तीन चार बच्चे भी थे, बाल आधे पक चुके थे, सामने के दो दांत टूट चुके थे, पर था कमाऊ। कचहरी मे अहलमद के 'गौरवास्पद' पद पर नौकर था। "अहलमदी कितनी बड़ी इज्जत का पेशा है, बेटी, तू नहीं जानती", सुनंदा की माँ ने उसे समझाते हुए कहा—"खुद मजिस्ट्रेट साहब अपने जरूरी कागजों को सँभालने का भार अहलमद को ही सौंपते हैं। मेरे ताऊ यही नौकरी किया करते थे। लोगो में उनकी बड़ी इज्जत थी। और याद रखना कि आधे बाल पक जाने से कोई बुड्ढा नहीं हो जाता। मेरे मामा ने जब दूसरी शादी की थी तब उनके सब बाल पक चुके थे। उसके बाद उनके छः लड़के और चार लड़कियाँ हुईं। वर अभी जवान

है, मैंने खूब अच्छी तरह देख लिया है। तू कुछ चिंता मत करना।"

सुनकर लज्जा, घृणा और ग्लानि से सुनंदा का सारा शरीर सिकुड़ उठा था। पर परिस्थिति की विवशता देखकर उसने अपने कलेजे पर पत्थर रख कर इस सम्बन्ध में एकदम मौन धारण कर लिया था। माँ जब इस विषय में कोई बात कहतीं तब वह न विरोध करती न समर्थन। चुपचाप घर के काम किये चली जाती।

बरातियो के स्वागत की योजना को सफल बनाने मे पड़ोसियो ने सुनंदा की माँ को पूरी सहायता दी। स्वयं सुनंदा भी निर्देशित काम करती चली जाती थी। जैसे अपनी चिता के लिये स्वयं लकड़ियाँ सजा रही हो।

बरात आयी। माँ के पास जो सारे जीवन की सञ्चित पूँजी थी (दस-पन्द्रह सौ रुपये रहे होंगे) वह पूरी की पूरी उन्होंने लगा दी। पड़ोसियो ने भी कुछ सहायता की। जिस दिन लड़की की बिदाई हुई उस दिन आँसुओं का सागर उमड़ते रहने पर भी एक कल्पनातीत शांति उनकी आत्मा को मिली।

पर जब बिदाई के दूसरे ही दिन सुनंदा पति के यहाँ से भागकर उनके पास वापस चली आयी तब उन्होने अपरिसीम दुःख और क्रोध से प्रायः पागल होकर लड़की पर गालियों की ऐसी बौछारें कीं, उसे ऐसे भयानक रूप से तिरस्कृत और लांछित किया कि सुनंदा रह न सकी और उसने भी पलटे मे खरी-खोटी सुनाना शुरू कर दिया। माँ-बेटी मे दिन-भर वाक्-युद्ध होता रहा। उसकी माँ ऐसा उत्कट विष उगलती रहीं कि रह-रह कर सुनंदा के मन में गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या कर लेने

की इच्छा होती थी। पर उसकी विद्रोही आत्मा के भीतर न जाने कौन ऐसी स्वस्थ और सबल प्रवृत्ति वर्तमान थी. जो उसे आत्महत्या द्वारा, अत्यन्त कायरतापूर्ण उपाय से, मुक्ति होने से अंत तक रोकती रही। उसने निश्चय किया कि यदि विद्रोह ही करना है तो समस्त विरोधी समाज का सामना भी जीवित रहकर ही करेगी, मरकर नहीं।

रूढ़ि-ग्रस्त माँ की अंध ममता का खयाल उसे अवश्य था, इसीलिए वह मन-ही-मन कालकूट से भी तेज और कड़ुवे विष का घूँट पीती हुई उस घोर अपमानजनक विवाह के लिए किसी तरह राजी हो गयी थी। पर माँ की ममता और कर्त्तव्य की भावुकतावश उसने उस विवाह को स्वीकार करने के आत्मबलि-दान की भावना को दूर से अपनाने में भले ही सफलता पायी हो, किन्तु जब वह घोर विकराल और कुरूप यथार्थ के आमने-सामने खड़ी हुई तब वह उसकी विवशता क्षण-मात्र के लिए भी स्वीकृत न कर सकी। पति-रूपी वह नर-पशु, जिसके खूँटे पर वह बलि के बकरे की तरह बाँध दी गयी थी, आकृति और प्रकृति दोनो से उसे प्रत्यक्ष भूत की तरह लगा, जो तत्काल उसे फाड़कर खा जाना चाहता था। 'धर्म' का, समाज का और—सबसे अधिक—माँ का खयाल भी उसमें इतना धैर्य और साहस न दे पाया कि वह बिना किसी प्रतिरोध के, उस खूँटे पर शांत भाव से बलि होने के लिए बँधी रह जाती। सहसा एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति उसके भीतर, न जाने कहाँ से, जग उठी कि वह खूँटे से बँधी रस्सी तोड़कर बेतहाशा भाग निकली, पीछे की ओर उसने

एक बार मुड़कर भी न देखा। माँ के लाख कहने, सुनने, पुचकारने और धमकाने पर भी फिर उसने उस ओर कदम रखा ही नहीं।

माँ जीवन-संघर्ष में पहले ही काफी पिस चुकी थीं। तिस पर विद्रोही लड़की के पति-त्याग से उनके मर्म पर ऐसा आघात पहुँचा कि वह बीमार पड़ गयीं। बीमारी डाक्टरों की समझ में नहीं आयी, कोई 'बी० कोलाई' बताता था, कोई अन्तर्व्रण। प्रायः छः महीने तक वह पड़ी रहीं। सुनन्दा दिन-रात, प्रतिपल उनकी सेवा मे अपने शरीर और मन को खपाती रही। अन्त समय माँ ने अपनी भूल स्वीकार की, बेटी से क्षमा माँगी और उसे आशीर्वाद दिया कि वह जहाँ जिस अवस्था मे भी रहे सुख से रहे। उस आशीर्वाद से सुनन्दा का भावावेग पूरे प्रवेग से उमड़ पड़ा था और उसने अविरल आँसू बहाते हुए माँ के दोनों पाँवों की धूल अपने सिर पर ले ली थी।

सुनन्दा की उस निपट एकाकी और अनाथ अवस्था मे उसे अपने मामा का बड़ा सहारा मिला था। मामा उसकी माँ के अन्तिम दिनो मे उसी के पास रहे। जब माँ की मृत्यु हो गयी तब वह सुनन्दा को अपने यहाँ ले गये। वह अनूपशहर में रहते थे। माँ की मृत्यु के प्रायः एक वर्ष बाद उसने सुना कि उस व्यक्ति की भी मृत्यु हो गयी है जिससे एक दिन उसका आँचल बँधा था। सुनन्दा के लिए उसका कोई अस्तित्व ही कभी नहीं रहा, इसलिये यह संवाद सुनकर उसे न प्रसन्नता ही हुई न दुःख।

यह एक संयोग ही था कि वह लखनऊ आयी और एक नये

परिवार के स्नेह-बंधन में ऐसे घनिष्ठ रूप से बँध गई कि अब वह अटूट लगता था। उमाप्रसाद जी रिश्ते में उसके मामा के भतीजे लगते थे। एक दिन किसी आवश्यक काम से उसके मामा को लखनऊ जाना पड़ा। सुनंदा, न जाने क्या सोचकर, उनसे आग्रह कर बैठी कि उसे भी साथ ले चलें। शायद अपने एकरस जीवन से उकता जाने से उसके मन में क्षणिक परिवर्तन की इच्छा जगी थी। उसकी मामी ने भी स्नेहवश उसके मामा पर जोर डाला कि उसे लखनऊ दिखा लावें। फलस्वरूप मामा उसे साथ ले गये और लखनऊ में उमाप्रसाद जी के यहाँ ठहरे। अपने सहज स्नेहमय स्वभाव, सम्मोहक शील और अपूर्व माधुर्य-भरे रूप से सुनंदा ने दो ही दिन के भीतर उमाप्रसाद जी के परिवार के समस्त प्राणियों को इस कदर मोह लिया कि जब मामा उसे अपने साथ वापस ले जाने लगे तब बच्चों ने, नौकर-चाकरों ने, स्वयं कृष्णा जी ने, ऐसा विकट सत्याग्रह कर दिया कि उमाप्रसाद जी ने मामा से सुनंदा को वहाँ छोड़ जाने का आग्रह किया। कोई ‑पाय न देखकर और उमाप्रसाद जी के यहाँ हर तरह सुरक्षित जानकर, अंत मे मामा उसे वहीं छोड़कर जाने को राजी हो गये। वहाँ रहकर सब को अपने अंतर का अकपट स्नेह देकर और सबका अकपट स्नेह पाकर उस परिवार से सुनंदा ने अज्ञात रूप से ऐसा अविच्छेद्य सम्बन्ध जोड़ लिया कि वह अपने पिछले जीवन की समस्त स्मृतियों को धीरे-धीरे भूलती चली गयी और भावी जीवन की जो अस्पष्ट योजनाएँ वह अपने मन मे बनाया करती

थी उनकी भी धुँधली रेखाएँ उसकी आँखों के आगे से एकदम मिट सी गयीं। सैकड़ों बंधनो से जड़ित एकमात्र वर्तमान का ही स्नेह-सम्बन्ध उसके जीवन का एकमात्र सत्य बनकर रह गया। उमाप्रसाद जी और कृष्णा जी उसके दक्ष हाथों मे गिरस्ती के सारे प्रबन्ध का भार छोड़कर निश्चिंत हो गये।

यह था उसके आज तक के विचित्र चक्रमय जीवन का संक्षिप्त इतिहास। पिछले आठ वर्षो से वह चक्र घड़ी की गति की तरह एक निश्चित, नियमित क्रम से, बिना किसी परिवर्तन के, एक नहर के बँधे हुए प्रवाह की तरह, एकरूपता और एकरसता के साथ चला जा रहा था। उसके बाद जिस दिन राजीव ने इस घर में पहले पहल पाँव रखा उस दिन उसे एकदम विजातीय लगने वाले प्रौढ़ युवा को देखकर उस नहर में न जाने किस अज्ञात कारण से पहली बार एक ऐसी हिलोर उठी जो बाँध से टकराकर बड़े जोर से पछाड़ खाने लगी। उस समय उस हिलोर को उसने एक अस्थायी तरंग-विकार समझा था जिसे आसानी से नियंत्रण में रखा जा सकता है। पर आज राजीव ने केवल दो वाक्यों द्वारा सहसा एक ऐसी तूफानी हलचल उस नहर के बँधे हुए प्रवाह में मचा दी थी कि लगता था जैसे प्रलय की बाढ़ की उत्ताल तरंगें भीमवेग से उमड़-उमड़कर अपने चारों ओर के लौह-बंधनों को तोड़ती और ढाती हुई अपने पूर्व, प्राकृतिक, और आदिम रूप में मिलकर एकाकार होने के लिए व्याकुल हो उठी हैं। क्या उस बाढ़ मे निर्द्वन्द्व बहे चले जाने का साहस उसमें है? क्या वह अपने दो दुर्बल हाथो के अशक्त पतवारो

से अपने जीवन की जीर्ण और जर्जर नाव को उसमें खेते हुए पार लगा सकने में समर्थ है ? वह समर्थ हो चाहे न हो, पर अब यह बाढ़ तो जैसे रोके नहीं रुकना चाहती। "राजीव बाबू! राजीव बाबू! यह क्या किया आपने ? यह कैसी अनोखी भावना जगाई। मेरे अतल मे सोयी हुई प्रलय-प्रवृत्तियों को क्यों ऐसी निर्ममता से उभाड़ दिया ? क्यो ऐसा किया आपने ? आप महान है, आपकी दृष्टि बड़ी ही पैनी, बड़ी ही व्यापक है यह मै मानती हूँ। आप कोई बात बिना आधार के नहीं कहते। पर इस बार आपने जो मर्म को छूकर अन्तर को समूल हिला देने वाली बात कही, उसका ओर-छोर कहाँ पर है, मुझे बता दीजिए, राजीव बाबू!" और वह निःसीम व्याकुलता से अपना हृदय स्वयं चीरती हुई तकिये में मुँह छिपाकर फफक-फफक कर सिसक-सिसक कर रोने लगी।

कितनी देर तक वह फफकती और सिसकती रही इसका ठीक अंदाज लगा सकना उसके लिये असम्भव था। जब बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाया तब उसे लगा जैसे उसे रोते हुए पूरा युग बीत चुका हो। उसका जी उठने को नहीं करता था, हालाँकि खटखटाने का शब्द तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा था।

आँखें अच्छी तरह पोछ कर अन्त मे वह धीरे से उठी और दरवाजा खोला। उसने सोचा था कि या तो भाभी होंगी या कोई नौकर। पर खोलते ही उसने देखा, जानकी अकेली खड़ी है।

"पगली कहीं की!" जानकी को गोद में लेती हुई और परम स्नेह से उसका मुँह चूमती हुई सुनंदा बोली—"आवाज़ क्यो

नहीं दी ? इस तरह से खटखटाये जा रही है जैसे कोई तार लेकर आई हो।" और फिर वह उत्कट प्यार से उस पर चुम्बनों की बौछार करती चली गई। जैसे अकूल समुद्र में बहते हुए उसका खोया हुआ सहारा उसे मिल गया हो। नहीं, राजीव बाबू की भविष्यवाणी कभी सफल नहीं हो सकती। जिन बंधनो मे वह बँधी हुई है वे कितने प्रिय, कितने सुखकर है! उन्हे तोड़कर वह निराधार भटकने के लिए अनन्त शून्य मे जा कूदेगी ? कभी नही! और यह सोचते हुए उसे लगा कि जिस युगांत की हिलोर ने अभी कुछ ही समय पहले उसकी सम्पूर्ण चेतना को हिला दिया था वह एक क्षणिक दुःस्वप्न के सिवा और कुछ नही था। वह निश्चिन्त हो गई, वह बच गई!

और फिर उस दुर्दमनीय प्यार की तरंग ने उसके सम्पूर्ण मन और सारे शरीर को एक अपूर्व पुलकानुभूति से फड़का दिया। उसने पहले से भी अधिक तीव्र आवेग से जानकी को अपने अंचल मे दबा लिया और प्रायः दाँत पीसती हुई वह उस पर प्यार की वर्षा करने लगी।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

राजीव खाना खाकर कुछ देर आराम करने के बाद बाहर निकलने की तैयारी कर ही रहा था कि बाहर किसी की 'कार' का भोंपू सुनायी दिया। उसके मन मे साधारण सा कुतूहल हुआ और उसने अनमने भाव से अपने कमरे की खिड़की से बाहर झाँका। एक परिचित-सा व्यक्ति दिखायी दिया। वह पुरानी

स्मृतियों को कुरेदने लगा कि वह व्यक्ति कौन हो सकता है। सहसा आगंतुक की दृष्टि उस पर पड़ी और पैंट की जेबों में हाथ डालकर कुछ अजीब ढंग से मुसकराया। उसकी मुसकान देखते ही राजीव ने उसे पहचान लिया और उसके आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा। वह उसका पुराना साथी विजयकुमार था। प्रायः बीस वर्ष बाद आज वह उसे देख रहा था।

पहले राजीव ने सोचा कि विजय उसका पता कहीं से लगाकर उसीसे मिलने आया है। पर जब विजय बरसाती से भीतर प्रवेश करके सीधे ड्राइंग रूम की ओर मुड़ा और एक नौकर को उँगली के इशारे से बुलाकर उससे कुछ पूछने लगा तब राजीव की गलतफहमी दूर हुई।

राजीव कुतूहलवश स्वयं भी ड्राइंग रूम की ओर मुड़ा और गलियारे के किनारे पर अनिश्चित अवस्था मे खड़ा हो गया। दूसरे ही क्षण कृष्णा जी अत्यन्त प्रसन्न—प्रायः पुलकित—भाव ख पर झलकाती हुई, स्नेह-भरी आँखों से विजय की ओर देखती हुई आयीं। विजय ने सम्मान-पूर्वक उनकी ओर हाथ जोड़े।

"कानपुर से कब लौटे आप ?" कृष्णा जी ने उसके अभिवादन का उत्तर देते हुए कहा।

"कल ही पहुँचा हूँ। आप लोग सब कुशल से तो हैं ?" विजय ने एक सरसरी दृष्टि से अपने चारों ओर देखते हुए कहा।

राजीव को लगा, जैसे उसकी चंचल आँखें किसी को खोज रही थीं। राजीव की ओर उसने क्षण-भर के लिए कुतूहली आँखो से देखा, और फिर कृष्णाजी की ओर देखने लगा। जैसे

पूछना चाहता हो कि यह बर्बर कौन है ?

"आप है श्री राजीव वर्मा—और आप हैं श्री विजयकुमार माथुर।" दोनो का परिचय कराती हुई कृष्णा जी बोलीं।

"राजीव वर्मा!" अनिच्छित भाव से हाथ जोड़ते हुए विजय ने कहा और उसकी पलको और भौंहो पर बल पड़ गये, जैसे वह ठीक से देख न पा रहा हो।

"हाँ, मैं राजीव हूँ! वही पुराना परिचित राजीव। अभी नहीं पहचान पाये तुम ? मैं तो बहुत जल्द तुम्हें पहचान गया था।"

"ओ होः ! कहो मित्र, तुम यहाँ कब आये और कहाँ थे ?" मुख पर प्रसन्नता का भाव झलकाने का प्रयत्न करता हुआ विजय बोला, और धीरे से राजीव की ओर बढ़कर उसके दोनो हाथ पकड़ कर हिलाने लगा। "आज पूरे एक युग के बाद तुम से भेंट हुई है। बड़ी जबर्दस्त दाढ़ी बढ़ा ली तुमने ! इस बीच कहाँ-कहाँ और क्या करते रहे ?"

राजीव ने उसके स्वर में प्रसन्नता या उत्साह का लेश भी नहीं पाया। उसने कृष्णा जी की ओर देखा। उनकी आँखो से आश्चर्य का भाव अवश्य व्यक्त हो रहा था, पर प्रसन्न वह भी नहीं जान पड़ती थीं। राजीव को लगा कि वह विजय और कृष्णा जी के बीच मूर्तिमान विघ्न के रूप में खड़ा हो गया है। एक बार उसकी इच्छा हुई कि हाथ जोड़कर चुपचाप चल दे। पर उसके भीतर छिपी कोई शैशवकालीन दुष्टता उसे बलपूर्वक रोक रही थी।

"मैं बड़े-बड़े चक्करों में रहा, मित्र ! बड़ा लंबा दास्तान है,

जिस पर कई पोथे लिखे जा सकते हैं। पहले तुम अपना हाल बताओ! आजकल क्या करते हो ?" राजीव ने दुष्टता-पूर्वक मुसकराते हुए कहा।

"मैं सेक्रेटरियट में हूँ, डेपुटी सेक्रेटरी के पद पर। इधर दो महीने से छुट्टी पर हूँ," प्रायः मरे मन से विजय बोला।

"चलिए, भीतर बैठिए। यहाँ खड़े-खड़े कब तक बातें कीजियेगा !" तनिक खीझ-भरे स्वर मे कृष्णा जी ने कहा।

विजय ने एक बार प्रश्न-भरी दृष्टि से राजीव की ओर देखा, जैसे पूछना चाहता हो—"तुम यहाँ से हटोगे भी या नहीं ?" और फिर हाथ कुछ ऊपर की ओर उठाकर "अच्छा !" कहकर ड्राइंग रूम की ओर मुड़ा। राजीव को यह समझने में देर न लगी कि यह "अच्छा !" अँगरेजी "गुड बाई !" के अर्थ में है। फिर एक बार उसने चाहा कि लौट चले, पर फिर उसकी उसी बचकानी शरारत ने जोर मारा।

उसी दुष्टता के साथ हास्य करता हुआ वह बोला—"अरे, इतनी जल्दी और इतनी आसानी से मुझसे पिंड नहीं छुड़ा सकोगे ! पूरे एक युग के बाद मिले हो। इतने वर्षों तक के अपने जीवन का इतिहास सुनाओ और हमारा भी सुनो !"

"आओ, आओ, चलो, बैठो !" मुरझाये हुए स्वर में विजय ने कहा।

तीनों ने भीतर प्रवेश किया। इस बार विजय ने राजीव के कंधे पर हाथ रख दिया, जैसे अपना मनोभाव व्यक्त हो जाने से वह झेंप गया हो और यह उसी कि प्रतिक्रिया हो।

एक कौच पर उसने राजीव को अपनी बगल में बिठा लिया। कृष्णा जी भी, जैसे मन मारे, सामने एक सोफा पर बैठ गयी।

"और कहो! सन् तीस के आंदोलन के बाद फिर तुम कहाँ-कहाँ रहे और क्या-क्या करते रहे?" विजय बोला।

"संक्षेप में एक वाक्य मे अपना-सारा इतिहास बताये देता हूँ—पहले अंडमान और फिर अलीपुर संट्रल जेल!"

"अच्छा!" अकृत्रिम विस्मय से विजय ने कहा—"तो तुम क्रांतिकारियों के दल मे रहे? पर जैसा सीधा-सादा, शांत स्वभाव उन दिनो तुम्हारा था उसे देखते हुए इस बात पर किसी को विश्वास नहीं हो सकता था—इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी कि तुम क्रांति का पथ पकड़ोगे। आज तुम्हारी दाढ़ी देखकर मुझे अवश्य ऐसा लगा था कि तुम कोई कम्यूनिस्ट या क्रांतिकारी हो। पर यह मैं नहीं सोच सकता था कि तुम राजीव हो—वही राजीव जो सन् तीस मे जेल जाते से भी कतराता था!"

विजय के व्यंग से राजीव तिलमिला उठा। बोला—"हाँ, सेटफार्म पर खड़े होकर एक छपा हुआ पर्चा पढ़कर जेल जाने वालों ने जेल-जीवन को ऐसे प्रहसन में परिणत कर दिया था कि फिर उस ओर मेरी रुचि नहीं हुई!"

व्यंग का उत्तर कटुतर प्रतिव्यंग में पाकर विजय प्रसन्न नहीं हुआ। सन् तीस में वह धारा १४४ तोड़ने के अपराध में बहुत से दूसरे स्वयंसेवको के साथ कुछ दिनो के लिये जेल गया था। तब उसकी उम्र सोलह-सत्रह वर्ष से अधिक नहीं रही होगी। जेल जाने के पूर्व उसने सत्याग्रह से सम्बन्धित एक पर्चा

पढ़ा था। राजीव को यह बात याद थी।

विजय ने अत्यन्त गभीर भाव से कहा—"जेल जाने को गाँधी जी ने राष्ट्रीय असंतोष की भावना को व्यक्त करने का केवल एक प्रतीक माना था। हम लोग केवल उसी प्रतीक का प्रदर्शन कर रहे थे। जब सरल उपाय से उस प्रतीक की पूर्ति हो सकती थी तब व्यर्थ में किसी जटिल उपाय को अपनाने की आवश्यकता ही क्या थी?"

"ठीक है, जब केवल एक सप्ताह के लिए सादी कैद में रहने से राष्ट्रीय चेतना की अखंड ज्वाला को कायम रखने मे हाथ बटाया जा सकता था तब दीर्घ और कठोर कारावास का कष्ट उठाना व्यर्थ ही था!"

"राष्ट्रीय चेतना की अखंड ज्वाला" ये विजय के ही शब्द थे, जिनका प्रयोग वह अपने छात्र-जीवन में अक्सर किया करता था। राजीव ने उसी के शब्दो की याद दिलाते हुए ताना कसा था।

"बिलकुल ठीक है," अपना स्वर कुछ चढ़ाकर विजय बोला—"अनावश्यक कठोर कारावास को अपनाना मै केवल कृच्छ्र साधना समझता हूँ। अपनी इस मूर्खता पर जो गर्व करते है·········नमस्ते!"

राजीव ने आश्चर्य से देखा कि विजय का तीव्र आक्रोशपूर्ण भाव पल भर मे परिपूर्ण स्निग्धता और पुलक-भरी प्रसन्नता मे बदल गया। उसकी दृष्टि का अनुसरण करते हुए राजीव ने दरवाजे की ओर मुँह किया। देखा, प्रमीला नये वस्त्रों से सज-सँवरकर, मुख पर पाउडर के सद्यःप्रयोग से तरोताजा होकर

प्रवेश कर रही है।

प्रमीला ने एक निराली अदा से विजय की ओर दोनों हाथ जोड़कर उसके अभिवादन का उत्तर दिया, और फिर अपनी माँ की बगल में बैठ गयी।

"कब आये ?" प्रमीला ने सुस्पष्ट स्वर में पूछा।

"कल सन्ध्या को। मैं तो कल ही रात यहाँ आने की सोच रहा था, पर फिर रह गया।"

"किसी ने मना किया होगा !" प्रमीला की दुष्टतापूर्ण आँखों मे एक विचित्र व्यंग भरा था।

"मना कौन करता ! मैं ही न आ सका—मोटर के सफर से थक गया था।"

"मोटर आपकी अपनी थी या किसी मित्र की ?"

"मैं अपनी गाड़ी कानपुर ले ही नहीं गया था। सेठजी की 'कार' मे आया।"

"यही मैं भी सोच रही थी !" सोफा की बाँह पर अपना बाँया कुहना टेकते हुए, रहस्य-भरी मुख-मुद्रा के साथ प्रमीला ने कहा।

"क्यों ? आप ने पहले ही कैसे सोच लिया ?"

प्रमीला के मुख पर कृत्रिम गंभीरता छा गयी। अपने स्वर मे भी भावानुरूप गंभीरता लाती हुई बोली—"यों ही। बात यह है कि आपकी मोटर बहुत नाजुक है, यह मैं जानती हूँ। लंबी यात्रा मे उसके कल-पुर्जे ढीले हो जाने की संभावना थी। इसके अलावा पेट्रोल का खर्चा भी कुछ कम नहीं बैठता !"

राजीव किसी दुर्दमनीय मनोवेग से प्रेरित होकर सहसा "होः

हो: !" करके अट्टहास कर उठा। विजय की कृपण मनोवृत्ति से वह परिचित था। प्रमीला की बात मे उसे यह आभास मिला कि अपनी उस मनोवृत्ति को विजय अभी तक सुरक्षित रखे हुए है। पर हँसी उसे आयी प्रमीला के कहने के ढंग से।

विजय ने एक बार वक्र दृष्टि से राजीव की ओर देखा। फिर प्रमीला की ओर मुँह करके बोला—"जब मैं अपनी 'कार' वहाँ ले ही नही गया था, तब पेट्रोल के खर्च का सवाल ही कहाँ से उठता!"

"यह ठीक है," प्रमीला ने उसी गंभीरता के साथ कहा—"पर आप जैसे समझदार आदमी से मैं यह आशा नहीं करती कि कानपुर जाने के पूर्व आपके मन में यह द्वन्द्व न उठा होगा कि वहाँ अपनी 'कार' ले जाना ठीक रहेगा या नहीं।"

"प्रमीला यह कहना चाहती है कि कानपुर मे 'कार' ले जाने का व्यर्थ का झंझट मोल न लेकर आपने उचित ही किया।" प्रमीला की ओर से सफाई देते हुए कृष्णा जी ने बड़ी ही कोमलता से कहा।

"होगा, पर प्रमीला जी की बातें कभी-कभी मुझे बड़ी विचित्र लगती हैं।" विजय का स्वर भारी लगता था, जैसे वह रोना चाहता हो। उसके मुख पर एक अँधेरी छाया घिर आई थी।

"आप तो नाराज़ हो गये!" प्रमीला अपने कोट की जेबों मे दोनों हाथो को डालती हुई बोली।

"नाराज़ होने की बात नहीं है," उसी भारी स्वर मे विजय बोला—"पर क्षमा कीजियेगा, सब समय व्यंग और परिहास अच्छा लगता नहीं।"

"यह मैं जानती हूँ, इसीलिए आपसे मैं व्यंग और परिहास की बातें किया·· कभी करती नहीं।" प्रमीला पहले कहने जा रही थी कि "इसीलिए आपसे मैं व्यंग और परिहास की बातें किया करती हूँ।" पर तत्काल वह सँभल गई।

विजय ने कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल कद्दू सा मुँह बनाये बायीं ओर वाली खाली कुर्सी की ओर देखता रहा।

प्रमीला सहसा उठ खड़ी हुई। नागिन सी बल खाती हुई विजय के पास जाकर खड़ी हो गयी और बोली—"अच्छा अब उठिये। इसी बात पर हम लोगों को अपनी 'कार' मे घुमा लाइए।"

"इस समय कहाँ जाओगी ?" कृष्णाजी ने पूछा।

"उस दिन मै जो मद्रासी साड़ी पहने थी वह माथुर साहब को पसन्द नहीं आई। आज वह मेरे लिए दो-चार बढ़िया बनारसी साड़ियाँ खरीदेंगे।" एक विचित्र रहस्य-भरी मुसकान प्रमीला की आँखो और ओठो मे खेल रही थी।

"पर...पर मेरे पास...इस समय मैं रुपये लाया नहीं।" घबराई हुई आँखों में प्रमीला की ओर देखते हुए लड़खड़ाती हुई जबान से विजय ने कहा।

प्रमीला खिल-खिल करके हँस पड़ी। कृष्णा जी प्रमीला की दुष्टता को ठीक से समझ नहीं पा रही थीं, फिर भी उसकी बातो का अनोखा ढंग उन्हें स्पष्ट ही अच्छा लग रहा था। वह स्नेह-पूर्ण मुसकान से कभी विजय की ओर देखती थीं और कभी प्रमीला की ओर।

"तो चिंता की कोई बात नहीं," प्रमीला ने उसी दुष्टता के साथ कहा—"आज मैं आपको रुपये उधार दे सकती हूँ।"

विजय के मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। मरे हुए स्वर मे उसने कहा—"तब ठीक है। मुझे कोई एतराज नहीं है।"

"उठिये तब। चलो माँ, तुम भी मेरे लिए साड़ियाँ पसन्द करने मे माथुर साहब की सहायता करोगी।"

"मै क्या करूँगी? तुम लोग जाओ।" कृष्णाजी ने कहा।

"नहीं, नहीं, तुम्हे चलना ही होगा, उठो।"

इतने मे शीतल और जानकी भी ड्राइंग रूम मे पहुँच गये। उनके कानो मे शायद भनक पहुँच गई थी।

शीतल ने कहा—"माँ, हम भी चलेंगे।"

जानकी बोली—"हम भी तलेंगे, का' मे।"

अंत में तय हुआ कि बच्चे भी चलेंगे।

विजय ने राजीव से कहा—"अभी तो कुछ दिन तुम यहाँ होगे? फिर मिलेंगे। किसी दिन जमकर बातें होगी।"

और फिर वे लोग कार मे बैठकर चल दिये।

बारहवाँ परिच्छेद

जब राजीव बरेली मे पढ़ता था तब विजय भी उसके साथ एक ही कक्षा मे पढ़ता था। विजय की सांसारिक स्थिति उससे भी अधिक शोचनीय थी। पर उस स्थिति के बावजूद उसके शील-स्वभाव, रंग-ढंग और बात-व्यवहार मे राजीव ने जीवन के प्रति उत्साह, उमंग और उल्लास मे तनिक भी कमी नहीं

पायी। विजय बहुत ही चुस्त, चालाक और चंचल लड़का था। केवल प्रकृति से ही नहीं, आकृति में भी वह सुन्दर और सबको प्रिय लगने वाला था। पर राजीव किसी अज्ञात प्रेरणावश प्रारंभ ही से यह अनुभव करने लगा था कि विजय की बाहरी चंचलता के भीतर एक ऐसी निश्चित गंभीरता छिपी हुई है, जो उसे अपने भावी जीवन के एक-एक कदम की नाप-जोख बड़ी बारीकी से करने के लिए सब समय उकसाती रहती है। यह बात भी अन्तर्दृष्टि के किसी अनजान प्रकाश से राजीव के आगे एक प्रकार से स्पष्ट-सी हो गयी थी कि विजय की वह नाप-जोख किसी महान् त्याग, बलिदान या आत्मोत्सर्ग की भावना से प्रेरित होकर नहीं चलती, बल्कि प्रारंभिक जीवन मे ही अपनी अनाथ अवस्था के कारण जिन अभावो ने उसे बुरी तरह ग्रस लिया था उनकी पूर्ति आवश्यकता से भी बहुत अधिक परिमाण मे करने की प्रवृत्ति कुछ निश्चित नियमो के अनुसार जैसे उसे निरंतर—सब समय—परिचालित करती रहती थी। उसी अदम्य प्रवृत्ति का ही यह फल था कि वह तत्कालीन प्रत्यक्ष जीवन की सभी कठिनाइयो को हँस-हँसकर, बहुत ही प्रेमपूर्वक सहन कर लिया करता था, और, साथ ही अपने सुदूर के लक्ष्य की प्राप्ति की ओर, जान में या अनजान में, एक-एक इंच करके बढ़ते रहने के लिये प्रतिपल सचेष्ट रहता था।

विजय के शील और स्वभाव पर प्रारम्भ ही से राजीव को एक प्रकार की ईर्ष्या-सी हुआ करती थी। वह देखता था कि विजय बहुत ही मिलनसार है और दिन-पर-दिन अपने बीच

के और आस-पास के समाज में अधिकाधिक लोकप्रिय होता चला जाता है। और वह अपने को भी देखता था कि विजय और एक और लड़के को छोड़कर स्कूल भर मे अन्य किसी तीसरे व्यक्ति से उसकी ठीक से बोलचाल तक नहीं है। उसका (राजीव का) अधिकांश समय अकेले में अपनी ही भावनाओं मे निमग्न रहने मे बीतता था। और वे भावनाएँ भी कैसी विचित्र, कैसी छायात्मक, कैसी अतलस्पर्शी और साथ ही कैसी भयावह थीं! राजीव की भी अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। अपनी उन महत्त्वाकांक्षाओं के बीजों का प्रस्फुटन वह स्वयं अपनी भीतरी आँखो से देख रहा था। वह भी विजय की ही तरह अपने स्कूली जीवन से ही अपने भावी जीवन के निर्माण के स्वप्न देखा करता था। पर उसके स्वप्नो मे और विजय के स्वप्नो में मे जमीन-आसमान का अंतर था, यह बात वह प्रारम्भ ही से भली-भाँति समझ गया था। राजीव के स्वप्नो में आर्थिक और सांसारिक सुख-सुविधाओं की व्यवस्था का आभास कभी क्षीण-तम रूप से भी नही आ पाता था। अपने उस समय के सभी अस्त-व्यस्त और विशृंखलित स्वप्नों को जब वह किसी एकांत क्षण में एक-साथ बटोर पाता तब उनका एक सम्मिलित रूप अस्पष्ट होने पर भी एक निश्चित धारा का संकेत उसे दे जाता। तब उसे लगता कि उसके प्रतिपल के जीवन के स्वप्न, भावनाएँ और कल्पनाएँ उसे भावी सामूहिक—राजनीतिक और सामाजिक—जीवन की बागडोर अपने हाथों में लेकर, अपने निजी आदर्शों के अनुसार चला सकने की सुविधा पाने के लिये

विकल कर रही है। उसके वे 'निजी आदर्श' क्या थे तब उसका कोई निश्चित रूप उसके सामने नहीं आ पाता था, पर इतना वह बखूबी महसूस करता था कि तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों मे जो भी विभिन्न आदर्श काम कर रहे थे उनमें से किसी एक से भी उसके स्वानुभूत आदर्शों का साम्य कहीं नही बैठ सकता था।

अक्सर विजय के साथ घंटो उसका राजनीतिक विषयों पर वादविवाद चलता रहता। केवल पाँच प्रतिशत बातो मे विजय से उसका मन पूरी तरह से मिल पाता था। शेष सभी बातो में उसके अपने निजी, निराले, लोक-प्रचलित धारणाओं के विरुद्ध, मत व्यक्त होते थे, जिनके फलस्वरूप तत्काल के लिये कभी-कभी उन दोनो के बीच मनमुटाव भी हो जाता था। विजय तब कट्टर गांधीवादी था और कांग्रेसी आदर्शो से एक बाल भी इधर या उधर हटने को तैयार नहीं था, यद्यपि राजीव की दुर्धर्ष वाग्धारा के प्रबल तर्कों के आगे उसे अक्सर अपनी ज़मीन से हटने को बाध्य होना पड़ता था।

जो भी हो, राजीव देखता था कि विजय की मिलन-सारी दिन-पर-दिन नयी-नयी दिशाओ और नये-नये व्यक्तियो की ओर बढ़ती चली जा रही है। उसने यह भी देखा कि एक 'गरीब विद्यार्थी' के नाते उसे स्पष्ट ही अच्छी आर्थिक सहायता भी प्राप्त हो रही है। कहाँ से हो रही है, यह वह अभी ठीक से नहीं जान पाया था, तथापि वह स्पष्ट देख रहा था कि विजय अब खद्दर के नये और साफ-सुथरे कपड़े पहनने लगा है। प्रारंभ

में जब वह देहात से आया था तब राजीव ने देखा था कि वह मैले और फटे-पुराने कपड़े पहन कर नंगे पॉव स्कूल में आया करता था। पर अब तो वह कभी-कभी बढ़िया 'कोकटी' और 'रेशमी खद्दर' तक पहनने लगा था और घड़ियाल के चमड़े के नये चप्पलों को चरमराया करता था।

यह स्पष्ट था कि विजय किसी संपन्न व्यक्ति के आगे भिखारी की तरह गिड़गिड़ाकर, अपनी दीन दशा पर करुण विलाप करके आर्थिक सहायता के लिये प्रार्थना न करता होगा। पर अत्यंत शालीनतापूर्वक, मधुर संकेतों से उपयुक्त व्यक्तियों को जता देता होगा कि वह जीवन में अनाथ और असहाय होने पर भी 'विद्यार्जन के लिए उत्सुक' है, इसलिए समाज के प्रत्येक संपन्न व्यक्ति का कर्तव्य है कि उसे आर्थिक सहायता प्रदान करे। उसका सुन्दर व्यक्तित्व, प्रसन्न स्वभाव, हास्यप्रियता और उस छोटी उम्र से ही राजनीतिक विषयों में दिलचस्पी—ये ऐसे गुण थे जो उसकी 'अनाथावस्था' को एक मोहक 'रोमांटिक करुणा' के रंग में रँग देते थे।

राजीव की आर्थिक स्थिति यद्यपि विजय से कम शोचनीय कभी नहीं रही, तथापि वह न प्रवृत्ति से न गुणों से उस कला को अपनाने की योग्यता रखता था जो विजय के लिए सहज-साध्य थी। अक्सर राजीव को आधा पेट भोजन करके संतुष्ट रहना पड़ता था, और कभी-कभी तो परिपूर्ण अनशन तक की नौबत आ जाती, जब कि विजय, शहर के रईसों और उनके साहबजादों के नाश्ते और भोजन के अवसरों पर बेतकल्लुफ

उनके यहाँ जा कर, मीठी-मीठी और 'राजनीतिक विद्वत्तापूर्ण' बातों से उनका जी बहलाकर उनके मालपुओ और आमलेटों पर बड़े आराम से हाथ साफ किया करता था। पर राजीव ने अपने अनशनों के संबंध मे कभी एक शब्द भी न विजय के आगे न किसी अन्य व्यक्ति के आगे व्यक्त किया, यद्यपि विजय अक्सर मौके-बेमौके अपने मालपुओं और आमलेटो का उल्लेख उसके आगे करता रहता था।

सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन ने जोर पकड़ा। तब राजीव और विजय दोनों इंटरमीडियेट के द्वितीय वर्ष में थे। विजय की महत्त्वाकांक्षा का एक बीज अवसर पाकर प्रस्फुटित हुआ। उसने पढ़ाई स्थगित करके जेल जाने का निश्चय किया। पर प्रश्न यह उठ खड़ा हुआ कि जेल जाने के जितने असंख्य द्वार खुले हैं उनमें सर्वोत्तम—सबसे अधिक सहज-साध्य—क्या हो सकता है। उन दिनो पुलिस के डंडों की निर्मम मार सत्याग्रहियों पर पड़ रही थी और आंतरिक विश्वास से आंदोलन मे भाग लेने वाले सत्याग्रही सहर्ष उन डंडो की मार को स्वीकार कर रहे थे—बल्कि कुछ तो ऐसे थे जो जानबूझकर ऐसे स्थानों और ऐसे अवसरों को ढूँढते थे जहाँ और जब डंडो की मार पड़ने की अधिक संभावना हो।

पर विजय को वह मार किसी भी रूप में ग्राह्य नहीं थी। वह तो अपने किसी दूरस्थित किंतु निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए जेल जाना चाहता था, न कि किसी राष्ट्रीय आकुलता से प्रेरित होकर। शीघ्र ही एक सरल उपाय उसे दीख पड़ा। सब प्रकार

की सभाओं और जलूसों पर रोक लगा दी गयी थी। सभाएँ होती थीं, पर कुछ तो वास्तविक उद्देश्य से प्रेरित होकर की जाती थी, शेष नाटकीय ढंग से होती थी। एक आदमी ने भाषण के रूप मे मंच पर से एक वाक्य कहा, पुलिस के आदमी ने उसे तत्काल गिरफ्तार कर लिया। दूसरा आदमी बोलने को उठा और आधा वाक्य बोलने के बाद ही पुलिस के सिपाही ने उसे गिरफ्तार होने के लिए चले जाने को उँगली से इशारा किया और वह तुरंत भाषण बन्द करके पुलिस 'कार्डन' के भीतर अपने-आप—बिना किसी आपत्ति के—चला गया। विजय ने इन नाटकीय सभाओं मे से किसी एक में भाग लेकर जेल जाना ही श्रेयस्कर समझा; क्योंकि वास्तविक उद्देश्य से प्रेरित सभाओं मे जनता की भीड़ भी बहुत रहती थी, और भाषणकर्ता सहज ही में अपने को पुलिस के आगे समर्पित नहीं कर देते थे। फलतः वहाँ डंडे पड़ने की पूरी संभावना रहती थी।

विजय को 'सभा' में आधा वाक्य बोलने पर एक महीने की कड़ी कैद की सजा हुई। प्रारंभ में उसे 'सी' श्रेणी मे रखा गया। पर जेल के वार्डर को उसने अपने सौजन्य और शालीनतापूर्ण व्यवहार से इस हद तक प्रसन्न कर लिया कि उसे 'बी' श्रेणी में रखा गया और समय-समय पर उसके लिए सिगरेट, पान, चाय और टोस्ट का प्रबन्ध भी वार्डर की विशेष कृपा से हो जाया करता था।

इस प्रकार उसकी पहली जेल-यात्रा बड़े मजे में कट गयी। जेल से छूटने पर वह सार्टीफिकेट-प्राप्त पक्का कांग्रेसी हो गया।

और तबसे राजनीतिक चक्रों में अपने विशेष ढंग से बराबर भाग लेता रहा। सत्याग्रह आंदोलन ठंढा पड़ने पर उसने पढ़ाई फिर से शुरू कर दी। इंटरमीडियेट की परीक्षा पास करने के बाद वह एक सुसंपन्न कांग्रेसी नेता की सहायता से बनारस में जाकर रहने लगा और वहाँ विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने लगा। वह बरेली अक्सर आया करता था और राजीव से मिलकर देश की राजनीतिक और अपनी व्यक्तिगत प्रगति के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी बातें सुना जाया करता था।

उधर राजीव की लगन दूसरी ही ओर थी। एक दिन वह कैसे एक देश-प्रसिद्ध गुप्त क्रांतिकारी दल मे जा मिला और अन्त मे एक षड्यंत्र के मामले मे सक्रिय भाग लेने के फल-स्वरूप किस प्रकार आजीवन कारावास भुगतने लगा, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

वर्ष पर वर्ष बीतते चले गये। विजय ने विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करके विश्वविद्यालय में ही अर्थशास्त्र सम्बन्धी गवेषणा का काम आरंभ कर दिया। अपने विभाग के प्रधान को प्रसन्न रखने की कला में कोई चूक उसने कभी नहीं दिखाई, और दूसरे अध्यापको से भी वह काफी मेल-जोल रखता था। अध्यापको का सहयोग पाने का फल यह हुआ कि वह स्वल्प परिश्रम से ही केवल दो वर्ष बाद एक छोटा-सा संदर्भ तैयार करने मे समर्थ हो गया और उसे डाक्टरेट मिल गई। डाक्टर की उपाधि मिलने के कुछ ही समय बाद वह उसी विश्वविद्यालय मे एक लेकचरर के पद पर नियुक्त हो गया।

स्थानीय राजनीतिज्ञों से मिलना-जुलना उसने बराबर जारी रखा। अपने स्वच्छ, सुघर व्यक्तित्व, शिष्ट व्यवहार और मीठी-मीठी बातों से वह दिन पर दिन सबका प्रियपात्र बनता चला गया और धीरे-धीरे उसकी पहुँच प्रांत के कुछ बड़े-बड़े नेताओं तक हो गई। सन् सैंतीस मे प्रांत मे प्रथम बार कांग्रेसी सरकार की स्थापना हुई। विजय की मिलनसारी का फल यह हुआ कि वह एक साधारण लेकचरर के पद से एकदम से एक बहुत ऊँचे सरकारी पद पर नियुक्त हो गया और खासा अच्छा वेतन पाने लगा। वह एक नया पद था। उसमे काम कुछ भी नहीं था। पर विजय यह जताता जैसे वह काम के भार से लदा जा रहा हो।

उसके बाद द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप जब प्रथम कांग्रेसी मन्त्रिमंडल भंग हो गया तब विजय भी बेकार हो गया। पर इस बीच वह काफी अच्छा रुपया जोड़ चुका था। उस रुपये का एक अंश उसने एक ऐसे व्यवसाय में लगाया जिसमें घाटे की कोई सम्भावना नहीं थी। कांग्रेसी राज्य के अवसर पर वह जिन व्यवसायियों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नाना प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ था उन लोगों ने बदले में इस आशा से उसे व्यावसायिक सुविधाएँ प्रदान कीं कि दूसरी बार कांग्रेस का राज्य फिर स्थापित होने पर उसकी सहायता से और अधिक सुविधाएँ वे पा सकेंगे। फलस्वरूप विजय की पूँजी दिन पर दिन अधिकाधिक मोटी होती चली गई। छुटपन घोर आर्थिक अभाव में बीतने के कारण अर्थ-संग्रह की उत्कट लालसा उसके भीतर घर कर गई थी। अब जब वास्तव मे अर्थ-संचय

की वह लालसा सफल होने लगी तब वह भूत की तरह उसके सिर पर सवार हो गई, और उसके आगे धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि उसके जीवन का एकमात्र ध्येय बनने जा रहा है अर्थ-संचय—अधिक अर्थ-संचय—अधिकाधिक अर्थ-संचय।

इस बीच उसने किसी एक धनपति की एकमात्र लड़की से विवाह कर लिया था, और दहेज में खासी अच्छी रकम प्राप्त कर ली थी।

उस रकम को उसने 'सेफ डिपाजिट' में जमा कर दिया, ताकि दीर्घकाल तक उसमें से एक भी पैसा निकालने का प्रलोभन ही कभी न जगने पावे। जिस प्रकार लोकपक्ष का कोई भूत किसी एक तहखाने के भी भीतर के तहखाने में कई पुश्तों से गड़े हुए धन को अडिग, विराट पाषाण-खंडो से दबाकर, चारों ओर से उसके सभी प्रवेश-मार्गों को पूर्णतया रुद्ध करके ऊपर से उस पर पहरा देता रहता है और युग पर युग बीत जाने पर भी केवल उस पहरा देने की क्रिया में ही एक अजीब, अवर्णनीय, सम्मोहक सुख का अनुभव करता है, ठीक वही अनुभूति विजय के मन में भी एक विचित्र मोहकता का संचार करने लगी।

धनपति ने जो गहरी नकदी दहेज में विजय को दी थी उसके अतिरिक्त ४० हज़ार के कीमती गहने और जवाहरात अपनी लड़की को दिये थे। प्रारंभ से ही विजय की प्रलुब्ध दृष्टि उन गहनो पर पड़ी हुई थी। उसने कई बार अपनी पत्नी कांति को फुसलाकर इस बात के लिये राजी करने का प्रयत्न किया था कि वह केवल दो-चार अत्यंत अनिवार्य रूप से आवश्यक गहनो को

छोड़कर शेष सब उसे दे दे, वह उन्हें बैंक के 'सेफ वाल्ट' मे सुरक्षित रख देगा। कांति बहुत सरल और सहृदय स्वभाव की थी। प्रायः सभी बातो में वह स्वेच्छा से पति का पूर्ण आनुगत्य स्वीकार कर चुकी थी। पर इस मामले मे वह टस से मस न हुई। उसने कहा—"मैं गहने अपनी ही तिजोरी में सुरक्षित रखूँगी। जब जो गहना पसन्द आवेगा तब उसे पहनूँगी। बैंक मे सुरक्षित रखने से वे मेरे किसी काम न आ सकेंगे।" विजय ने जमाने की दुहाई दी। कहा—"चोर-डाकुओ की संख्या शहर मे बढ़ती चली जा रही है। लड़ाई के कारण चारो ओर अराजकता फैली हुई है। इन गहनो की खातिर एक दिन चोर डाकू घर मे घुसकर गला घोंट सकते हैं।" पर भोली कांति इस मामले में एक ही हठी सिद्ध हुई। पति की अर्थ-लोलुप आँखें (शारीरिक और मानसिक दोनो) उसकी सहज नारी-बुद्धि से छिपी न रहीं। वह किसी तरह भी न डिगी। लाचार विजय एक लंबी साँस लेकर इस संबंध में चुप हो रहा। पर तबसे उसके भीतर—संभवतः उसके अनजान में—अपनी पत्नी के प्रति एक प्रचंड हिंसात्मक विद्वेष-भावना घर कर गयी। वह अज्ञात भावना जब कभी किसी अव्यक्त कारण से मानसिक भूकंप के किसी असावधान क्षण में, उसके सचेत मन पर आकर उसके आगे प्रत्यक्ष हो उठती तब वह चौक कर सिहर उठता, और पूरी शक्ति से तत्काल उसे मन के अतल मे डुबाने का प्रयत्न करता।

और सब मामलों में कांति अत्यन्त विनम्र, सरल और सहृदय थी। सब समय उसके दुबले-पतले, गोरे-उजले मुख पर

एक उदास मुसकान झलकती रहती थी। उसके छोटे-से हृदय में क्या-क्या अरमान अणु-रूप में तैरते है, और भीतर-ही-भीतर अज्ञात रूप से क्या-क्या उथल-पुथल मचाते रहते हैं, यह वह स्वयं भी नही जानती थी, किसी दूसरे के जानने की बात तो दूर रही। वह चुपचाप, नीरव भाव से, नत नयनो से केवल दो प्राणियों के नीरस गार्हस्थिक जीवन को दो पहियो वाले ठेले की-सी निर्विकार उदासीनता के साथ चलाती जाती थी। अपनें पति से उसने कभी एक क्षण के लिए भी आंतरिक स्नेहपूर्ण सरसता का दान नहीं पाया। प्रायः आठ ही बजे जल्दी-जल्दी दो कौर मुँह में डालकर विजय अपने व्यावसायिक कामों पर चला जाता था। उसके बाद फिर शाम कभी चार या पाँच बजे चाय की चाट लगने पर, और दूसरी जगह कही उसका प्रबंध न हो सकने पर, वह एक बार दस मिनट के लिए चला आता था, और फिर तत्काल चल देता था, और रात को नौ-दस बजे के पहले वापस न आता। अक्सर वह शाम की चाय भी बाहर ही कहीं पी लिया करता और सुबह ८ बजे का निकला हुआ रात ही को घर लौटता। लौटने पर भी वह कांति से अधिक बातें न करता। दो-चार बासी और नीरस बातें कहकर चुप लगा जाता।

कांति के प्रति विजय के विद्वेष का एक कारण और था। कांति के पिता ने (कांति की माँ नहीं थी) चाहा था कि विजय उन्हीं के यहाँ—अपनी ससुराल मे ही—घर-जमाई बनकर रहे। पर कांति ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया था। कांति के इस विरोध के दो कारण थे। एक तो यह कि वह जानती थी कि उसकी

विमाता कभी जमाई को घर रखने से प्रसन्न न होगी, दूसरा यह कि वह स्वयं संकोची स्वभाव की होने के कारण अपने पिता और विमाता के तत्त्वावधान मे पति के साथ स्वच्छंद वातावरण का अनुभव नही कर सकती थी। उसे दिन भर के एकाकीपन की एकरसता का जीवन पसंद था, पर मायके का बद्ध वातावरण वह किसी हालत मे भी पसंद नहीं कर सकती थी। कांति के विरोध के बाद विजय के लिये सिवा इसके दूसरा चारा नही रह गया कि वह अलग मकान में रह कर गृहस्थ जीवन का पूरा खर्चा बरदाश्त करे। पर वह मासिक व्यय उसे एक अपव्यय लगता था (जब कि ससुर के यहाँ उसे पूरी सुविधा थी) और वह समय-समय पर इस इस बात के लिए रह-रह कर कांति को मन-ही-मन कोसा करता था।

कांति दिन का दीर्घ अवकाश या तो बिनने मे काट देती थी या पास पड़ोस की परिचिता स्त्रियो या लड़कियो के साथ बेकार की गप-शप मे, और चाय और जलपान द्वारा उनकी अभ्यर्थना मे। वह अभ्यर्थना भी विजय को खलती थी।

एक वर्ष तक वह बिना किसी विशेष प्रतिक्रिया के नितांत एकरसतापूर्ण जीवन बिता ले गयी। पर दूसरे वर्ष से वह अनुभव करने लगी कि उसके भीतर कोई एक भरा हुआ स्थान धीरे-धीरे रिक्त होता चला जा रहा है। और रिक्तता के फल-स्वरूप केवल मानसिक ही नहीं, बल्कि एक शारीरिक पीड़ा का भी अनुभव उसे होने लगा। अन्त में एक दिन सुनने मे आया कि कांति अचानक बीमार पड़ गयी। और चौथे दिन यह

सुना गया कि उसकी मृत्यु हो गयी। कांति की मृत्यु के संबंध मे तरह-तरह की शकाएँ की जाने लगीं। राजीव जब दीर्घकाल के बाद मुक्त हुआ तब उसके एक घनिष्ठ मित्र ने, जो विजय से भली भाँति परिचित था, उसे बहुत-सी गूढ़ बातों की सूचना दी।

जब सन् बयालीस की क्रांति आयी तब एक कांग्रेसी होने के नाते विजय बड़े धर्म-संकट मे पड़ गया था। वह सोच नहीं पाया कि क्रांति मे भाग ले या न ले और यदि भाग ले तो किस रूप मे। इस बार सरकार के दमन-चक्र से पिछले किसी भी आंदोलन के दमन-चक्र की कोई तुलना नही की जा सकती थी। विजय स्वभावतः घबरा उठा। आंदोलन मे शरीक होने में उसे दो प्रकार का खतरा दिखायी दिया। एक तो स्पष्ट ही उसे व्यावसायिक दृष्टि से आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी और दूसरे, यह कोई नही कह सकता था कि वह पुलिस की गोली का शिकार होने से बच ही जायगा या उसे दीर्घ अवधि तक कठिन निर्वासन का दंड नहीं दिया जायगा। दूसरी ओर, आंदोलन मे कतई भाग न लेने मे भी यह खतरा था कि वह उस कांग्रेस की नजर में गिर जायगा, जिसका नमक खाकर वह आज आर्थिक दृष्टि से जीवन मे स्थिर हो पाया है। उसकी अन्तर्बुद्धि जानती थी कि कांग्रेस का साथ देते रहने से भविष्य में किसी न किसी दिन वह अपनी पार्थिव स्थिति बहुत अच्छी बना सकेगा।

इस धर्म-संकट का हल उसने बड़ी चतुराई से निकालने का निश्चय किया। नजरबन्द किये गये क्रांतिकारियों के परिवार वालों की आर्थिक सहायता के लिए उसने घर-घर जाकर चन्दा

इकट्ठा करना आरम्भ कर दिया। यह काम वह भरसक गुप्त रूप से किया करता था और गुप्त ही रूप से निर्धन क्रांतिकारियो के परिवार वालो की तथाकथित 'सहायता' भी किया करता।

कुछ महीनो बाद एक दिन पुलिस ने उसे भी पकड़ लिया। उसे २२६ धारा के अनुसार नैनी-जेल में नजरबन्द किया गया। वहाँ उसके पिछले उच्च सरकारी पद का खयाल करके जेल के अधिकारियो ने उसे 'ए' श्रेणी मे रखा। वहाँ वह आराम से आलस्यमय जीवन बिताने लगा। उसके साथियो में से कुछ तो अपने संस्मरण लिखने अथवा अध्ययन मे दिन बिताते और कुछ गपशप करने और ताश खेलने मे। विजय को इन दोनों में से कोई भी काम पसन्द न था। वह सब समय अपने दिवा-स्वप्नो मे मग्न रहता—किस उपाय से वह करोड़ो रुपया कमा कर अपने आस-पास की दुनिया पर प्रभुता प्राप्त कर सकेगा; इसी संबंध मे वह नाना विचित्र-विचित्र योजनाओ की कल्पना किया करता।

दो महीने में ही वह अपने बंधन-ग्रस्त जीवन से बहुत उकता गया। उसे सब कुछ निष्प्राण, निर्मम, निर्जीव और जड़ लगने लगा। और वह यही चिंता करने लगा कि जल्द से जल्द उस बंधन से कैसे मुक्त हो। उसने जेल के अधिकारियो को खुश करने का इरादा कर लिया। वह किसी भी बात के लिए कोई विरोध न करता और जब कोई अधिकारी निरीक्षण के लिये आता तो विजय अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसका अभिवादन करता। अन्त में एक दिन उसने एक उच्च अधिकारी से प्रार्थना की कि उसे छोड़ दिया जाय, क्योंकि उसने कोई भी अपराध कानूनन नहीं किया। उसने

कहा—"मैंने केवल 'ह्यु मैनिटेरियन वर्क' किया है, किसी भी राजनीतिक या क्रांतिकारी काम मे कोई भाग नहीं लिया।"

उसके बाद जो भी अधिकारी उसके बारिक में आता उससे वह इसी तरह की बात करता। बात वह बड़े ढंग से करता, जिससे एक कांग्रेसी की हैसियत से उसकी प्रतिष्ठा मे भी बट्टा न आवे, साथ ही अधिकारी भी प्रसन्न रहे।

फल यह हुआ कि दूसरा महीना समाप्त होने के कुछ ही दिन बाद उसे जेल से मुक्त कर दिया गया। उसकी रिहाई से उसके घनिष्ठतम मित्रों को भी उतनी प्रसन्नता नहीं हुई जितनी कि होनी चाहिये थी। उनको लगा कि उसके इतनी जल्दी जेल से लौट आने मे अवश्य ही कोई ऐसा रहस्य छिपा है जो प्रीतिकर नही है। क्योंकि कोई भी प्रतिष्ठित कांग्रेसी जेल से नहीं छूटा था और न किसी के जल्दी छूटने की कोई आशा ही लोग बताते थे।

कुछ भी हो, जेल से छूटने पर विजय ने अपना व्यावसायिक कार्यक्रम फिर आरंभ कर दिया। साथ ही वह परिचित जनता को यह विश्वास भी दिलाता चला गया कि वह बाहर रहकर भी कांग्रेस का ही काम गुप्त रीति से कर रहा है।

युद्ध समाप्त होने पर जब कांग्रेसी नेता नजरबन्दी से मुक्त कर दिये गये तब विजय फिर एक बार पूरी शक्ति से कांग्रेस संबंधी प्रचार-कार्य में जुट गया। जल्दी ही उसने फिर कांग्रेसी क्षेत्र मे लोकप्रियता प्राप्त कर ली। फल यह हुआ कि जब प्रांत मे फिर कांग्रेसी मंत्रिमंडल स्थापित हुआ तब विजय को अपने पूर्व त्याग और कार्य के पुरस्कार-स्वरूप फिर एकबार ऊँचा पद प्राप्त हो गया।

तेरहवाँ परिच्छेद

सब लोगो के चले जाने के बाद राजीव कुछ देर तक अनिश्चित अवस्था में बरामदे मे खड़ा रहा। उसके बाद, न जाने क्या सोचकर, वह अपने कमरे की तरफ लौट चला। कमरे के पास पहुँचकर उसने बाहर ही से देखा, सुनन्दा उसके पलॅग पर बैठकर तन्मय भाव से एक पुस्तक हाथ में लिये पढ़ रही है। पुस्तक की जिल्द देखकर वह समझ गया कि वह वही पुस्तक है जिसे वह सुबह पढ़ रहा था और फिर पलॅग पर छोड़ गया था, अर्थात् "वीम्यन इन बांडेज।"

वह कुछ देर तक दूर ही से बड़े गौर से सुनन्दा के मुख का वह ध्यानमग्न भाव देखता रहा। उसकी दूध की तरह शुभ्र साड़ी का पल्ला सिर पर से खिसककर पीठ पर चला गया था। गोद मे पुस्तक रखकर वह बाएँ गाल को हथेली पर टिकाये हुए थी। सुन्दर, सतेज मुख पर एक गंभीर मौन महिमा छायी हुई थी। राजीव कुछ देर तक जी भर कर उस अप्रतिम शांत छवि की ओर देखता रहा।

घर पर कोई नहीं था। नौकर-चाकर भी न जाने कहाॅ चले गये थे। उस निर्जन दुपहरी मे, सूने बॅगले की एकांत स्तब्धता मे, वह ध्यानमग्ना नारी श्वेत वस्त्र में आवृत होकर, प्रियतम की प्राप्ति के लिये शिव-मन्दिर मे तपस्या करनेवाली महाश्वेता की तरह उसे लग रही थी। उसका ध्यान भंग करे या न करे, इसी द्विविधा में वह खड़ा था। अन्त में किसी प्रबल अन्तःप्रेरणा के

धक्के से वह आगे बढ़ा—धीरे, बहुत धीरे, दबे पाँवों से। पर कमरे के दरवाजे पर पहुँचते ही उसके लड़खड़ाते हुए दायें पाँव का चप्पल चौखटे से टकरा गया। आहट पाते ही सुनन्दा चौंक पड़ी और राजीव को देखकर वह बिजली के वेग से पुस्तक पलँग पर रखती हुई उठ खड़ी हुई। उसके मुख पर ऐसी घबराहट का चिह्न था जैसे वह किसी अपराध मे रँगे हाथों पकड़ ली गयी हो।

"उठ क्यों गयीं?" राजीव ने कहा—"तुम पढ़ो, मै जाता हूँ। मुझे यहाँ कोई काम नहीं है।"

"नहीं, नहीं! मै यों ही देख रही थी!"

"देख रही थीं तो तुमने कौन अपराध किया, सुनन्दा? मुझे देखकर घबरा क्यो उठी हो? क्या इस पुस्तक को पढ़ने का निषेध है?" राजीव के स्वर में सान्त्वना भरी थी।

"नहीं, यह बात नही है।" सकुचाई हुई आँखो से, प्रायः आधी दृष्टि से राजीव की ओर देखती हुई सुनन्दा बोली।

"तब बात क्या है?" अपने स्वर को कोमल से कोमलतर बनाते हुए, उसमे अधिक से अधिक स्निग्धता घोलते हुए राजीव ने पूछा।

"कुछ नहीं!" और फिर वही सकुचायी, सहमी हुई सी दृष्टि जिसमे एक मधुर, मौन विषाद की हलकी छाया घिर आयी थी।

राजीव को आज यह एकदम नया अनुभव हो रहा था। ऐसा संकोच, ऐसी घबराहट, ऐसा कातर भाव सुनन्दा के मुख पर इसके पहले उसने कभी नहीं देखा था। सब समय वह उसके सहज प्रसन्न मुख पर एक दीप्त तेज दमकता हुआ देखता आ रहा

था। आज अचानक यह कैसा आश्चर्यजनक परिवर्तन वह देख रहा है!

"सुनन्दा, बैठ जाओ, आज तुमसे एक बहुत जरूरी बात मुझे कहनी है," कहकर राजीव ने कोने पर पड़ी हुई एक तिपाई उठाकर उसके आगे रख दी और स्वयं पलॅग पर बैठ गया।

सुनन्दा क्षण भर के लिए शायद झिझकी, उसके बाद सहज भाव से फर्श पर बैठ गयी। इस बार पूरी दृष्टि से राजीव की ओर देखती हुई बोली—"कहिये, क्या बात है?"

"आज सुबह मैंने तुमसे जो बात कही थी···"

"उसी के सम्बन्ध में मै भी आपसे प्रश्न करने वाली थी, राजीव बाबू", बीच ही मे राजीव की बात काटती हुई सुनन्दा तनिक भारी, किन्तु निश्चित, स्वर मे बोली—"आपने एक ऐसी विचित्र संकेतभरी बात कही, एक ऐसी भविष्यवाणी की, जिससे मेरा चित्त ठिकाने नहीं रह गया है। उसका अर्थ अपने अनुमान से, अपनी बुद्धि के अनुसार, कुछ कुछ लगाने पर भी, सारी बात मेरे आगे भेदभरी ही रह गयी है। मुझे ठीक से, स्पष्ट शब्दो में समझाइये राजीव बाबू, आप कहना क्या चाहते थे?" उसका कंठस्वर आर्द्र से आर्द्रतर होता चला जा रहा था।

"मै उसी बात को स्पष्ट करना चाहता हूॅ, सुनन्दा," स्नेह और सांत्वना भरे स्वर में राजीव बोला—"मैंने कहा था कि गृहस्थ जीवन के जिन सैकड़ों छोटे-छोटे बन्धनों में तुमने कुछ तो स्वयं अपने ही हाथ से और कुछ परिस्थिति-वश, अपने को बाँध लिया है, उनके लिये तुम्हारा जन्म ही नहीं हुआ है। मेरी भीतरी आॅखें

मुझे यह बता रही है। तुमने कुछ कृत्रिम उपायों से, अपने अनजान ही मे, अपने भीतर की उस आदिम अग्नि को मिट्टी से दवा रखा है जिसकी धधक बृहत्तर संसार को जीवनोपयोगी आँच पहुँचा सकती है। संकीर्ण पारिवारिक घेरे को वह प्रचंड आँच अन्त मे झुलसा कर ही छोड़ेगी, और जितना ही अधिक उस परिवार का घेरा बढ़ता जायगा वह आँच भी एक जगह सिमटी न रह कर फैलती चली जायगी। इस प्रकार उसका प्रसार-क्षेत्र बढ़ जाने से उसकी झुलसाने की शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो जायगा, जिसका फल यह होगा कि वह सूर्य की तरह जीवन-शक्ति प्रदान करने योग्य हो जायगी। जो सूर्य इस समय पृथ्वी को अपने ताप द्वारा जीवन प्रदान कर रहा है वह यदि पृथ्वी के बहुत निकट चला आवे तो पृथ्वी पर का सारा जीवन झुलस कर जड़ता में परिणत हो जाय। पर चूँकि वह इतनी दूरी पर है, इसलिए उसकी किरणो का फैलाव बढ़ जाता है, इसी कारण वह जीवनदाता के रूप में हमारे सामने आता है··· ·"

सुनन्दा एकाग्र चित्त से सुन रही थी और प्रायः अपलक आँखों से राजीव की ओर देख रही थी। उसकी भरमायी हुई-सी आँखो से पता चलता था कि राजीव की बातों से एक स्पष्ट छायात्मक अनुभूति उसके अन्तर्मन को एक प्रबल चुम्बकीय आकर्षण से हिला रही थी। तथापि उस अनुभूति का कही कोई ओर-छोर वह नहीं पा रही थी।

राजीव जब कुछ रुका तब सुनन्दा ने पूछा—"आप किस बृहत्तर परिवार की बात कह रहे है, राजीव बाबू, मैं समझ

नहीं पा रही हूँ।"

"इस सीमित परिवार का घेरा टूटते ही उस बृहत्तर परिवार के बीच में तुम अपने आप आ जाओगी, और तब समझ लोगी कि उसका स्वरूप क्या है। सारा देश और संपूर्ण संसार आज तुम्हारे ही समान किसी ऐसी तेजस्विनी नारी का आह्वान कर रहा है जिसकी आत्मा के अक्षय भंडार मे जीवन शक्ति प्रदायिनी अशेष अग्नि निहित हो और जो उस महाकाल की सी अग्नि की प्रचंड ज्वाला को स्वयं पीती हुई उसकी मीठी आँच को आज के सत्त्वहीन, शोषित और निर्जीव मानव-जगत् मे बिखेर कर एक नया संजीवन, एक अभिनव चेतना, एक अपूर्व प्राण-स्पन्दन जगा सके। उस विराट जीव-मातृका शक्ति का आभास मैंने तुम्हारे भीतर पाया है, सुनन्दा! इसीलिए तुम्हारी अंतरात्मा के प्रति मेरा यह अनुनय है कि संकीर्ण परिवार के छोटे-छोटे बन्धनो को स्वीकार कर अपने भीतर की इस महा बीजशक्ति मे जंग न लगने दो। इस कारा को तोड़ो। इसका मोह तुम्हारी रगो में दिन पर दिन, मास पर मास, वर्ष पर वर्ष अपने अफियूनी इंजेक्शनों से जिस विष-रस का संचार करता आ रहा है उसका निराकरण तभी हो सकेगा जब तुम अपने भीतर की उसी आदिम ज्वाला को भड़का कर उस विष की प्रभावशक्ति को नष्ट कर डालोगी। अन्यथा एक ओर इतने दिनो से जमा हुआ वह विष तुम्हारे प्राणो को अवश करता चला जायगा और दूसरी ओर तुम्हारी आत्मा की गहराई मे दबी आग धीरे-धीरे स्वयं तुम्हारी ही चेतना को झुलसाती चली जायगी।

इसलिए जितनी जल्दी हो सके, दृढ़ इच्छाशक्ति से इस जड़ मोह की शृंखला को कड़ी-कड़ी करके तोड़ डालो। तुम चाहो तो आज ही, अभी, इसी क्षण इस बन्धन को छिन्न कर सकती हो…"

सुनंदा कुछ क्षणों तक स्वप्नाच्छन्न-सी राजीव की बातें सुनती रही, उसके बाद वह धीरे-धीरे समाधि-मग्न सी होने लगी थी। पर उस समाधि की सी अवस्था में भी राजीव का एक-एक शब्द, उसकी अवचेतना में अपने निश्चित, निर्धारित स्थान पर बैठता जा रहा था, जैसे कोई रहस्यमयी शक्ति उसके अंतःपट पर उन शब्दों को टाइप करती चली जा रही हो, या किसी प्लांचेट-नुमां रहस्यात्मक यंत्र द्वारा किसी दूर-स्थित आत्मा का सदेश उस पर लिखा जा रहा हो। उसकी दोनो आँखें मुँद सी गई थीं और उनसे आँसुओं की अविरल-धारा बही चली जा रही थी। वह न हिलती थी, न डुलती थी, न आँसुओ को पोछती थी। पर जब राजीव ने कहा, "तुम चाहो तो आज ही, इसी क्षण इस बंधन को छिन्न कर सकती हो", तब सहसा उसकी वह समाधि की सी स्वप्नाच्छन्नता भंग हुई। वह सहसा उठ खड़ी हुई और व्याकुल भाव से रोती हुई राजीव के पैरो पर गिर पड़ी। उन दोनों चप्पल-युक्त पावो पर अपना सिर रखकर करुणा-गद्गद, विह्वल और विकल स्वर मे बोली—"राजीव बाबू, आप सब कुछ जानते हुए भी यह क्या आदेश मुझे दे रहे है! मुझ अनाथिनी को आप किस अछोर और अकूल की ओर खींच ले जाना चाहते हैं? मुझ अबला और असहाया नारी को इसी सँकरी चहारदीवारी के भीतर गलने दीजिये। एक दिन था जब मैं भी अपने भीतर उस शक्ति

का क्षीण आभास पाया करती थी, जिसका उल्लेख आपने किया है। उस दिन अगर आप मुझे मिले होते तो मैं बिना क्षण-मात्र दुबिधा के, समस्त सामाजिक अवरोधो को तृणवत् समझकर पृथ्वी के अन्तिम छोर तक आपका साथ देती हुई चली चलती। पर आज न वे परिस्थितियाँ है, न मुझमें ही वह बल शेष रह गया है। आज जिन सैकड़ो मोह-बन्धनो मे मै बँध चुकी हूँ वे अत्यन्त लघु होने पर भी मेरे लिये वज्र से भी अधिक दृढ़ और अटूट है। मैं लाख छटपटाऊँ, लाख सिर पटकूँ, वे अब टूट नहीं सकते। इसलिए व्यर्थ में मेरे भीतर ऐसी पीड़ा न जगाइये, जिससे मुझे बल मिलने के बजाय मृत्यु पर्यंत केवल एक तीखा असन्तोष और कटीली अशांति ही हाथ आ सकती है। मुझ दुःखिनी को अब अधिक न भरमाइए, राजीव बाबू, आपसे मेरी यह करबद्ध प्रार्थना है।" वह बोलती जा रही थी और साथ ही बिलखती हुई आँसू भी गिराती चली जा रही थी।

राजीव भी एक अजीब-सी मोहाच्छन्नता का अनुभव करने लगा था। सुनन्दा के गरम-गरम आँसुओं से गीले अपने पाँवो पर उसके कपाल के सुकोमल स्पर्श का अनुभव करते हुए उसे लग रहा था कि उसकी लौह-कठिन दृढ़ता मोम में परिणत होती हुई पिघलने के लक्षण प्रकट कर रही है। न जाने मन के किस रूढ़ कोने मे यह भावना जगने लगी कि "हटाओ! आदर्शवाद के चक्कर मे पड़कर जिस दूरवर्ती ध्येय की पूर्ति का व्रत तुमने लिया है, उसके फेर में पड़कर क्यों ये सब उलझनें मोल लेते हो? देशव्यापी भ्रष्टाचारिता के बाजार के बीच मे तुम भी कहीं

जा छिपो और घोर जड़ता मे जीवन के शेष दिन पूरे करो।" पर दूसरे ही क्षण अपने इतने दिनो के कठोर निश्चय को एक पल की दुर्बलता में ढहते देखकर वह घबरा उठा और प्रबल इच्छा द्वारा फिर से अपने भीतर की संपूर्ण शक्तियों को बटोरने लगा। प्रचड प्रयत्न से वह अपने स्वभाव के कुसुम-कोमल रूप को दबाने मे समर्थ हुआ और सहसा उसकी वही वज्र-कठिनता फिर से उभर आयी।

वात-प्रताड़ित छिन्न लता की तरह पड़ी हुई सुनन्दा के दोनों हाथ पकड़कर उसने धीरे से उसे ऊपर उठने मे सहायता देते हुए कहा—"सुनन्दा, उठ बैठो। अभी से इस तरह घबरा उठने से काम नहीं चलेगा। तुम्हारे ऊपर अभी जीवन-दुर्ग के उन लौह-द्वारों के खोलने का भार शेष है जिनके ताले युगो से बन्द पड़े हुए हैं। रूढ़िगत आलस्य और जड़तावश इस कठोर कर्तव्य को टाल जाने की इच्छा न करो।"

सुनन्दा उसके सहारे से धीरे, बहुत धीरे उठी। अपनी अर्द्ध-चेतनावस्था में उसे जैसे इस बात का भान ही नही हो रहा था कि भरी दुपहरी में, एक गृहस्थ-घर के बीच में वह एक असंबंधित पुरुष के चरणो पर गिर पड़ी थी, और अब वही पुरुष उसे उठा रहा है—उसके दोनो हाथो को अपनी वज्र मुष्टि मे लिये हुए। साधारण स्थिति मे यह बात कैसी अनुचित, अव्यावहारिक और असम्भव होती। पर स्वप्न मे मानव-मन की स्वच्छंद गति को समाज का कोई सजग व्यक्ति नहीं रोक सकता, उसे यदि कोई किसी हद तक रोक सकता है तो वह स्वयं अपनी ही

चेतना। सुनन्दा उस समय उसी स्वप्नाच्छन्न अवस्था मे थी, और उसकी अपनी अवचेतना उस समय अपने ऊपर कोई सामाजिक रोक लगाने के लिये तैयार न थी। क्योकि राजीव ने एक अत्यन्त सम्मोहक आदर्श के स्वर्ण-क्षितिज-स्थित ध्येय की जिस अपूर्व आकर्षक और कल्पनातीत सुन्दर-छायात्मिका छवि की ओर उसकी अंतश्चेतना की दृष्टि प्रेरित कर दी थी उसके आगे किसी भी जड़ सामाजिक संस्कार का कठिन से कठिन अवरोध भी नही ठहर सकता था।

सुनन्दा अभी तक फर्श पर ही बैठी थी और प्रायः उसी स्वप्नाच्छन्न-सी मनोदशा मे अपनी आँखें पोछने लगी।

राजीव कहता चला गया—'तनिक सोचो तो सही कि जिस निपट संकुचित सीमा के भीतर तुमने अपने विराट व्यक्तित्व को सिकोड़ रखा है, उसमे दिन पर दिन, मास पर मास, वर्ष पर वर्ष तुम सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक केवल उसी बँधे हुए कर्म-चक्र का आवर्तन और पुनरावर्तन कर सकने के सिवा और क्या कर सकती हो! यह निर्विचित्र कर्म-चक्र कितना बासी हो चला है, इसे युग-युगांत के अनुभवों के बाद भी अंधा गृहस्थ-मानव नही समझ पा रहा है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इसे बाहर से जो काले-काले पर्दे घेरे हुए हैं वे विराट जीवन और विशाल जगत् की अनन्त-प्रसारित झाँकी को तुम्हारी आँखों से ओझल किये हुए है। उन पर्दों को चीर कर फाड़ने से डरो मत। वे केवल बच्चों को डराने के जू-जू हैं। केवल वे काले पर्दे ही नहीं, उन पर्दो के नेपथ्य से समाज के पहरेदारों की जो

गर्जन-तर्जन भरी आवाजें आती रहती हैं वे भी बच्चो के डराने के नकली शब्द हैं। तुम बहुत सयानी हो। आजीवन बच्चो का सा जीवन बिताने वाले मनुष्यों के बीच मे तुम्हारी तरह केवल दो-चार ही सयाने व्यक्ति होते है। इसलिये तुम्हारे लिये न तो उन पर्दों से भयभीत होने का कोई कारण होना चाहिये न उन नकली आवाज़ों से डरने का। यह ठीक है कि अक्सर सयाने व्यक्ति भी बच्चो के साथ बच्चा बन कर खेलना, कूदना, मारना, मार खाना, रोना, रुलाना, हॅसना और हॅसाना पसंद करते हैं, और तुम भी ऐसा ही कर रही हो। जिस क्षण तुम्हारे मन में अपने सयानेपन की चेतना जग उठेगी उसी क्षण तुम्हारे लिये ये दानवाकार, लोहे की तरह लगने वाले पर्दे कागज से भी झीने हो उठेंगे। कभी एक पौराणिक कहानी पढ़ी थी, वह मुझे बार-बार याद आती है। एक बार इन्द्र जब राक्षसो के उत्पात से घबरा कर भगे तब उन्होंने सुअरी का रूप धारण कर लिया ताकि उन्हें कोई पहचान न सके। कुछ समय बाद उस सुअरी ने बच्चे जने। वह ऐसी मोहमाया में लिप्त हो गयी कि केवल अपना पेट पालने और उन बच्चों को दूध पिलाने, उनकी देख-रेख करने, प्रतिक्षण उनकी रक्षा के लिये सजग रहने के सिवा और किसी बात की चिन्ता ही उसके मन मे नहीं उठती थी। बच्चों के साथ कीचड़ और गंदगी मे लोटते रहने में ही उसे सुख मिलता था—जीवन का अथ और इति उसके लिये उसी संकुचित घेरे के भीतर समाहित हो गया था। ऐसी जड़ता उसकी चेतना में आ गयी थी। स्वर्ग में निपट अनाचार, अनियम और

अव्यवस्था फैलते देख कर देवतागण इन्द्र की खोज में भटकते हुए पृथ्वी पर आये। खोजते-खोजते उन्हे वह सुअरी अपने बच्चों के साथ एक अत्यन्त घृणित, दुर्गन्धपूर्ण, कर्दम-मलिन कूड़े-खाने मे पड़ी हुई मिली। वह उस समय अपने बच्चो को दूध पिला रही थी। देवताओं ने अपनी दिव्य दृष्टि से जान लिया कि वह अत्यन्त घिनौना जीवन बिताने वाली और उसी में जीवन की सार्थकता मानने वाली सुअरी ही इन्द्र है। उसे उन्होंने मन्त्र पढ़कर, उसकी पुरानी महिमा का बखान करके जगाना आरम्भ किया। सुन कर पूर्व जन्म की एक अस्पष्ट चेतना सी सुअरी के मन में जगने लगी। उसी अन्तश्चेतनावस्था में वह बच्चो से अपना दूध छुड़ाकर उठने लगी। बच्चे तत्काल गों-गो करके रोने लगे। फिर उसकी वह स्वप्न-चेतना विलीन हो गयी और फिर वह बच्चो को दूध पिलाने लगी। देवताओ ने जब देखा कि केवल मन्त्रो द्वारा उसे तब तक परिपूर्ण रूप से जगाया न जा सकेगा जब तक कठोर यथार्थवादी आघातों द्वारा उसके शरीर और मन को पीड़ित न किया जाय। उन्होने बलपूर्वक उससे उसके बच्चो को छीना और उन्हें अत्यंत निर्ममता के साथ एक-एक करके मार डाला। सुअरी अत्यंत करुण रूप से बिलखने और बिलबिलाने लगी। देवताओ ने उस सुअरी के चमड़े को भी छुरे से आर-पार चीर डाला। इंद्र का सारा दुःस्वप्न भंग हुआ और वह धूल झाड़ कर उठ बैठा। उसे यह सोचकर आश्चर्य हुआ कि उसका वह दुःस्वप्न कैसे प्रचंड सत्य के रूप में उसकी आत्मा से चिपट गया था! हाँ वह दुःस्वप्न ही था।

और तुम इस समय जीवन की जिस स्थिति मे हो, चेतना के जिस स्तर मे जीवन बिता रही हो, सामाजिक और गार्हस्थिक संस्कारों की जिन असंख्य उलझनों और बंधनों से जकड़ी हुई, पारिवारिक मोहमाया से घिरी हुई, कुएँ की बद्धता के भीतर सड़ने मे ही जीवन की चरम सार्थकता माने बैठी हो, यह सब भी केवल एक दुःस्वप्न के सिवा और कुछ नहीं है। एक बार ध्यानपूर्वक पूर्ण मनोयोग से इस वास्तविकता पर विचार करके देख लो, सुनंदा!......"

सुनंदा इस बीच सिर उठा चुकी थी और राजीव की भावोत्तेजनापूर्ण आँखो की ओर एकटक देखती हुई, सचमुच अत्यंत ध्यानपूर्वक, पूर्ण मनोयोग के साथ उसकी बातें सुन रही थी। तब क्या उसका इतने दिनों का जीवन वास्तव मे दुःस्वप्न था? जाग्रत जगत् की यथार्थता क्या दूसरी ही है? तोड़ो, तोड़ो, राजीव बाबू, अत्यंत निर्ममता से इस दुःस्वप्न-कारा को। इस पर गरम हथौड़े से आघात पर आघात किये चले जाओ! यही अच्छा है। उसके बिना जीवन की यह अतलव्यापी जड़ता निश्चय ही कभी दूर न हो सकेगी।

दूर कहीं से एक नौकर की आवाज़ सुनायी दे रही थी। वह बिलसिया—नौकरानी—से कुछ कह रहा था। सुनंदा तत्काल सचेत होकर, आँखें पोंछकर, बाल पीछे की ओर करके, साड़ी को ठीक से खींचकर उठ खड़ी हुई। राजीव भी खड़ा हो गया। धीरे से बोला—"गृहस्थ जीवन के बंधनो को तोड़ने, पारिवारिक जीवन की पवित्रता को भंग करने का मेरा पेशा

नहीं है। निर्बंध, उच्छृंखल जीवन बिताने का उपदेश मैं न तुम्हे देना चाहता हूँ, न आज तक मैंने किसी को दिया है। मैं फिर एक बार अपनी बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मैं केवल मध्यवर्ग की अत्यंत सीमित और संकीर्ण पारिवारिकता को विस्तृत और बृहत् कौटुम्बिकता मे बदल देना चाहता हूँ। इसी मे इस वर्ग का कल्याण है, इसी में देश का व्यापक हित है और संभवतः विश्व-मानव का भी। तुम्हें उसी बृहत् परिवार की प्रबंधकर्त्री बनना होगा। इस बात पर जितनी जल्दी हो सके, अपना निर्णय कर लो, सुनंदा! समय अमूल्य है। मानवता के इस संकट-काल में एक-एक दिन की देर एक-एक वर्ष के समान समझो। तुम दो-ही-एक दिन के भीतर खूब अच्छी तरह सोच-विचार कर निश्चय कर लो। निश्चय कर लेने के बाद मुझे संकेत से सूचित कर देना। मैं पूरे उत्तरदायित्व से तुम्हारा हाथ पकड़ कर इस घने अँधेरे पथ मे भरसक तुम्हें सहारा देता चला जाऊंगा—जब तक तुम अपना निश्चित ध्येय पहचान कर वहाँ तक सही-सलामत पहुँच न जाओ। तुम्हारी आँखें मुझे बता चुकी हैं, सुनन्दा, कि तुम्हे मुझपर विश्वास है। इस बात का यदि तुम विरोध भी करो तो भी मैं भ्रम में नहीं पड़ सकता। मुझे चिंता केवल एक ही बात की है। वह यह कि तुम्हें स्वयं अपने ऊपर अभी विश्वास नहीं है। जगाओ, जगाओ! अपने भीतर तुम जिस आग को युग-युग से कृपण की तरह छिपाती और संचित करती चली आयी हो उसे उभाड़ो और पूरी शक्ति से सुलगाओ! एक बार जब वह पूरे वेग से धधक उठेगी तब

फिर वह युगांत तक बुझ नहीं सकेगी। उसके ज्वालामय प्रकाश मे तुम्हारा खोया हुआ आत्म-विश्वास फिर एक बार भड़क उठेगा। सुनन्दा, उठो, जागो! अब अधिक न चूको!"

सुनन्दा ने राजीव की सतत जाग्रत यत्त की सी दृष्टि का तेज सहन न कर सकने के कारण फिर आँखे बन्द कर ली थीं। राजीव का एक एक शब्द उसके मन की कई इंच मोटे लोहे की चादर पर भीम की गदा के समान भारी हथौड़े से चोट पर चोट करता चला जा रहा था, जिसके फलस्वरूप उसकी अव-चेतना की प्रत्येक कदरा प्रचंड शब्द से गूँज उठती थी। एक-एक चोट की आवाज़ उन समस्त कदराओ मे प्रायः एक साथ गूँज उठने से ऐसा विकट हाहाकार मचाती थी जैसे किसी शहर के लाखो आदमी भीषण बम-वर्षा से आतंकित होकर एक साथ चीख-पुकार मचा रहे हों और उस सम्मिलित कोलाहल और कलरव में किसी एक की भी आवाज़ स्पष्ट नही सुनायी दे रही हो—केवल हाय! हाय! आह! उफ! अरे! मरे! यही शब्द अर्द्धव्यक्त रूप से कानो मे आ रहे हो।

राजीव के अंतिम शब्द—"उठो! जागो! अब अधिक न चूको!" ऐसी निर्मम भीषणता से उसके कानो मे बज उठे जैसे सौ-सौ तोपें एक साथ घहराकर गरज उठी हो। उसने "उफ!" कहकर दोनो कान हाथों से बन्द कर लिये।

फाटक के भीतर 'कार' के प्रवेश करने और भोपू बजने का शब्द सुनायी दिया। राजीव बोला—"इस समय मैं जाता हूँ। एक जरूरी काम से मुझे अमीनाबाद की तरफ जाना है। तुम

इसी क्षण से अपने मन को पक्का करने के प्रयत्न में जुट जाओ।" यह कहकर वह हवा के वेग से बाहर निकल गया। सुनन्दा अपने कमरे के भीतर चली गयी और भीतर से उसने किवाड़ बन्द कर लिया।

चौदहवाँ परिच्छेद

पलँग पर बैठकर, अपने दोनो घुटनो के ऊपर सिर रखकर, दोनो हाथों से मुँह ढककर सुनन्दा स्थिति को एक बार शांति से समझने का प्रयत्न करने लगी। पर केवल अपने चारो ओर, वाहर-भीतर, ऊपर-नीचे अंधकार ही अंधकार उसे दिखाई देता था, कुछ भी नही सूझता था। बीच-बीच मे उस सघन अंधकार मे आतिशबाजियों की तरह चिनगारियाँ छूटती दिखाई देती थीं और कुछ विचित्र छायामूर्तियाँ क्षण-क्षण मे आकार और वेश बदलती हुई चक्कर काटती हुई-सी जान पड़ती थीं।

सहसा किसी ने दरवाजा खटखटाया। "क्या आफत है!" मन-ही मन कुढ़कर सुनन्दा ने कहा—"ये लोग एक मिनट भी चैन से नही रहने देगे।" "ये लोग" कौन थे, किनके या किसके लिये उसने उन शब्दो का प्रयोग किया था, यह वह स्वयं नही जानती थी। पर अपनी खीझ पर उसे आज स्वयं आश्चर्य हुआ। यह आज बिलकुल नयी बात थी, जो उसके स्वभाव के विपरीत थी। वह उठी नहीं, उसी तरह बैठी रही। उठने की शक्ति ही जैसे उसमे नहीं रह गई थी।

"बुआ, खोलो! हम कब तक यहाँ खड़े रहेंगे!" यह स्पष्ट

ही शीतल का कंठस्वर था। सुनन्दा फिर भी बैठी रही।

"बुआ थोलो! गुट्टा लाये।" यह जानकी थी।

"ओ—फ्—फो!" प्रायः दाँत पीसती हुई सुनन्दा बड़-बड़ाई—"क्या अंधेर है! तनिक दम लेने का भी अवकाश नहीं। इस जिन्दगी से तो मौत अच्छी!"

वह प्रायः तमक कर उठी और जोर के झटके से उसने किवाड़ खोला।

"देखो बुआ, हम क्या क्या चीजें लाये हैं!" उसके एक हाथ मे काठ की एक छोटी-सी मोटर और दूसरे हाथ मे मदारी की वंशीनुमा बैलून था।

"अम बी लाये गुट्टा।" जानकी बाएँ हाथ से सुनन्दा का अंचल पकड़ती हुई बोली। उसके हाथ मे सैलुलाइड का एक बड़ा सा गुड्डा था।

सुनन्दा का मिजाज कुछ शांत हुआ। "बहुत अच्छा किया, रानी मेरी! अब तुम जाओ, बाहर खेलो। हमारी तबीअत इस समय ठीक नहीं है। जाओ लल्ला, तुम भी बाहर खेलो।"

"नही, हम तुम्हारे कमरे में खेलेंगे।" शीतल नकियाता हुआ बोला।

"अम बी!" जानकी ने हठीले स्वर मे कहा।

"न! न! इस समय नही। बिलसिया, इधर आना।"

"आई।" कहती हुई बिलसिया भीतर की तरफ से धीर पग रखती हुई उपस्थित हुई।

"इन बच्चो को बाहर ले जाओ। मेरी तबीअत आज ठीक

नहीं है। सिर दर्द कर रहा है। मैं तनिक लेटूँगी।"

बिलसिया ने एक बार विचित्र दृष्टि से सुनन्दा की ओर देखा, उसके बाद बच्चों की ओर देखती हुई उदासीनता के साथ बोली—"चलो बिटिया, चलो भैया। बुआ की तबीअत ठीक नहीं है। मूड़ पिरा रहा है।" कहकर फिर एक बार वह उसी विचित्र दृष्टि से, जो सुनन्दा को कतई प्रिय नहीं लग रही थी, उसकी ओर घूरने लगी। उसके बाद जानकी का हाथ पकड़कर सुनन्दा की ओर पीठ करके बोली—जैसे अपने आपको या दीवार को सम्बोधित कर रही हो—"तबीअत खराब होगी क्यों नहीं। बिना सबब के क्या दर्द हो रहा है। हम सब जानती हैं। अंधी नहीं है।..."

सुनंदा का कलेजा जैसे धक् से रह गया। क्षण-भर के लिए वह भ्रांत और विस्मित आँखों से बिलसिया की पीठ की ओर देखती रही। उसके बाद सशब्द भीतर से किवाड़ बन्द करके वह पलँग पर औंधी लेट गई।

"क्या बात है, बिलसिया?" सुनन्दा ने अपनी भाभी को पूछते सुना। स्पष्ट ही वह बिलसिया के पास ही आ पहुँची थीं।

"कुछ नहीं बहू, बीबी की तबीअत खराब है", 'तबीअत' शब्द को खास अदा से दुहराती हुई बिलसिया बोली—"मूड़ पिरा रहा है। मैं कहती हूँ कि तबीअत खराब क्यों न हो, मूड़ क्यों न पिराये। दिन-दिन भर और रात-रात भर कोने वाले कमरे में बैठकर मार हँसी-ठट्ठा, बातचीत और गुपचुप न जाने क्या क्या होता रहता है। कहती है सिर दर्द कर रहा है। दर्द

की तो बात ही है। हमारी भी आँखें हैं। हम सब समझती हैं। घर में कोई सयाना न होने से ऐसा ही होता है……"

सुनंदा का यह हाल था कि काटो तो एक बूँद रक्त न निकले।

"तुम जाओ अपना काम करो।" उसने भाभी को तनिक खीझ-भरी आवाज़ में कहते सुना—"तुमसे इन सब बातों से क्या मतलब!"

"ठीक है, हमसे कोई मतलब नहीं, जो बात है वह हमने बता दी है। पीछे कोई यह न कहे कि किसी को कुछ पता न था।" उसकी आवाज़ से सुनन्दा ने लेटे ही लेटे अनुमान लगाया कि वह उसके कमरे से दो-चार कदम आगे बढ़ चुकी है।

"जाओ! जाओ! बको मत!" भाभी को उसने तनिक झल्लायी हुई आवाज़ में कहते सुना।

"जाते हैं।" अत्यन्त धैर्यपूर्वक, शायद गलियारे की दूसरी सीमा से, बिलसिया को कहते सुना गया।

आरम्भिक कुछ क्षणों तक सुनंदा को परम्परागत संस्कारों के कारण ऐसा लगा जैसे वह सब-कुछ खो चुकी है। इतने दिनों तक अपने कठोर नियमाचरण से, अपनी चारित्रिक दृढ़ता से जो मान-प्रतिष्ठा, इज्जत-आबरू वह कायम रखे हुए थी उस पर सहसा किसी ने जैसे गाढ़ा कोलतार पोत दिया है। छी-छी! भैया से लेकर नौकर-चाकरों तक में अब एक ऐसी गंदी चर्चा उसको लेकर चलेगी जिसका अन्त ही कभी न होगा! वह कैसे अब अपने कमरे से बाहर निकल कर घर के किसी भी आदमी को अपनी मुँह दिखायेगी! बिलसिया ने जिन खुले

शब्दों मे, काफी ऊँची आवाज़ में, जिस निश्चयात्मक रूप से उसके चरित्र पर लांछन लगाया है इससे कोई उसकी बात पर अविश्वास नहीं करेगा। वह किस-किसके आगे अपनी सफाई देती फिरेगी, और कौन उससे पूछेगा ? वह अपने-आप इस लज्जाजनक विषय की चर्चा कैसे चलायेगी ? कभी तानों से, कभी संकेत से और कभी फुसफुसाहट से सब लोग जब रस लेते हुए आपस मे इस सम्बन्ध में बातें करेंगे तब वह किस-किस का मुँह बन्द करेगी ? छी-छी ! इतना बड़ा और झूठा कलंक सिर पर लिये फिरने से तो उसके लिये यही अच्छा होगा कि कमरे से बाहर निकलने के पहले ही गले मे फाँसी लगाकर मर जाय। पिछली रात जब भाभी ने भी 'ठठोलियों' और 'ठहाकों' का उल्लेख किया था तब उसने पूरे आत्म-विश्वास से उन्हे निरस्त्र कर दिया था। पर इस समय वह जैसे अपने को स्वयं अपराधिनी मान रही थी। प्रचंड आवेग को रोकने में असमर्थ होकर जब वह अत्यंत व्याकुल भाव से राज़ीव ने चरणों पर गिर पड़ी थी तब निश्चय ही बिलसिया ने उसे देख लिया होगा। उस मूर्ख, अशिक्षित और स्वभाव से परछिद्रान्वेषी नौकरानी से यह आशा कैसे की जाय कि वह उसके राजीव के चरणो पर गिर पड़ने का कोई उदार अर्थ लगावे, जब कि स्वयं भाभी जी जैसी शिक्षिता और समझदार नारी उस तरह का संदेह कर सकती है ! नहीं, यह कलंक चाहे झूठा हो चाहे सही, जब यह प्रचारित हो चुका है तब उसे मिटाने की शक्ति किसी मे भी संभव नहीं है। केवल घर तक वह सीमित न रहेगा। यह प्रसरण-

शील कलंक-रस बहते हुए पानी में तेल की तरह बाहर भी न जाने कहाँ-कहाँ तक फैलता चला जायगा। छी छी!

और उसने उस औंधी अवस्था मे अपनी दोनो हथेलियो से अपनी आँखो को और कसकर बंद कर लिया। "क्या होगा! क्या होगा!" केवल यही आवाज़ उसके भीतर से निकलने लगी। न जाने कितने लाखो, करोड़ो वर्ष पीछे हुए उस पशु-संस्कार ने उसे जकड़ लिया जो किसी कल्पित या वास्तविक खतरे के सामने आने पर पशु को या तो आतक से पागल कर देता है या एकदम जड़, निश्चल और मृतवत् बना देता है। सुनंदा भी अंध-संस्कार वश उसी तरह आतंकित हो उठी। उस आतंक ने उसे पागल तो नहीं किया, पर कुछ क्षण के लिये उसे ऐसा महसूस हुआ कि उसका सारा शरीर ऐंठता चला जा रहा है और वह ऐंठन उसमे धीरे-धीरे पत्थर की-सी निर्जीवता ला रही है।

परिपूर्ण निर्जीवता आने के पहले ही उसके कानो में राजीव के शब्दो की प्रतिध्वनि हुई, जैसे कोई इन शब्दो को लेकर उसके कानो के पास बजा रहा हो—"केवल वे काले पर्दे ही नही, उन पर्दों के नेपथ्य से समाज के पहरेदारो की जो गर्जन-तर्जन भरी आवाज़ें आती है वे भी बच्चो को डराने के नकली शब्द है।"

उन शब्दो की प्रतिध्वनि के गूँजते ही पल मे, न जाने किस अलौकिक जादू से, उसके शरीर मे, मन मे और आत्मा मे फिर परिपूर्ण चेतना संचारित हो उठी। उसे यह सोचकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि बच्चो को डरानेवाली एक साधारण-सी आवाज़ से वह इस कदर आतंकित हो उठी कि गले मे फाँसी लगाने

की बात सोचने लगी थी! "धिक्कार है मेरी इस कायरता को! सौ-सौ बार लानत है मेरी इस मुर्दादिली पर! राजीव बाबू ने अपनी संपूर्ण आत्मा, अपने समस्त मन और प्राण से निकले हुए उद्‌गारों द्वारा अभयता की जो वाणी सुनायी, जिस अमृत-पथ का निदर्शन किया, महाकल्याण का जो लक्ष्य मेरी आँखों के आगे रखा उन सब को मैं एक क्षण मे भूल गयी और रूढ़िगत संस्कारों के उन्हीं बासी, गंदे और दुर्गंधपूर्ण दलदल मे जा फँसी जिससे उबारने के लिए इतना बड़ा प्रयत्न उन्होंने किया! नही, वह नहीं होगा। मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। पहली ही बार जो हलका-सा धक्का लगा उसी से मैं इस कदर विचलित हो उठी कि अपने को पूर्णतः परास्त और पराजित अनुभव करने लगी! आगे न जाने इससे कितने भीषण, कैसे तूफानी धक्कों का सामना करना पड़ेगा। मुझे निश्चित रूप से उसी की तैयारी करनी होगी। मैं न आत्म-हत्या करूँगी, न किसी से भयभीत होकर कतराऊँगी। कुत्ते भूँकते रहते है और कारवाँ चलता जाता है—कितना बड़ा अनुभवी, साहसी और अध्यवसायी रहा होगा वह व्यक्ति जिसने पहले-पहल इस तथ्य को प्रचारित किया! ठीक है, कुत्तो के भूँकने की आवाज़ से बच्चे डरते है। मेरे जीवन का कारवाँ उस दुर्गम पथ के महापथिको के साथ चलता रहेगा जिसकी ओर राजीव बाबू ने संकेत किया है। भूँकने वाले कुत्तो से मै जितना ही डरूँगी उतना ही उनका साहस बढ़ता चला जायगा। मैं उनकी दुर्बुद्धि पर हँसती रहूँगी और

बहुत आगे बढ़ेंगे तो उनके मुँह पर थूकूँगी। झूठे लांछन को महत्त्व देकर झूठी लज्जा के आवरण से अपने को ढकने के प्रयत्न के बराबर मूर्खता दूसरी क्या हो सकती है। फूः!" और वह जैसे किसी मंत्र से स्वयं अपने को झाड़कर उठ बैठी और मन-ही-मन उस आतंक की कल्पना से हँसने लगी जिसने कुछ क्षणों के लिये उसके मन को भूत की तरह दुर्दमनीय शक्ति से धर दबाया था! उसकी उस भीतरी हँसी का प्रत्याभास बाहर की मन्द-मधुर मुसकान के रूप में झलक उठा। उसे लगा कि सहसा समस्त विश्व ने उसके लिये पथ छोड़ दिया है, समस्त विरोधी शक्तियाँ उसके परिपूर्ण आत्मविश्वास से भीत होकर कुत्तों की तरह दुबककर पीछे को हटती चली जा रही हैं। कहीं न कोई अवरोध है न कोई बंधन। राजीव की बातों से अवश्य एक बार उसको लगा था जैसे उसके जीवन के बीच में एक दरार पड़ती जा रही है और एक अतलव्यापी खाई उसके जीवन और कर्तव्य के बीच मुँह बाये खड़ी हो गयी है। पर अब वह खाई भी उसे सुगम और चिर-परिचित सी लगने लगी थी। पूर्ण शांति और संतोष की भावना ने उसके मन को भर दिया। उसके चेहरे पर भी उस भावना की स्पष्ट झलक आ गयी थी, इसका अनुभव वह स्वयं करने लगी थी।

सहसा, न जाने किस अदृश्य बाल-प्रेरणा से, उसके मन में अपने मुख की उस समय की अभिव्यक्ति शीशे में देखने की इच्छा जगी। इस सम्बन्ध में बिना अधिक सोच-विचार किये वह तत्काल उठ खड़ी हुई और कमरे के कोने में एक मेज़ से

लगे हुए शीशे के आगे खड़ी हो गयी। कई दिनों के अव्यवहार से शीशा गंदा हो गया था और उसमें गर्द और दाग जम गये थे। सुनंदा उसका उपयोग शायद कभी छठे-छमाही करती हो। सुबह नहा-धोकर वह एक बार अभ्यासवश, शीशे के सहारे के बिना ही, एक कंघी से अपने बालो को पीछे की ओर करके बॉध लेती थी। उसके बाद फिर वह दिन भर कघी को छूती भी न थी और शीशे का तो प्रश्न ही उसके लिये कभी नहीं उठा। पर आज अचानक एक विचित्र ही प्रतिक्रिया उसके भीतर हुई। एक कपड़े से शीशे को पोछकर वह गौर से अपना प्रतिबिंब देखने लगी। देखते ही, शायद आधे पल के लिये, वह डर से चौक-सी उठी। उस अर्द्ध पल मे स्वयं अपनी ही परछाई देखकर उसे लगा कि कोई एकदम अपरिचित स्त्री उसकी ओर देखती हुई उसकी मुख-मुद्राओ से उसके मनोभावों को ताड़ कर उसे मुँह चिढ़ा रही है। आधे पल का वह अनुभव उसे काल्पनिक नहीं, वरन् प्रत्यक्ष सत्य की तरह लगा। पर तत्काल जब उसे वास्तविकता की चेतना हुई तब भी उसे यह विश्वास करने की इच्छा होती थी कि शीशे में दिखायी देनेवाली बिखरे बालो वाली वह स्त्री सुनंदा नही, कोई अजनबी है, जिसकी ऑखो की उद्भ्रांत दृष्टि में सुनन्दा के प्रति एक ललकार है, युग की नहीं बल्कि युगांत की पुकार है।

कुछ देर तक वह अपनी परछाई से मन-ही-मन तरह तरह की बातें करती रही। उसके बाद अपेक्षाकृत सुस्थिर चित्त से वह दरवाजे की ओर गयी और किवाड़ खोल दिये।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

जब विजय की 'कार' प्रमीला, कृष्णाजी और बच्चो को लेकर वापस आयी थी और सब लोग भीतर चले गये थे तब राजीव बाहर निकलकर पैदल चल पड़ा था—निरुद्देश्य भाव से। प्रायः दो फर्लांग की दूरी उसने पार की होगी कि उसके पीछे 'पों' 'पों' करती हुई एक 'कार' आई और उसमे से किसी ने पुकारा—"राजीव !"

'कार' ठहर गयी और राजीव भी खड़ा हो गया। पीछे की ओर मुड़कर उसने देखा, विजय अकेला बैठा हुआ स्वयं मोटर चला रहा है।

"किधर जा रहे हो ?" विजय ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—"चले आओ, इसी 'कार' में, मेरी बगल मे बैठ जाओ।"

क्षण-भर के लिए राजीव दुविधा में पड़ा। इसके बाद न जाने क्या सोचकर मोटर पर सवार हो गया और विजय की बगल मे बैठ गया। उसके बाद उसने मोटर का दरवाजा बन्द किया। विजय ने गाड़ी 'स्टार्ट' कर दी।

"कहो, क्या हाल हैं ? लखनऊ कब आये ? माफ करना, दिन मे तुमसे ठीक से बातें न हो सकी। एक फिजूल की अप्रिय बहस हम दोनो के बीच चल पड़ी थी। बात यह थी कि मैं उस समय अच्छे 'मूड' में नहीं था। तुम देख रहे थे······दरवाजा ठीक से बन्द नहीं हुआ खड़खड़ा रहा है। ठहरो। छोड़ दो, मैं बन्द कर दूँगा।······" और विजय ने एक बार कार का दरवाजा

आधा खोलकर फिर कायदे से 'फटक' शब्द करते हुए बन्द कर दिया।

उसके बाद विजय फिर बोला—"हॉ, तो तुमने बताया नही, तुम कब आये और कहॉ से ?"

"इधर तो मुझे यहॉ आये केवल तीन ही हफ्ते हुए हैं। पर इसके पहले भी एक बार मैं लखनऊ आ चुका हूॅ—पिछले वर्ष। तब मैं करीब तीन महीने यहॉ बेकार भटकता रहा। तब तुम्हे मैंने नहीं देखा।"

"मैंने इसी वर्ष सक्सेना जी के यहॉ आना-जाना शुरू किया है। इसके पहले भी मैं उन्हें जानता अवश्य था, पर तब मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं था। अच्छा यह तो बताओ, तुमने मेरी कृच्छ्र साधना वाली बात से बुरा तो नहीं माना ? मैंने केवल बहस के लिये वह बात कही थी। तुम्हारे साहस और त्याग के प्रति मेरे मन मे बड़ा आदर है ....."

राजीव की इच्छा हुई कि फिर एक बार अट्टहास करे। पर उसने ऐसा किया नहीं, और शांत और अपेक्षाकृत गंभीर भाव से बोला—"तुमने ठीक ही बात कही थी। वास्तव मे मै भी अब यह अनुभव करने लगा हूँ कि मेरा पिछला जीवन कृच्छ्र साधना मे ही बीता है। देश को अत्याचारी साम्राज्यवादी शक्ति से मुक्त करने का जो तरीका क्रांतिकारियो ने अपनी छिटफुट हिंसात्मक कार्रवाइयो द्वारा अपनाया था उसकी कोई उपयोगिता न तो व्यावहारिकता की दृष्टि से थी न आदर्श की दृष्टि से ही। आज देश जो स्वतंत्र हुआ है—यदि वह सचमुच मे स्वतंत्र हुआ है

तो—वह हमारे दल की क्रान्तिकारी कार्रवाइयों के फलस्वरूप नहीं, बल्कि दूसरे ही कारणों से। उन 'दूसरे' कारणों में एक तो निश्चय ही गांधी जी द्वारा जगाई गई व्यापक और संगठित राष्ट्रीय चेतना थी, जिसका स्वरूप आदि से अन्त तक अहिंसात्मक रहा, पर इसके अतिरिक्त एक और प्रमुख कारण था। द्वितीय महायुद्ध ने जो विश्वव्यापी असंतुलन पैदा कर दिया था उसमें ब्रिटेन के लिये यह संभव नहीं रह गया था कि वह खुले तौर पर एक ऐसे बृहत् राष्ट्र को पूर्णतः अपने पंजे में दबाये रहे जिसकी विराट जनता की नस-नस में उसके विरुद्ध विद्रोह की भावना घर कर चुकी है। फलस्वरूप तथाकथित रक्तहीन क्रांति देश को आंशिक रूप से स्वतंत्र करने मे समर्थ हो सकी····"

"रक्तहीन क्रांति के आगे तुमने 'तथाकथित' क्यों जोड़ दिया ?"

"इसलिए कि वह क्रांति रक्तहीन नहीं थी यह तुम भी उतना ही जानते हो जितना कि मैं। उसके मूल्य के रूप में राष्ट्र को जो महारक्तदान देना पड़ा, उसे कैसे भुलाया जा सकता है। साम्प्रदायिक अंधवृत्तियो से प्रेरित होकर भाई-भाई आपस में कट मरे; करोड़ो नर-नारी जिस जमीन की मिट्टी को सदियों से अपनाये हुए थे, उससे मूलतः छिन्न होकर घरबार छोड़ देने और अनाथ, असहाय अवस्था मे दर-दर भटकते फिरने को बाध्य हुए, स्त्रियाँ पतियो, पिताओं और भाइयो से छिन्न हुईं, बच्चे माताओं की गोद से छूटकर दानवता की कराल दाढ़ो के बीच में जा फँसे; और सबसे विकट बात यह हुई कि इन सबके

परिणाम-स्वरूप जब राष्ट्र द्विधा विभक्त हुआ तब एक भाई राष्ट्र दूसरे भाई राष्ट्र का इतना बड़ा शत्रु बन बैठा कि प्रतिहिंसक प्रवृत्तियो की कोई सीमा ही न रही······"

"तो क्रांतिकारी शहीदो के प्रति तुम्हारे मन मे कोई आदर नही रह गया है ?" मुख पर तनिक व्यंग की मुसकान झलकाते हुए विजय ने कहा।

"मेरी बात का तुम गलत अर्थ लगा रहे हो," अत्यंत गंभीर भाव से राजीव बोला। "साम्राज्यवादी लौह-चाप के नीचे कुचली हुई देशमाता की करुण कराह ने उन शहीदो के भीतर जो आग सुलगायी थी उसकी वास्तविकता अविवादास्पद है। वे लोग आजीवन आश्चर्यजनक त्याग और आत्म-बलिदान द्वारा जिस वैयक्तिक वीरता का परिचय देते रहे वह अतुलनीय है। आजीवन सच्ची लगन से विकट से विकट खतरो को अपनाते रहना, कठोर से कठोर संकटो का सामना करते जाना, सब समय मौत को हथेली पर रख कर उससे खेलते रहना, हँसते हुए फाँसी पर चढ़ जाना—ये कोई साधारण गुण नही है, यह तुम भी मानोगे। एक भी क्रांतिकारी ने इस उद्देश्य से इस आंदोलन मे भाग नही लिया कि उसका नाम होगा या उसे भविष्य मे कोई व्यक्तिगत लाभ होगा। अन्त तक केवल अपने को मिटाये चले जाना—अपने शरीर को तिल तिल जलाकर अपने रक्त को बूँद-बूँद गिराकर। इस प्रचंड आत्म-बलिदान का जोड़ संसार में बहुत कम मिलेगा और यह तभी संभव हो सकता है जब प्राणो के भीतर कोई विराट ज्वाला अखंड चिता की तरह दिन-रात,

प्रतिपल जलती रहती हो। जो दानवीय शक्तियाँ पिछले वर्षों में देश की छाती फाड़ कर उसका रक्त शोषण कर रही थीं उनके विरुद्ध विद्रोह की उस आग को बराबर, कठिन से कठिन परि-स्थितियों मे कायम रखना कोई साधारण बात नहीं थी। इन सब कारणो से उन वीरात्माओ के प्रति मेरे मन मे अगाध श्रद्धा है जो अपने को पूर्णतः मिटाकर आँधी-पानी के बीच में भी उस चिता को जलाये हुए थे। पर यह सब होने पर भी उनके प्रयत्न देश के उद्धार में सफल न हो सके। इसका कारण यह था कि वे प्रयत्न न तो व्यापक रूप से संगठित थे, न वे तरीके ही ठीक थे जिन्हें वे अपना रहे थे। छिटफुट व्यक्तिगत हिंसात्मक कार्रवाइयाँ चाहे कैसे ही महान् उद्देश्य को सामने रखकर क्यो न की जायें उनको कोई सार्थकता हो सकती है, यह बात आज मेरी समझ मे नहीं आ पाती। आज स्वयं मेरी अपनी वे पिछली भूलें विकट व्यंग से मेरा परिहास कर रही है। उन छिटफुट, व्यक्तिगत हिंसात्मक कार्रवाइयो की तुलना जब मैं सुभाष बोस की आज़ाद हिन्द सेना के संगठित प्रयत्नों से करता हूँ तब वास्तविकता का एक दूसरा पहलू सामने आता है। सुभाष बोस और उनके सैनिक भी क्रांतिकारियों की तरह आत्म-बलिदान द्वारा देशोद्धार पर विश्वास करते थे और साथ ही हिंसात्मक उपायों पर भी। पर जिस बात को उन्होंने सबसे अधिक महत्त्व दिया था वह था व्यापक संगठन। किसी महान् और व्यापक हित का ध्येय सामने रखकर यदि संगठित हिंसात्मक प्रयत्न किये जायँ तो उनका कुछ अर्थ समझ मे आता है। पर छिटफुट हिंसात्मक कार्रवाइयों

द्वारा किसी व्यापक उद्देश्य की पूर्ति का जो व्रत मैंने और मेरी ही तरह दूसरे क्रांतिकारियो ने लिया था वह कृच्छ्र-साधना की ही कोटि मे आता है।"

"तब यह माना जाय कि तुम सामूहिक हिंसा मे विश्वास करते हो, क्यो ?" विजय ने उसी व्यंग्यपूर्ण मुद्रा से कहा।

"आज सामूहिक और संगठित हिंसा के सम्बन्ध में भी मेरे विचारों में मूलगत परिवर्तन आ गया है। पर इस वास्तविकता की ओर से मै आँखें बन्द नही किये हुए हूँ कि जब तक आज के संसार की अत्यन्त संकीर्ण रूप से भौतिक और भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति मे परिवर्तन नहीं होता, जब तक विश्व-समाज का कोई वर्ग अधिकाधिक अर्थ-संचय के निरर्थक प्रलोभन के दलदल मे स्वयं फॅसते चले जाने और अपने साथ दूसरो को भी उस कभी अंत न होने वाले अतल में घसीटते रहने के चक्कर में पड़ा रहेगा, जब तक सम्मिलित राजनीतिक और आर्थिक कारणो की चक्की मे जन-साधारण को पिसते रहने के लिए बाध्य किया जायगा, और उनकी व्यापक मुक्ति के, सभी वर्गो के साथ उन्हे समान स्तर पर लाने के प्रयत्नो मे रुकावटें आती रहेगी, जब तक एक राष्ट्र अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए दूसरे राष्ट्रो को धुप्पल-बाजी के चक्कर मे डालने और धोखा देने में ही राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय 'आदर्श' की महान् पूर्ति समझेगा, तब तक संसार मे सामूहिक हिंसा के संगठित प्रयत्नों का अन्त हो जाना संभव नहीं है। केवल इतना ही नहीं, तब तक हिंसा सम्बन्धी वैज्ञानिक उपायों में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि होती चली

जायगी और व्यापक विनाश के नये-नये अस्त्रों के निर्माण मे राष्ट्रों के बीच मे होड़ लगी रहेगी, तब तक कोई भी अहिंसा-वादी, चाहे उसका व्यक्तित्व कितना ही महान् क्यो न हो, आज के युग मे केवल अपने विचारो के व्यापक प्रचार से हिंसा को अणु-मात्र भी मिटाने मे समर्थ न हो सकेगा। हिंसा आज के विश्व का मूलाधार बनी हुई है। सभी राष्ट्रो का शासन और नियमन, और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो का विघटन केवल हिंसात्मक साधनों के बल पर ही चल रहे है, समग्र संसार की राजनीतिक और आर्थिक इमारत केवल तोपो, टैकों, विमान-बेधको, राकेटों, अणु-बमो, युद्धपोतो और जंगी विमानो की सम्मिलित नीव पर खड़ी है। यदि किसी राष्ट्र के नीचे से उस नीव को हटा दिया जाय तो वह ताश के महल की तरह गिर पड़ेगा। इससे बढ़कर बिडबना आज की मानवता के लिए और क्या हो सकती है।·····"

"यह आ गया मेरा बंगला", विजय ने 'कार' की चाल धीमी करते हुए कहा। "चलो, आज तुम्हारे साथ डटकर बातें हो। आज तुमसे मिलकर लगता है कि मै बीस वर्ष छोटा हो गया हूँ और अभी तक एक निर्द्वन्द्व छात्र के अलावा और कुछ नही हूँ।"

सोलहवाँ परिच्छेद

'कार' ने फाटक के भीतर प्रवेश किया और उसके बाद बरसाती मे आकर ठहरी। पहले राजीव उतरा। विजय ने गाड़ी को चाभी से बन्द किया और तब नीजे उतरकर राजीव को ड्राइंग रूम मे ले गया।

राजीव ने आश्चर्य से देखा कि विजय के ड्राइंग रूम की सजावट उमाप्रसादजी के ड्राइंग रूम से कई गुना बेहतर थी। नये-नये डिजाइनों के एक-से-एक बढ़िया सोफा सेट, शीशे की चादरवाली मेज़ें, अच्छे से अच्छे किस्म की बेंत की शानदार कुर्सियाँ, कलापूर्ण राखदानियों सहित सुन्दर तिपाइयाँ, फर्श पर बिछे हुए ठाठदार कालीन, आलों पर करीने से सजाये हुए, तरह-तरह के चित्रों और रंगों वाले मिस्रदेशीय और चीनिया फूलदान, हाथी दाँत की बनी छोटी-छोटी मूर्तियाँ, आदि चीज़ें देखकर राजीव को विस्मय हुआ। विस्मय केवल इसलिये कि विजय की कृपण मनोवृत्ति से वह पहले ही से परिचित था और यह सुन चुका था कि अभी तक उसकी इस मनोवृत्ति में कोई अंतर आने के बजाय वह बढ़ती चली जा रही है। ऊपर रंग-बिरंगे पत्थरों के टुकड़ों से पटी हुई छत पर से चमकीले, झालरदार, बड़े-बड़े शेडों से आवृत दो बत्तियाँ लटक रही थीं।

जब दोनों इतमीनान से बैठ गये तब राजीव ने कहा—"तुम्हारा यह बँगला ठाठदार है। तुम्हारा अपना बँगला है या किराये का?"

"मेरा अपना ही है" गद्गद भाव से मुसकराते हुए विजय बोला। "खून पसीना एक करके जितना कुछ कमाया वह सब इन्हीं चक्करों में लगा दिया, मित्र! अब मेरे पास कुछ नहीं है। फाकेमस्त हूँ!"

"बड़ी दयनीय दशा है तुम्हारी," हँसी को रोकने का व्यर्थ प्रयास करता हुआ राजीव बोला। "पर 'इन्हीं चक्करों' से तुम्हारा

आशय क्या है ? और भी कुछ बँगले है तुम्हारे ?"

"पहाड़ मे एक सेब का बाग खरीद लिया था । एक बँगला मसूरी में सस्ते मे मिल गया था । बँगला कुछ पुराना हो चला था । थोड़ी मरम्मत से वह अब एकदम नया हो गया है·· इन्हीं सब परेशानियो मे मेरी आज तक की जिन्दगी बीती है । सच पूछो तो, जवानी कब आयी कब गयी, इसका कुछ पता ही मुझे नही चला···"

"तुमने शादी तो कर ली थी !" विजय के काव्यात्मक 'मूड' को और उसकाते हुए राजीव ने कहा।

"अरे, वह शादी न होने के ही बराबर थी !" एक ठढी आह भरता हुआ विजय बोला।

"क्यो ? पत्नी कुरूप मिली या अनपढ़ ?"

"नही, पत्नी मे न तो रूप की कोई कमी थी न शिक्षा की । पर तब इन बातो की ओर मेरा ध्यान ही नहीं था । मेरे मस्तिष्क मे केवल एक ही बात की धुन सवार थी । दिन-रात मै यही सोचता था कि कैसे एक अच्छी-खासी रकम जोड़ी जाय। रुपया, रुपया, अधिक से अधिक रुपया ! मैं पत्नी का प्यार नही चाहता था । चाहता था उसका रुपया । मेरा यह विश्वास था कि मेरे प्रति मेरी पत्नी के सच्चे प्रेम का एक मात्र प्रमाण यह है कि उसके पास जो हजारो रुपयो के गहने पड़े है वे सब वह मुझे सौप दे। मै उनसे प्राप्त रकम को व्यापार मे लगाना चाहता था । पर उसने भी जैसे उन गहनो के पीछे जान देने का निश्चय कर लिया था । शायद मेरे अत्यधिक लोभ की प्रतिक्रिया उसके मन मे

इस रूप में हुई। फल यह हुआ कि हम दोनों का वैवाहिक जीवन विषमय हो उठा। अंत मे वह बीमार पड़ गयी, उन गहनों को अपने कलेजे से चिपटाये इस दुनिया से चल बसी। अत्यन्त खिन्न हृदय से मैंने उन गहनों को बेच डाला ··"

राजीव की इच्छा हुई कि कहे—"मैंने तो उसकी मृत्यु का कुछ दूसरा ही कारण सुना है।" पर वह अपने को जब्त कर गया। बोला—"अच्छा मित्र, तुमने इतनी सारी संपत्ति किसके लिये जोड़ी है? तुम्हारे अकेले के भोग के लिये इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। जितना वेतन तुम पाते हो—तुम्हारा वेतन १०००) से कम क्या होगा—वही तुम्हारे लिये जरूरत से बहुत ज्यादा है, क्योंकि जैसा कि स्वयं तुमने बताया, तुम इतना धन जोड़ने और कमाने पर भी 'फाकेमस्ती' करते हो। तब इस सारे चक्कर मे तुमने अपने को क्यों उलझाया?"

"तुम्हारा तर्क बिलकुल ठीक है", तनिक गम्भीर भाव से विजय ने कहा, "पर तुम अगर मेरे मनोभावों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करो तो सारी बात तुम्हारे आगे स्पष्ट हो जायगी। तुम जानते हो, मैंने कैसी गरीबी की हालत मे अपना प्रारंभिक जीवन बिताया। सबको प्रसन्न रखने की कला सीखकर नीच से नीच व्यक्ति की खुशामद और चापलूसी करके मैं शिक्षा प्राप्त कर सका। अपनी हीनता की भावना से मैं सब समय दबा रहता था। अपनी उस निपट पर-वश स्थिति से जीवन मे कभी छुटकारा पा सकने के स्वप्न को मै मन के एक अँधेरे कोने मे सबकी नजरों से छिपाये रहता। इतना

मैं समझ गया था कि वह छुटकारा मुझे तभी मिल सकता है जब मैं एक अच्छी पूँजी जोड़ पाऊँ। इसलिये अर्थ-संचय ही मेरे जीवन का एकमात्र गुप्त ध्येय बन गया। मै जहाँ भी जाता, जिस किसी काम मे भाग लेता, मेरे मन में एकम त्र वही लक्ष्य उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते मँडराया करता। जब मैंने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया तब भी वह लक्ष्य मेरे सामने था। मैंने प्रत्येक परिस्थिति को अपने लक्ष्य की सिद्धि का साधन बनाने का निश्चय कर लिया था। असहयोग आन्दोलन मे थोड़ा-सा भाग लेना मेरे लिये अन्त मे जाकर हितकर ही सिद्ध हुआ है। जैसा कि तुम देख रहे हो, आज मै अपने उतने ही त्याग के कारण अपनी कुछ सांसारिक स्थिति बना सका हूँ। आज मेरा स्वप्न सफल हो गया है। मेरा अपना अलग बँगला भी है, अलग 'कार' भी। मैं आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हूँ। पर एक दूसरी ही भावना मेरे भीतर जग उठी है। आज मुझे लगता है कि इतने वर्षों तक मै रिप वान विकल की तरह गहरी नींद मे सोया रहा। अब जगने पर देखता क्या हूँ कि जीवन की काल्पनिक सुविधाएँ जुटाने मे मै प्रत्यक्ष सुविधाओं से हाथ धो बैठा, और उस गहरी नींद की अवस्था में मेरी जवानी कब निकल भागी यह मैं जान ही न पाया। अब उसी भागती हुई जवानी को फिर से पकड़ने के असंभव प्रयत्न मे मै भी उसके पीछे-पीछे भागता फिर रहा हूँ। आज जीवन का एक नया ही रंगीन रूप मेरे सामने आ रहा है। वह भी कहीं मेरी असावधानी से, मेरे अनजान मे गायब न हो जाय, इस आशंका

से मैं उसे जल्दी से, मजबूती से, कसकर बाँध लेना चाहता हूँ।"

"तुम्हारे इस बंधन का प्रत्यक्ष शिकार कौन बनने जा रही है? कहीं प्रमीला तो नही है?"

"हाँ वही है। तुम्हें किसने बताया?" उत्सुक दृष्टि से राजीव की ओर देखते हुए विजय ने कहा।

"इतनी स्पष्ट बात के लिये भी किसी के बताने की आवश्यकता है! पर एक बात मैं तुम्हारे कान में डाल देना चाहता हूँ। प्रमीला को तुम बाँध नहीं पाओगे। विवाह हो जाने पर भी नही। वह कुछ दूसरे ही धातु की बनी है।" एक तीखा व्यंग राजीव की आँखो में खेल रहा था।

"मैं जानता हूँ। पर इस सम्बन्ध मे मेरी कल्पना कुछ दूसरी ही है। सच पूछो तो मै बाँधना नही चाहता, बल्कि स्वयं उससे बँध जाना चाहता हूँ। मेरे इस बलात् बधन की जो गाँठ उसके मन मे पड़ जाएगी, उसे फिर वह चाहने पर भी नही खोल पायेगी। अपने एकाकीपन से इधर मै इस कदर भयभीत हो उठा हूँ कि किसी के अंचल से स्वयं अपने को बाँधे बिना मुझे अपना निस्तार नहीं दीखता। इसीलिए मै इस चिंता मे हूँ कि जल्दी से जल्दी विवाह हो जाय......"

"क्या बातचीत चल चुकी है?"

"हाँ!"

"कब तक विवाह हो जाने की संभावना है?"

"अगले महीने, माघ के अंत तक हो जाना चाहिये।"

बाहर एक ताँगे को फाटक के भीतर प्रवेश करते हुए देखा गया।

"कोई तुमसे मिलने आया है। अच्छा, अब मैं चलता हूँ।" राजीव ने उठने की तैयारी करते हुए कहा।

"अरे बैठो भी। वह मेरे किरायेदार है। इसी बँगले के आधे भाग मे रहते है।"

"ओह! यह बात है!" मुसकराते हुए राजीव ने कहा। "मुझे आश्चर्य हो रहा था कि इतने बड़े बँगले मे तुम अकेले रहकर, किराये की प्रत्यक्ष हानि क्यो उठाने लगे!" कुछ रुकने के बाद फिर बोला—"पर याद रखना, मित्र, प्रमीला किसी किरायेदार का साथ पसंद नही करेगी। वह बँगले पर अकेले कब्जा करना चाहेगी।"

"यही डर मुझे भी है," एक सर्द आह भरता हुआ विजय बोला। "बड़ी खर्चीली आदतो वाली लड़की है। आज ही उसने कई बेमतलब की चीजें खरीदकर दो सौ की चपत जमा दी!"

"पर तुमने तो बता दिया था कि तुम्हारे पास रुपया नही है!"

"यह ठीक है। अभी उसने अपनी गाँठ से रुपये खर्च किये हैं। पर तुम क्या यह सोचते हो कि वह मुझसे बिना वसूल किये मान जायगी?"

राजीव अट्टहास कर उठा। विजय भी मंद-मंद मुसकराने लगा। राजीव को यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि विजय इस समय न तो उसके किसी व्यंग से बुरा मान रहा है न अट्टहास से। कृष्णा जी के आगे वह उसे कैसे तीखे उत्तर दे रहा था, यह वह देख चुका था। फिर उसने सोचा कि वहाँ शायद उसके लिए अपने बड़प्पन—किसी से न दबने वाले व्यक्तित्व—का स्वाँग

रचना आवश्यक था, ताकि भावी जमाई के गीदड़ अथवा कुत्ते वाले रूप का आभास भावी ससुराल के लोगो को न मिले।

"पर प्रमीला है बड़ी प्यारी लड़की!" आँखों में रस भरते हुए विजय बोला। "तुम तो देख ही चुके हो। क्या राय है तुम्हारी?"

"मुझे तो केवल यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि आखिर कोई लड़की तुम्हे प्यारी तो लगी! जीवन मे इतना अवकाश तो तुम्हे मिला कि कौन लड़की प्यारी है और कौन नहीं, इसका अनुभव कर सको! पर मेरी यह सलाह है कि अब भी समय रहते एकांत में अपना मन ठीक से टटोल लो!"

"तुम भी कभी-कभी बड़ी विचित्र बातें करने लगते हो मित्र! लंबे और कठोर कारावास ने तुममे हास्य की प्रवृत्ति जगा दी, यह आश्चर्य ही है। मैंने जितने भी क्रांतिकारियों को कारा-वास से मुक्त होने के बाद देखा है, सब के स्वभाव में एक गहरी निराशा, एक जीवन-शोषी अवसाद, पराजय की भावना और चिड़चिड़ापन पाया है। पर तुम तो ऐसे तरोताजा होकर निकले हो जैसे किसी कठोर निर्वासन से नहीं बल्कि ससुराल से लौटे हो। बात-बात में ऐसे परिहास की बातें करते हो, ऐसा चुटीला व्यंग कसते हो कि तबीअत दुरुस्त हो जाती है।"

राजीव ने फिर ठहाका लगाया। बोला—"पर कुछ लोग तो ससुराल से भी खिन्न होकर लौटते हैं और यही हिसाब लगाते रहते है कि वहाॅ जाकर कितने रुपयों की चपत पड़ी।"

"अच्छा, हटाओ इन सब बातो को," विषय को टालने के उद्देश्य से विजय बोला, "अपना हाल बताओ। कहाॅ-कहाॅ रहे,

और क्या-क्या अनुभव तुम्हें कारावास मे हुए ?"

"ये सब विषय तुम्हारे मतलब के नहीं हैं। इस तरह की बातो में न तुम्हारा जी लगेगा, न उनकी चर्चा तुम्हारे आगे करके मैं अपना समय नष्ट करना चाहता हूँ। हाँ, यदि तुम्हारा इरादा चाय न पिलाने और यो ही खुश्क टकरा देने का हो तो बात दूसरी है।"

"हाँ, हाँ, ठीक है, मैं तो भूल ही गया था।" अत्यंत गंभीर चिता भाव व्यक्त करते हुए विजय ने कहा। "पर एक बात है, मित्र! आजकल मेरा नौकर छुट्टी पर गया हुआ है। चाय बनाने वाला यहाँ कोई है नहीं।"

"तब तुम बिना नौकर के कैसे काम चलाते हो ?" अकृत्रिम आश्चर्य से राजीव ने पूछा।

"बात यह है कि मेरे किरायेदार बहुत ही शरीफ लोग है। वे ही लोग इधर कुछ समय से मुझे चाय भी पिलाते है और खाना भी खिलाते हैं। उसके अलावा जो छिटफुट काम रह जाते है वह उन्ही का नौकर कर दिया करता है। इसलिये मैं निश्चित हूँ।"

राजीव के मन मे यह संदेह जगने लगा कि नौकर को जानबूझकर विजय ने भगा दिया है ताकि दूसरे के बिना पैसे के नौकर का सुख उठाया जा सके।

"अच्छा, तो मै चला, नमस्कार।" कहकर राजीव इस तेजी से उठकर चल दिया कि फिर पोछे की ओर मुड़कर देखा तक नहीं।

सत्रहवाँ परिच्छेद

विजय के बँगले से बाहर निकलकर राजीव अनिश्चित और निरुद्देश्य भाव से दायीं ओर को मुड़ गया । उसे न तो इस बात का ही कोई निश्चित ज्ञान था कि कौन सड़क किस ओर जाती है, न उसके आगे कोई विशेष लक्ष्य ही था ।

अन्यमनस्क भाव से चलता हुआ वह विजय की अंतिम बात पर मन-ही-मन हँस रहा था । चाय पिलाने के लिये उसके पास नौकर भी नहीं है ! कृपणता और संचय की मनोवृत्ति मनुष्य को नीचता की किस सीमा तक पहुँचा सकती है, यह सोचकर उसे आश्चर्य भी हो रहा था । यह रिप वान विंकल जब, उसी के शब्दों मे, बीस वर्ष तक गाढ़ी नींद मे सोते रहने के बाद जगा भी है, तो भी उसे एक ही धुन है—कैसे अधिक से अधिक पैसा बचाया जाय और भरसक कम से कम खर्च किया जाय । यदि एक पैसा बचाने के लिये उसे सौ झूठ बोलने पड़ें तो वह उसके लिये तैयार है । यदि एक पैसे की प्राप्ति की भी संभावना हो तो वह चापलूसी और छल-चातुरी से लेकर जालसाजी और हत्या तक किसी भी अस्त्र को काम मे लाने से नही हिचकेगा । इस प्रकार के उपायो को काम मे लाते हुए उसकी आत्मा मे (यदि 'आत्मा' नाम की कोई चीज़ उसके भीतर है तो) तनिक भी सिकुड़न नही आयेगी, क्योंकि जिस कार्पण्य धर्म को उसने अपनाया है उसमे किसी भी उपाय से एक भी पैसा बचाना या प्राप्त करना पुण्य है, यह निश्चित विश्वास जैसे उसने सहज

संस्कारवश प्राप्त कर लिया है।

"वास्तव मे यह कीड़ा अपने मे महान् है !" राजीव पहले चौराहे से बायीं ओर—बिना कुछ सोचे हुए—मुड़ता हुआ मन-ही-मन तर्क करने लगा। "वह महान् इसलिये है कि अपने जीवन के निश्चित उद्देश्य के सम्बन्ध मे वह तनिक भी उलझन मे नहीं है और उस उद्देश्य की पूर्ति के साधनो को चुनने के सम्बन्ध में उसके मन मे तनिक भी द्वन्द्व नहीं उठता। यह नारकीय कीड़ा निश्चित माने बैठा है कि नरक की गंदगी के भीतर से केवल गंदगी ही जुटाकर उसे मृत्यु-पर्यन्त संचित किये चले जाने में ही जीवन की परिपूर्ण सार्थकता है।"

सोचते-सोचते वह मूक अट्टहास कर उठा, जिसकी प्रतिच्छाया उसके मुख पर बड़ी तीव्रता से झलक उठी। "पर है वह कीड़ा बड़ा धूर्त !" इस बार मन मे नही, स्पष्ट शब्दो मे उसके मुँह से यह बात बाहर निकल पड़ी। उसकी बगल से ही एक सूट-बूटधारी युवक एक फैशनेबुल युवती के साथ चला जा रहा था। राजीव के मुँह से उक्त वाक्य सुनकर और उसके मुँह पर हँसी की तीव्र प्रतिच्छाया देखकर वह क्षण भर के लिये ठिठक कर खड़ा रह गया और उत्कट दृष्टि से घूरकर उसकी ओर देखने लगा। उसे स्पष्ट ही यह सन्देह हुआ था कि वह बात राजीव ने उसके लिए कही है, पर राजीव को उसकी ओर देखने का भी अवकाश जैसे नहीं था। वह विजय के जीवन और मन के विश्लेषण मे इस कदर तन्मय हो गया था।

"और वह बुद्धि भी रखता है।" फिर मन-ही-मन वह तर्क

करने लगा। "अपने से बाहर की दुनिया के सम्बन्ध में भी वह अपने विचार रखता है। 'देशभक्ति' की क्या उपयोगिता है, यह तो वह समझ ही चुका है, साथ ही किस प्रकार का आत्म-त्याग कृच्छ्र साधना है, यह भी वह जाने बैठा है। इस युग के कीड़ो के मस्तिष्क मे तर्क बुद्धि-तत्त्व प्रवेश कर चुका है। केवल इतना ही नहीं, वह यह भी जान चुका है कि प्रमीला बड़ी प्यारी लड़की है। तब तो खटमल भी निश्चय ही यह परखने की बुद्धि रखता होगा कि किसके रक्त में क्या विशेषता है। और प्रमीला। वह क्या जानती होगी कि जिस कीड़े को उसने पकड़ा है वह नरक की किन-किन गंदी नालियों से जीवन का 'सार' बटोर कर संचित करता रहता है? जिस खटमल को वह पालने जा रही है वह अपने भीतर न जाने किन-किन सरल-हृदय व्यक्तियों का रक्त बटोरे हुए है और निष्पापो के उस निर्दोष रक्त को प्लेग और कोढ़ के रोगियो के रक्त से मिलाकर न जाने किस विचित्र घातक रोग के विषैले कीटाणुओ का 'कलचर' अपनी आत्मा मे किये चला जा रहा है? यह जहरीला खटमल निश्चय ही अवसर पाकर उसे भी काटेगा और उसके भी भीतर प्लेग और कोढ़ के कीटाणुओं का संचार कराने का प्रयत्न करेगा। प्रमीला यदि समय रहते उससे सावधान हो भी जायगी तो भी उसके लिये केवल यही रास्ता रह जायेगा कि वह उसे मसल डाले। पर वह उसके हाथ मे आते-आते फिसल कर निकल जायगा और फिर किस छिद्र मे जा छिपेगा, इसका पता लगाना प्रमीला के लिये असम्भव हो जायगा। और जब वह निश्चिन्त हो जायगी

तब फिर उसके असावधान क्षण में, छिद्र से बाहर निकलकर उसे काट खायगा और फिर किसी अज्ञात छिद्र मे जा छिपेगा। प्रत्येक बार हाथ मे आते-आते रह जायगा। यदि किसी उपाय से हाथ मे आ भी जायगा और वह उसे मसल भी डालेगी तब भी वह जैसे "मरतिहुँ बार कटक संहारा" वाली उक्ति चरितार्थ करने के लिये, ऐसी दुर्गन्ध अपने चारों ओर फैला देगा कि प्रमीला का सिर भन्ना उठेगा।"

वह पैदल चलते-चलते एक बड़ी सड़क पर आ पहुँचा जहाँ छोटी और बड़ी मोटरो, ताँगों, इक्को, रिक्शो, साइकिलो और ठेलों की रेलपेल और ठेलमठेल के कारण वह सावधान हो गया और एक फुटपाथ के किनारे-किनारे चलने लगा। कुछ ही दूर आगे चलने पर वह फुटपाथ पर ही लगी हुई एक भीड़ के पास पहुँच गया जहाँ "पकड़ो साले को ! मारो साले को !" की आवाजें आ रही थीं। मामला क्या है, यह जानने के लिये भीड़ के बीच मे घुस गया। एक सफेदपोश महाशय, जो गरम जवाहर बंडी, गरम कुर्ता और लंकलाट का ताजा धुला हुआ पाजामा पहने थे, एक साँवले रंग के छोकरे को, जो अधफटे, गन्दे कपड़े पहने था और थरथर काँपता हुआ, दीन दृष्टि से देख रहा था, बुरी तरह पीट रहे थे। सभी दर्शक बाबू साहब के प्रति सहानुभूतिशील होकर उस मार से प्रसन्न हो रहे थे और बाबू जी को और उत्साहित करते जाते थे। मामला क्या है यह ठीक से न जानने पर भी राजीव ने दोनों के बीच में पड़कर बाबू साहब को रोका।

"आपको किसी राहगीर को इस तरह पीटने का कोई अधि-

कार नही है," दृढ़ स्वर मे राजीव ने कहा।

"राहगीर नहीं, यह उठाईगीरा है जनाब, गिरहकट! आपको कुछ खबर भी है?" तमक कर बाबू साहब बोले।

"होगा!" राजीव ने उसी दृढ़ता से कहा—"पर इसका यह अर्थ नही है कि आप कानून अपने हाथ मे लेकर उसे इस निर्ममता से पीटते चले जायँ।"

"मुझे पूरा अधिकार है। आप कौन होते है बीच मे दखल देने वाले? वह मेरी गाँठ काटने की कोशिश करे और मै खड़े-खड़े तमाशा देखता जाऊँ! हटिये, मै उस पाकेटमार साले को और पीटूँगा।" और वह अपना हाथ छुड़ाने लगे। पर राजीव ने अपनी वज्रमुष्टि से इस मजबूती से उनका हाथ पकड़ लिया था कि छुड़ा सकना उनके लिए असंभव ही था। बाबू साहब को क्या पता था कि वह ऐसे आदमी से भिड़ रहे है जिसने किसी जमाने में सशस्त्र पुलिस के दो-दो पहलवानो की मुश्के एक साथ बाँधकर, उनकी पिस्तौले छीन कर, उन्हे नाली मे ढकेल कर अपनी रक्षा की है, जो लोहे का दरवाजा तोड़कर जेल से निकल भागा है।

"उसने आपकी गाँठ काट ली या काटने जा रहा था?" राजीव ने पूछा।

"काट कैसे लेगा! मुझे अन्धा समझ लिया है क्या? मै काटने कैसे देता!"

"वह पाकेटमार है तो आप पेटमार हैं," हँसते हुए, और बाबू साहब की मुट्ठी उसी दृढ़ता से पकड़े हुए, राजीव ने कहा।

"आप मुझे गाली देते है! यह ज्यादती है आपकी!"

छटपटाते हुए, नपुसक क्रोध और अपमान और खीझ से प्रायः रोने की सी तैयारी करते हुए बाबू साहब बोले।

तमाशाइयो की संख्या बढ़ती चली जा रही थी। एक अच्छे खासे बाबू को एक उजड्ड से युवक के पंजे मे फँसा हुआ देखकर दर्शको को मजा आ रहा था।

"मैं गाली नहीं देता," राजीव ने उसी शान्त मुसकान के साथ, परिहास के-से स्वर मे कहा—"मैं तो वास्तविक तथ्य से आपको परिचित करा रहा हूँ"

"कैसे ?" इस बार बाबू साहब की खीझ मे उत्सुकता का भी कुछ पुट था।

"मान लीजिये, वह गिरहकट"—कहकर राजीव पीछे की ओर मुड़ा उस अभागे छोकरे की ओर बाबू साहब का ध्यान फिर से आकर्षित करने के लिए। पर उसे न देखकर उसने आस-पास के दो एक व्यक्तियो से पूछा कि वह कहाँ है ?

"वह क्या इतनी देर तक खड़ा रहेगा !" एक दर्शक ने राजीव के भोलेपन पर मुसकराते हुए कहा।

"हा ! हा ! हा !" राजीव ने अकृत्रिम प्रसन्नता से ठहाका मारा। उसके बाद उसने बाबू साहब का हाथ छोड़ते हुए कहा—"मै कह रहा था कि पहले तो आप यही प्रमाणित नही कर सकते कि उसका इरादा सचमुच में आपकी जेब काटने का था। जो लोग आपकी तरह अत्यधिक सावधान होते है उन्हे रास्ते मे चलते हुए या 'बस' मे भीड़ के बीच मे बैठे हुए, किसी भी आदमी का धक्का लगते या शरीर छूते ही पाकिटमारी का संदेह

होने लगता है। खैर, मान लीजिये कि उसका यही इरादा था और यदि आप सावधान न होते तो शायद दो-चार रुपये आपकी जेब से निकाल लेता। उतने पैसों से वह मरभुखा दो-चार दिन के लिए अपने पेट का ठिकाना कर लेता। दो-चार रुपये निकल जाने से आपके प्राण संकट मे न पड़ते, जब कि वह बहुत सम्भव है, जीवन और मरण की स्थिति मे हो। अब बताइये, आप पेटमार सिद्ध हुए या नही ?"

सब दर्शक हँस पड़े। राजीव के मुख पर एक रहस्य-भरी व्यंग्यात्मक—या शायद परिहासात्मक—मुसकान खेल रही थी, जिससे बाबू साहब बेतरह तिलमिला रहे थे।

"आप—आप—बड़े--वैसे आदमी है! ऐसे आदमियो से मै बात नही करना चाहता।" बाबू साहब कोई कड़ा शब्द कहने जा रहे थे, पर राजीव की वज्रमुष्टि की पकड़ से उनके हाथो मे अभी तक दर्द हो रहा था, इसलिये उससे अधिक झगड़ा मोल लेने का साहस उन्हे नही हुआ।

जब बाबू साहब जाने लगे तब राजीव ने उनका हाथ प्रेम के साथ पकड़ कर, सांत्वना के स्वर में तनिक गम्भीर भाव से कहा—"देखिये मिस्टर, मेरी बात का बुरा न मानियेगा। मैंने हँसी में वह बात कही! न मैंने गिरहकटों की वकालत का ठेका लिया है न चाहता हूँ कि उन्हे दंड न मिले। कोई भी भला आदमी इस पेशे की प्रशंसा नहीं कर सकता। पर जिस ढंग से आप उसे पीट रहे थे उससे उसकी आदत मे कभी कोई फरक नहीं आ सकता—यदि वह सचमुच में गिरहकट है और आपको उसके संबंध

मे भ्रम नहीं हुआ है तो। उस मरे हुए को निर्ममता से पीटने से न तो किसी के आगे आपकी बहादुरी का कोई प्रमाण मिला न कोई लाभ ही आपको या उसको पहुँचा। इससे अच्छा तो यह होता कि आप उसे पकड़ कर किसी हलवाई की दुकान मे ले जाते, उसे पूरियाँ या मिठाई खिलाकर तब उसका नाम, धाम और काम पूछते। मीठी-मीठी बातो से धीरे-धीरे उसके पेट की सब बातें निकालकर उसे एक सच्चे हितैषी की तरह समझाते, और उसके बाद आपसे सम्भव होता तो उसे कहीं किसी काम पर नियुक्त करा देते। इस उपाय से, संभव है, आप एक गहन गर्त मे डूबते हुए प्राणी की रक्षा का पुण्य कमा सकते और समाज की भी सेवा का श्रेय पा जाते। पर आपने तो एकदम से ऐसा रुख अख्तियार किया कि…"

"वाह साहब, वाह! आप धन्य है!" दोनो हाथ जोड़ते हुए व्यंगपूर्वक बाबू साहब बोले—"मै अपनी गाँठ भी कटाऊँ और उसके बदले उसे खाना भी खिलाऊँ! मेरे उद्धार का यह अच्छा उपाय आपने बताया!" इस बार उनके चेहरे पर मुसकान झलक आई थी, जिससे राजीव समझ गया कि उन्होने सन्धि कर ली है।

फिर एक बार हँसी की लहर उमड़ उठी। बाबू साहब जब जाने लगे तब राजीव ने दोनो हाथ जोड़ते हुए कहा—'नमस्कार!"

"नमस्कार।" बाबू साहब ने प्रत्यभिवादन किया।

"मेरी बात पर फिर एक बार विचार करके देखियेगा।" मुसकराता हुआ राजीव बोला।

"अवश्य।" कह कर बाबू साहब चल दिये।

अठारहवाँ परिच्छेद

भीड़ से बाहर निकलकर आगे बढ़ता हुआ राजीव सोचने लगा कि अच्छी उलझन मे उसने अपने को अनचाहे फँसा लिया था। बेचारे बाबू साहब ! वह निश्चय ही स्वप्न मे इसी आशंका से ग्रस्त रहते होंगे कि कोई उनकी जेब काटे लिये जा रहा है। जिन-जिन की जेबें भरी हुई है वे सब अपनी-अपनी जेब की रक्षा की चिन्ता मे व्यस्त है। खाली जेब वालों की ओर ध्यान देने का अवकाश किसी को भी नहीं है। यह सोचते ही वह मशीन-परिचालित पुतले की तरह अनमने भाव से दोनो हाथों से अपनी जेबें टटोलने लगा। वास्तव मे उसकी जेबें एकदम खाली पड़ी थीं। एक कानी कौड़ी भी उसके पास शेष नहीं थी। उसे बहुत देर से भूख मालूम हो रही थी और इच्छा होती थी कि कुछ लैया या मूँगफली खरीद कर खाता चला जाय। विजय से चाय का प्रस्ताव करने पर भी उसने सूखा टरका दिया था। इतनी दूर पैदल चलने से भूख की चुभन और तीखी हो चली थी। पर कोई उपाय नहीं था। इसलिए वह मन मार कर अगल-बगल लगे हुए खोंचो की चीज़ों पर सतृष्ण दृष्टि डालता हुआ चलता रहा।

"हाँ, तो मै अपनी-अपनी जेबों की रक्षा की चिता से ग्रस्त व्यक्तियो की बात सोच रहा था," अपने विचारों की टूटी कड़ी को जोड़ता हुआ वह मन-ही-मन कहने लगा। "इन बाबू साहब ने निश्चय ही जीवन-भर के परिश्रम से एक छोटी-मोटी पूँजी

जोड़ ली होगी । विजय की तरह वह भी अपने जीवन के एक स्वप्न की पूर्ति मे किसी हद तक सफल हो पाये होंगे—कौन जाने किस खटमलीय कला से ! और वह छोकरा भी—निश्चय ही वह गिरहकट रहा होगा—वह भी कुछ साधारण खटमल नहीं था। किस तरह हाथ मे आते-आते फिसल निकला ! सब खटमल है, सब गिरहकट हैं !—सारा समाज इस भ्रष्टाचारी युग में खटमलो और गिरहकटो से भरा पड़ा है ! ऐसे-ऐसे विकट कि खुले-आम भ्रष्टाचार और 'चोरबाजारी' में लिप्त पाये जाते है, और अधिकारियों की पकड़ मे आते-आते साफ फिसलकर अपने-अपने पूर्ण सुरक्षित छिद्रो मे जा छिपते है ! उधर स्वाधिकार-प्रमत्त व्यक्तियो का चक्र समाज की छाती पर अलग मूँग दल रहा है । खटमल जातीय 'पैरेसाइट्स'—परोपजीवी गलग्रहो—के बिना उनका काम ही नहीं चलता, क्योंकि उनके द्वारा वे अपने 'ब्लड-बैंक' की वृद्धि करते है। साथ ही उनके पाले हुए खटमल जब स्वयं उन्हें काटने लगते हैं तब वे खीझ भी उठते हैं और उनके निराकरण की योजनाएँ बनाने लगते है । पर सभी लोग खटमलीय नीति को नहीं अपनाते । मत्स्य-न्याय भी समाज में चल रहा है। समाज के निम्नतम स्तर में अवस्थित अत्यन्त छोटी छोटी मछलियो को उनसे कुछ बड़ी मछलियाँ निगलने की धुन में हैं, उन किंचित् बड़ी मछलियों को उनसे भी बड़ी मछलियाँ निगले जा रही है, उन्हे और बड़ी मछलियाँ चबा जाती है और अंत में बड़े-बड़े मगर-मच्छ उन सबको अपने बृहत् पाचन-यन्त्र मे डालकर हजम कर रहे है। इस बात

पर गंभीर रूप से विचार करने का किंचिन्मात्र भी अवकाश किसी को नहीं है कि संयोगात्मक रूप से, बृहत् समाज के महान् सामूहिक कल्याण की ओर प्रयत्नशील हुए बिना मानव-जीवन के विकास का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता—न व्यक्तिगत, न राष्ट्रीय और न अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से। इन परस्पर-भक्षी मछ-लियों और परस्पर-रक्तशोषी खटमलों के अलग-अलग दल भी हैं और प्रत्येक दल अपने को समाज में व्यापक कल्याण के आदर्श की स्थापना का एकमात्र ठेकेदार मानता हुआ दूसरे दलों को गालियाँ देता रहता है। धुएँ और कालिख से काली पतीली अपनी ही तरह काली बटलोही को 'काला' कहती है, और बटलोही भी पलटे में पतीली को ठीक उसी तरह की गाली देने से नहीं चूकती। सर्वत्र केवल व्यक्तिगत और संगठित धूर्तता, पारस्प-रिक दोषारोपण और परस्पर प्रताड़न का जाल बिछा हुआ है। इस विश्वव्यापी झूठ के महाजाल के बीच मे यदि कोई एकाकी व्यक्ति आन्तरिक सचाई से संगठित मानवता के यथार्थ सामूहिक हित की चिंतना लेकर, मूलगत सुधार की इच्छा से प्रेरित होकर कार्य करना चाहे तो उसके लिये पाँव रखने को भी गुंजाइश कहाँ है? गांधीजी जैसे विराट पुरुष को जो युग और जो समाज खा गया वहाँ उनसे कम चारित्रिक दृढ़ता और अपेक्षाकृत क्षीण आत्मबल वाले किसी भी व्यक्ति के लिये स्थान कहाँ! उफ! कैसा विकट वातावरण है, कैसी असम्भव परिस्थितियाँ है!"

सोचते-सोचते राजीव तल को मथकर सतह तक उठने वाली एक तीव्र वेदना की लहर से कराह उठा। "हटो! हटो! बचो!

ए-ए-ए !" एक ताँगेवाले को चिल्लाते सुनकर उसकी अन्यमनस्कता भंग हुई। ताँगा उसके ऊपर चढ़ने ही को था कि वह तत्काल पीछे की ओर हटकर बाल-बाल बच गया। पर पीछे हटते ही एक दानवाकार ट्रक के नीचे आने ही को था कि संयोग ही से वहाँ भी बच गया।

फुटपाथ पर जाकर उसने एक सरसरी दृष्टि से चारों ओर देखा—यह जानने के लिये कि वह कहाँ पहुँचा है। यह पता लगा कि वह हजरतगंज के करीब पहुँच गया है। वहाँ से उमाप्रसादजी का बँगला तीन फर्लांग से अधिक दूरी पर नहीं था। पर एक तो इतनी दूर तक पैदल चलने और दूसरे मानसिक अवसाद और खिन्नता के कारण वह थकावट का अनुभव करने लगा था। एक प्याला चाय कहीं से मिल जाती तो उस थकावट को वह भगा देता। पर लाचारी थी। "तृष्णा! तृष्णा! पर जीवन के जिस लक्ष्य को लेकर मैं चल रहा हूँ—चाहे सही या गलत—उसमे तृष्णा के लिये कोई स्थान नहीं है। इस पर मुझे विजय पानी ही होगी!" उसने मन-ही-मन कहा। कुछ देर तक वह अनिश्चित अवस्था मे फुटपाथ ही पर खड़ा रहा। उसके बाद फिर अनमने भाव से उमाप्रसादजी के बँगले की ओर चल पड़ा।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

बँगले पर पहुँचकर राजीव ने देखा बरसाती मे विजय की 'कार' खड़ी है। वह सीधे ड्राइंग रूम की ओर मुड़ा। भीतर प्रवेश करते ही प्रमीला ने उसका स्वागत करते हुए कहा—

"आइये, आपकी उम्र बहुत बड़ी है। अभी-अभी आप ही की चर्चा हो रही थी।"

राजीव ने देखा, सुनन्दा भी एक कौच के पीछे खड़ी है, और स्निग्ध सरस मुसकान-भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रही है। सुनन्दा के मुख की बनावट मे आज उसे एक निराली विशेषता दिखायी देती थी, एक अजीब सा परिवर्तन लगता था। उस परिवर्तन का कारण क्या हो सकता है, यह पहली दृष्टि में उसकी समझ मे नहीं आया। पर कुछ ही क्षणों के निरीक्षण के बाद इसका ध्यान इस बात की ओर गया कि आज सुनन्दा ने अपने बालो को सॅवारने मे थोड़ा-सा परिश्रम किया है और साड़ी की किनारी और रंग मे भी अंतर है। आज वह हलकी-सी नीली झाँई-वाले रेशम की साड़ी पहने थी। उसकी साड़ी का पल्ला सिर के बहुत पीछे, बल्कि नीचे, चला गया था। उसके मुख पर भी आज एक नया निखार आ गया था, ऐसा राजीव को लगा। पर कुल मिलाकर उसके व्यक्तित्व की सहज शालीन अभिव्यक्ति मे उस कृत्रिम सजावट से कोई कमी आने के बजाय वह और अधिक परिस्फुट हो उठी थी।

प्रमीला और कृष्णा जी एक कौच पर बैठी थीं और विजय उन्हीं की बगल में एक सोफा पर।

"तुम ऐसे भगे कि कही तुम्हारा पता ही नहीं लगा।" विजय ने कहा। "मैंने सोचा था कि मैं तुम्हें 'कार' मे पहुँचा दूँगा, पर फिर तुम कहीं रास्ते में भी नहीं दिखायी दिये। कहाँ गायब हो गये थे?"

"तुमने चाय नहीं पिलायी, इसलिए चाय के चक्कर मे मैं बाहर निकला था। पर सब जेबें टटोलने पर भी एक पैसा न मिला। लाचार लौट आना पड़ा।" कहकर राजीव एक कुर्सी पर बैठ गया।

प्रमीला ने कहा—"चाय की आशा करके आप गये थे माथुर साहब के यहाँ? मित्र होकर भी आपने उनके साथ इतने बड़े अन्याय की बात सोची, यह आश्चर्य ही है। आपको मालूम होना चाहिए कि कई आर्थिक परेशानियों के कारण माथुर साहब ने अपने यहाँ पानी का नल तक कटवा डाला है। क्यों फजूल में आवश्यकता से अधिक पानी बहाकर म्युनिसिपैलिटी का नुकसान किया जाय? अपने किरायेदार के नल से ही आप पानी पीते है। इसलिये आपको प्यास लगी होती तो पानी तक न मिलता, और आप आशा रखते थे चाय की!"

राजीव आश्चर्य से प्रमीला की ओर देख रहा था। आज दिन में उसने प्रमीला के जो व्यंग सुने थे उन्हीं से वह चक्कर में पड़ा हुआ था। जब विजय ने अपने भावी वैवाहिक बन्धन की बात उसे बतायी थी तब उस नयी सूचना के प्रकाश मे प्रमीला की बातचीत का ढंग उसे और अधिक रहस्यमय लगने लगा था। और इस समय तो प्रमीला का डंक इतना तीखा था कि उसका मूल कहाँ पर हो सकता है, इसका अनुमान लगा पाना राजीव के लिए एकदम असंभव हो उठा। राजीव ने इस बात पर भी गौर किया कि प्रमीला की बात समाप्त होते न होते कृष्णा जी ने आँखे तरेर कर संकेत से उसे डाँटा। पर स्पष्ट ही उनके

सांकेतिक निषेध का कोई प्रभाव प्रमीला पर नहीं पड़ा। राजीव के मन में विजय द्वारा दी गयी सूचना की सचाई पर संदेह होने लगा। फिर उसने सोचा कि कौन जान सकता है।

"मैं तुम्हारी इस सूचना के लिए तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, प्रमीला!" राजीव ने कहा। "विजय की सावधानी और समझदारी से मैं छुटपन से ही परिचित हूँ। अब वह सावधानी स्वभावतः विकसित रूप मे सामने आ रही है।"

विजय बोला—"आर्थिक संकट के इस युग मे किसी भी चीज़ की बरबादी को—चाहे वह नल का पानी ही क्यो न हो—मैं घोर अपराध मानता हूँ। म्युनिसिपल टैक्स बचाने के लिए नही, बल्कि एक उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक की हैसियत से मैंने पानी का खर्च कम कर दिया है।" उसके स्वर में ढिठाई थी, संकोच नहीं। राजीव को प्रमीला द्वारा मध्यस्थ बनाया जाना उसे अच्छा नही लगा, शायद उसकी प्रतिक्रिया का यही कारण हो, नहीं तो राजीव देख चुका था कि दोपहर में वह प्रमीला के कड़े से कड़े व्यंग का उत्तर दबी हुई आवाज़ मे, बड़ी विनम्रता के साथ दे रहा था।

कृष्णा जी को भी राजीव का बीच मे बोलना अच्छा नहीं लग रहा था, यह उनकी रूखी—प्रायः आक्रोश-भरी—दृष्टि से स्पष्ट था।

"अच्छा राजीव बाबू," प्रमीला ने कहा—"आप तो इन्हे छुटपन से जानते है। आपको तो अवश्य ही पता होगा कि वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध इनके क्या विचार रहे है?"

प्रमीला के प्रश्न से सब लोग स्तंभित रह गये। कृष्णाजी के मुख पर भय की छाप स्पष्ट दिखाई देती थी।

"यह तुम क्या मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ रही हो, प्रमीला, और किससे?" अग्निदृष्टि से एक बार राजीव को भस्म करने का प्रयत्न करते हुए कृष्णा जी ने प्रमीला से कहा।

"मैं ठीक ही प्रश्न कर रही हूँ, माँ, और उपयुक्त व्यक्ति से ही पूछ रही हूँ। तुम चिंता न करो। हाँ, तो राजीव बाबू, बताइए।"

राजीव बड़े पसोपेश में पड़ गया। नवयौवन के प्रारम्भिक दिनों में दोनों मित्रों मे तरह-तरह के विषयो पर खुलकर बातें हुआ करती थीं और वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में भी स्वभावतः बहुत सी बातें होती रहती थीं। तब विजय इस सम्बन्ध मे जिस तरह के विचार प्रकट किया करता था वे उसे आज भी अच्छी तरह याद थे। पर उन सब बातों का यथार्थ प्रकाशन प्रमीला के आगे करना—जब कि दोनों के बीच स्थायी सम्बन्ध की बातें तय हो चुकी हैं—उचित होगा या नहीं, यह सोचकर वह क्षण-भर के लिये ठिठक गया। पर सहसा उसकी स्पष्टवादी दुष्ट प्रकृति जग उठी। प्रमीला की बातो में उसकी दिलचस्पी बढ़ने लगी थी और उसके प्रश्न का उत्तर देकर विजय को बनाने के सुख से वह वंचित नहीं होना चाहता था। उसके सुख का कारण केवल इतना ही नहीं था, वरन् एक खटमल-जातीय व्यक्ति के स्वभाव के उद्घाटन मे भी उसे रस मिलने लगा था।

उसने कहा—"जहाँ तक मुझे याद है, जब विजय की किशोर-अवस्था चल रही थी तब प्रारम्भ में वह विवाह के बन्धन मे

बँधने के पक्ष में नहीं था । अपने भावी जीवन की जो योजनाएँ वह तब बनाया करता था उनमें विदेश-भ्रमण, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्रों मे प्रवेश, मास्को यात्रा, सोवियट जीवन का अध्ययन और इसी तरह की दूसरी बातें सम्मिलित थीं । कम्यूनिस्ट क्रांतिकारी बनने का स्वप्न भी तब यह देखा करता था । पर उन सारी योजनाओं में विवाह के लिये कहीं कोई स्थान नहीं था···"

प्रमीला इस बार अकृत्रिम उत्सुकता से राजीव की ओर देख रही थी । बीच मे एक आध बार आधी दृष्टि से विजय की ओर भी देख लेती थी ।

"तुम गलत बात कहते हो," बीच ही में राजीव को टोकते हुए विजय ने कहा । नपुंसक खीझ से उसका स्वर काँप रहा था । "वैवाहिक बन्धन के विरुद्ध मैं कभी नहीं रहा हूँ·· ·"

"यही बात तो मैं भी बताने जा रहा हूँ, " राजीव बोला । "तुम घबराते क्यों हो, पहले बात तो पूरी होने दो ।" और फिर प्रमीला की ओर देखकर उसने कहा—"हाँ, तो मैं कह रहा था कि जब तक कम्यूनिस्ट क्रान्तिकारी बनने का इसका स्वप्न रहा तब तक कम्यूनिज्म के सिवा और किसी दूसरी बात की चर्चा वह नहीं चलने देता था । पर यह स्वप्न अधिक समय तक नहीं टिक पाया । अचानक एक दिन इसका रूप मैंने बदला हुआ पाया । कम्यूनिस्ट गंभीरता के स्थान में इसके मुँह पर एक रोमांटिक चेतना झलक रही थी और आँखें एक मीठी, रसीली छाया से डबडबा रही थीं । मैंने पूछा—'मित्र, आज अकस्मात्

इस परिवर्तन का क्या कारण है ?' बोला—'मै इस निष्कर्ष पर पहुँच रहा हूँ कि जीवन की सार्थकता यदि कहीं है तो दो हृदयो के मधुर मिलन में ।' मैंने कहा—'बात तो तुमने बड़े मार्के की कही है, इसमे संदेह नहीं ।' इसके बाद उस दिन इसी विषय पर हम दोनो के बीच बहुत-सी बातें होती रही । दोनो ने अपने अपने काव्य-साहित्य सम्बन्धी ज्ञान की सारी गठरी खाली कर डाली । पर दूसरे ही दिन यह एक दूसरा ही रूप लेकर मेरे पास आया। मैंने पूछा—'कुशल तो है ?' बोला—'मित्र, मै आज सुबह बिस्तर पर लेटे-लेटे सोच रहा था कि दो हृदयो का मधुर मिलन निश्चय ही अच्छा है, पर तब जब उसके साथ ही पेट-पूजा का साधन भी हो ।' मैंने कहा—'यह बात भी तुमने पक्की कही । वास्तविकता तो यही है ।' उसके बाद उस दिन हम लोग काफी देर तक पेटपूजा पर ही वाद-विवाद करते रहे । तीसरे दिन मित्र जरा खुले । बोले—'यार, एक बात है । यदि जीवन मे एक ऐसी लड़की से विवाह की सुविधा हो जाय जिसका बाप पैसे वाला हो और जो अपने बाप की इकलौती लड़की हो तब पेटपूजा के झंझट से जीवन-भर के लिये छुट्टी मिल जाय ।' सुनकर मुझे हँसी आये बिना न रही·····"

"तुम्हे··· ··तुम्हे ठीक याद है, मैंने ऐसा कहा था ?" प्रायः हकलाते हुए विजय ने कहा । उसके चेहरे का रंग एकदम- उड़ गया था ।

"मुझे जैसा याद है, मैंने वैसा बता दिया है । जो विश्वास करना चाहे करे, न करना चाहे न करे ।" विजय की ओर न

देखकर, प्रमीला की ओर मुँह किये राजीव बोला।

"और दिल्लगी यह है", राजीव ने सिलसिला जारी रखते हुए कहा—' कि, संयोग से हो चाहे योजनानुसार हो, विजय का विवाह ठीक ऐसी ही लड़की से हुआ, जिसके पिता पैसे वाले थे और जो अपने पिता की एकमात्र सन्तान थी।"

प्रमीला स्तब्ध थी और कृष्णाजी हतप्रभ। सुनन्दा इस बीच कब कमरे से चली गयी थी इसका राजीव को पता न था।

प्रमीला की स्तब्धता देखकर राजीव को लगा कि उसे इस तरह की बातें नहीं कहनी चाहिये थीं। 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इस हितोपदेश से वह परिचित था, पर उससे जीवन में वह कभी लाभ उठा नहीं पाया। विशेष कर जब उस अप्रिय सत्य से किसी छद्मवेशी, हीन-प्रकृति व्यक्ति के वास्तविक रूप के उद्घाटन की सम्भावना वह देखता तब निश्चित रूप से उसके मुँह से खरी-खरी बातें निकल आतीं। सच्ची बात को व्यंग और परिहास के रंग मे घोलकर कहने की कला तो उसने कुछ ही दिनों से सीखी थी—कारावास से बाहर निकलने पर।

जो भी हो, अपनी स्पष्टवादिता से आज पहली बार उसके मन में तनिक ग्लानि की भावना उत्पन्न हुई। प्रमीला के मुख के भाव से यह स्पष्ट हो रहा था कि राजीव की बातों से उसके बहुत भीतर खरोंच लग गयी है। विजय के जीवन के पिछले विवाह के इतिहास से वह एकदम अपरिचित रही हो ऐसा राजीव नहीं मानता था। फिर भी इस समय उसकी स्मृति को उभाड़ना कहाँ तक उचित था यह प्रश्न अब उसके भीतर उठने लगा।

बीसवाँ परिच्छेद

कुछ क्षणों के लिये सारे कमरे का वातावरण अत्यन्त गंभीर हो उठा। सहसा प्रमीला उस स्तब्धता को भंग करती हुई बोल उठी—"आपने जो सूचना मुझे दी उसके लिये मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ, राजीव बाबू! इस सूचना से मैं किस हद तक लाभ उठा पाऊँगी, कुछ भी लाभ उठा पाऊँगी या नहीं, यह तो मैं स्वयं नहीं जानती, पर आप निश्चय ही धन्यवाद के पात्र है।" कहकर उसने एक विशेष अर्थ-भरी तिरछी दृष्टि से विजय की ओर देखा।

विजय की स्थिति विचित्र हो उठी थी। संभवतः उसे राजीव और प्रमीला दोनो के प्रति क्रोध भी आ रहा था और साथ ही कोई बात उसे जैसे भीतर ही भीतर दबा भी रही थी। वह बुरी तरह छटपटा रहा था, जैसे भागने का रास्ता खोज न पा रहा हो।

सहसा उसने बॉया हाथ आगे बढ़ाकर घड़ी पर दृष्टि डाली। 'ओह! साढ़े पॉच बज चुके हैं! बहुत देर हो गयी, एक आदमी से एक जरूरी काम के लिए मिलना था," कहकर वह उठ खड़ा हुआ और शिष्टाचार के रूप मे शून्य के प्रति एकबार दोनो हाथ जोड़कर वह सीधे दरवाजे से बाहर निकल गया।

"अरे माथुर साहब, अभी से कहॉ जा रहे हैं! बिना चाय पिये मैं आपको जाने न दूँगी," कहकर किसी ने गलियारे में उसे टोका। स्वर से राजीव समझ गया कि वह सुनन्दा है। उसे याद आया कि उसने आधे परिहास और आधे गंभीर रूप में चाय

की बात चलायी थी।

"चाय तो आपने अभी कुछ समय पहले पिलाई थी।", राजीव ने विजय को कहते सुना।

"तो क्या हुआ। दूसरी बार चाय भी आपको पीनी ही होगी। ऐसा हो नहीं सकता कि आप इस तरह गंभीर मुँह बनाये चल दें। चलिये, अन्दर।" यह सुनन्दा थी।

राजीव ने देखा विजय मुँह लटकाये फिर वापस चला आया और पीछे से एक ट्रे में प्याले और चाय का बड़ा बर्तन लिये हुए सुनन्दा ने भीतर प्रवेश किया। सुनन्दा के मुख पर अकपट प्रसन्नता—संभवतः विनोद—की एक अस्पष्ट झलक राजीव ने देखी। भीतर प्रवेश करते ही सुनन्दा ने उसी प्रसन्न मुद्रा मे, तिरछी—और संभवतः सांकेतिक—दृष्टि से एक बार राजीव की ओर देखा और फिर धीरे से चाय का ट्रे बीच में स्थित एक न-बहुत-बड़ी-न-बहुत छोटी मेज पर रख दिया।

राजीव ने देखा कि सुनन्दा के मुख के भाव से, चाय का ट्रे रखने के ढंग से, उसकी प्रत्येक गति से परिपूर्ण आत्म-विश्वास और अधिकार की भावना टपकती थी। स्पष्ट ही वह स्वयं अपने मन से, कृष्णा जी या और किसी के आदेश या सकेत की प्रतीक्षा किये बिना ही, कुछ ही समय के भीतर दूसरी बार (जैसा कि स्वयं उसी की बात से प्रकट हुआ था) सब को चाय पिलाने आई थी। क्या यह सम्भव था कि केवल राजीव को पिलाने के लिये ही उसने इतना आडंबर रचा था? कौन जाने! पर आज क्यो अपने बालो की बनावट, चेहरे की चिकनाहट और कपड़ो

की सजावट पर विशेष ध्यान दिया था ? आज क्या कोई खास बात थी ? या वह टहलने के लिये या किसी से मिलने के लिए कहीं बाहर जाने का विचार कर रही थी ?

सुनन्दा ने प्रत्येक प्याले मे चाय, भरकर एक-एक करके सबके हाथ मे दी। राजीव ने गौर किया कि कृष्णा जी ने मुँह प्रायः बिचकाकर प्याला लिया। पर सुनन्दा उसी शांत, स्निग्ध और मधुर भाव से मुसकराती रही।

विजय चाय पीते हुए बीच-बीच में आधी दृष्टि से प्रमीला की ओर देख लेता था, और प्रमीला का भी प्रायः यही हाल था। प्याला समाप्त करते ही विजय बड़ी तेजी से उठ खड़ा हुआ और खाली प्याला ट्रे पर रखकर बिना किसी की ओर हाथ जोड़े सीधे दरवाजे की ओर भगा। सुनंदा कहती रह गई कि "अभी कहाँ जाते हैं, दूसरा प्याला पीकर जाइए," पर विजय ने न कोई उत्तर दिया न पीछे की ओर मुड़ा।

विजय के चले जाने के बाद कमरे मे सन्नाटा छा गया। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं रह गया था जिसे बनाते हुए बातचीत का कुछ सुख उठाया जाय।

जब सब लोग दूसरा प्याला पी रहे थे तब सहसा प्रमीला ने कहा—"चलिये राजीव बाबू, हम लोगों को घुमा लाइए।"

कृष्णाजी तत्काल कुछ तमककर बोल उठीं—"अगर तुम्हे घूमने ही जाना था तो माथुर साहब से क्यो नहीं प्रस्ताव किया ? उनकी 'कार' में सुबीता रहता।"

"तुम्हारी बात भी कभी-कभी बड़ी अजीब होती है, माँ",

प्रमीला ने प्रायः डाँट बताते हुए कहा। "जान बूझकर तुम अन-जान सी बन जाती हो। तुमने सुना नहीं, आज दिन में जब माथुर साहब पेट्रोल का कूपन चुक जाने की बात बता रहे थे? एक बार वह घुमा चुके हैं, क्या उसी को तुम बहुत नहीं मानती हो?"

"पगली कहीं की!" लड़की की डाँट से कुछ नम्र होती हुई कृष्णा जी बोलीं—"अरे, उन्हे तो मोटर कहीं-न-कहीं ले ही जानी थी। तुम्हें भी घुमा लाते। कूपन चुक गये हों चाहे न चुके हों।"

"यह तुमने अच्छी कही। यहाँ से वह सीधे घर चले जायेंगे और फिर 'कार' को 'लाक' करके भीतर लेट रहेंगे। और अगर हम लोग भी उनके साथ चलते तो उन्हे न जाने कहाँ-कहाँ हमे घुमाना पड़ता, उसके बाद हम लोगों को घर वापस पहुँचाना पड़ता और तब जाकर अपने घर लौट पाते। इतने चक्कर से कितना पेट्रोल खर्च होता इसका हिसाब तुम क्या जानो। वही जान सकता है जिसके कूपन चुक गये हो।" यह कहती हुई प्रमीला ने एक ऐसे नाटकीय ढंग से अपना मुँह बना लिया था, जिसे देखकर सब लोग हँसे बिना न रह सके।

"हाँ, तो राजीव बाबू चलिएगा? मैं जुतवाऊँ गाड़ी?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा हो," एक बार प्रमीला की ओर और फिर कृष्णा जी की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखता हुआ राजीव बोला।

"अच्छी बात है। माँ, चलो, तुम भी तैयारी करो।"

सहसा सुनंदा, जो अभी तक खड़ी थी, बोल उठी—"मै भी चलूँगी।"

"मैं नही चलूँगी, प्रमीला," मुँह बिचकाते हुए और आक्रोश भरी दृष्टि से एक झलक सुनंदा को ओर देखकर कृष्णा जी ने कहा। "तुम लोग जाओ, मुझे घर पर एक जरूरी काम है।"

राजीव को यह समझने मे देर न लगी कि सुनंदा के प्रस्ताव के ही कारण कृष्णा जी ने न चलने का निश्चय किया है, अन्यथा वह अवश्य चलतीं। वह जानता था कि उन्हें घूमने-फिरने का शौक है। इसके अतिरिक्त, प्रमीला का साथ वह यो ही न छोड़तीं।

सुनंदा ने कृष्णा जी की ओर देखा ही नहीं—स्पष्ट ही जान-बूझकर। "तो मै तैयारी करूँ ?" एक बार प्रमीला की ओर और फिर राजीव की ओर देखकर उसने कहा।

"ज़रूर करो बुआ, और झट से तैयार हो लो। मैं गाड़ी के लिए कोचवान से कहती हूँ।" और प्रमीला तेजी से बाहर चली गई। कृष्णा जी अपनी अग्निदृष्टि को एक बार सुनंदा की ओर और फिर राजीव की ओर निक्षेप कर भीतर अपने कमरे की ओर चली गयी। रह गये राजीव और सुनंदा।

"देखे राजीव बाबू, आपने रंग ढंग ?" जिस ओर कृष्णा जी गई थीं उस ओर आँखो से इशारा करते हुए, दबी हुई आवाज़ मे सुनंदा ने कहा। उसके मुख पर से प्रसन्न भाव एकदम मिट चुका था और एक मर्मच्छेदी पीड़न का तीखापन व्यक्त होकर राजीव को काचने लगा था।

"सब देख रहा हूँ," बड़ी गंभीरता से, धीमे स्वर मे राजीव ने उत्तर दिया। "यही तो तुम्हारी अग्नि-परीक्षा है, सुनंदा! इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए बिना तुम एक पग भी आगे नही बढ़

पाओगी; जीवन के यथार्थ मूल्य को, कभी न आँक पाओगी। जिस विराट पथ की ओर मैंने आज दोपहर को तुम्हारा ध्यान आकर्षित किया था, जिस महान् कर्तव्य की ऊँची पहाड़ी चोटी की ओर संकेत किया था, उसे एक क्षण के लिये भी न बिसारना। चाहे उसके लिये तुम्हे कैसी ही शूल-वेदनाएँ, कैसी ही कठोर नरक-यातनाएँ क्यों न सहनी पड़ें, कैसी ही भीषण आँधियों का सामना क्यों न करना पड़े, चट्टान की तरह अडिग रहने का प्रयत्न करती रहना। बस केवल इतना ही मै इस समय कहना काहता हूँ।" कहकर राजीव उठ खड़ा हुआ।

सुनंदा ने फिर एक बार क्षण-भर के लिए आँखें बंद कर ली थीं—जैसे राजीव के मुँह से निकली हुई उस महावाणी को अपने उमड़ते हुए आँसुओं के साथ घोल कर कण-कण करके अमृत के घूँट की तरह पी जाना चाहती हो—अपनी डिगती हुई आत्मा मे फिर एक बार नयी चेतना भरने के लिए। उसके बाद वह शांत, गभीर, किंतु आत्मार्पण-सूचक दृष्टि से राजीव को ओर देखकर चली गयी। राजीव पश्चिम की ओर वाले बरामदे मे जाकर टहलने लगा।

बच्चों को भी ख़बर लग गयी थी कि बुआ, जीजी और राजीव बाबू घूमने जा रहे है। वे बुआ के पास दौड़े आये और साथ चलने का आग्रह करने लगे। सुनंदा ने बड़ी फुरती से दोनों के कपड़े बदले, बाल ठीक किये, क्रीम पाउडर से उनका मुख चमकाया और दोनों को लेकर बाहर जा पहुँची जहाँ गाड़ी जुत रही थी। प्रमीला भी वहीं खड़ी थी।

"इन्हें कहाँ ले जा रही हो ?" प्रमीला ने तनिक खीझ कर कहा।

"ये भी चलेंगे घूमने, क्यों रानी ?" जानकी को गोद में लेकर उसका मुँह चूमती हुई और आँखों में सरस स्निग्धता झलकाती हुई सुनन्दा बोली।

"अम भी तलेंगे।" जानकी अधिकार भरे स्वर मे बोली।

"अम भी तलेंगे।" उसकी नकल उतारते हुए प्रमीला ने कहा—"क्या तलोगी, अपना सिर ?"

"तुम्हारा छिल।" जानकी ने तत्काल जबाव दिया।

प्रमीला और सुनन्दा दोनों खिलखिला उठीं।

"राजीव बाबू, आइये, गाड़ी तैयार है।" प्रमीला ने पुकारा।

राजीव चला आया। राजीव और शीतल छोटी वाली सीट पर बैठे और जानकी को गोद मे लिये हुए सुनन्दा और प्रमीला सामने वाली बड़ी सीट पर। गाड़ी चल पड़ी। राजीव कुछ क्षणों तक मौन दृष्टि से सुनन्दा की ओर एकटक देखता रहा। सुनन्दा चंचल जानकी को गिरने से बचाने की चेष्टा मे व्यस्त थी। राजीव की दृष्टि का अनुसरण करती हुई प्रमीला की आँखें भी सुनन्दा के मुख की ओर केन्द्रित हुईं। इतनी देर तक उसका ध्यान ही जैसे उस तरफ नहीं गया था। वह भी मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखती रह गयी।

"बुआ, आज तुम सचमुच बहुत सुन्दर दिखायी देती हो। ढाका की इस नीली किनारी की साड़ी में तुम्हारा रूप जैसे निखर आया है।" बिना किसी व्यंग के, अकपट भाव से प्रमीला ने कहा।

सुनन्दा का ध्यान टूटा। वह कुछ चौंकती हुई सी प्रमीला की ओर देखने लगी। एक झलक राजीव की मौन प्रशंसा-भरी दृष्टि की ओर भी उसने देखा। क्षण-भर के लिये वह प्रमीला के मंतव्य से जैसे सकुचा गयी। पर तत्काल उसका सकुचाना स्नेहपूर्ण परिहास में बदल गया।

"दुत पगली!" उसने सस्नेह मुसकराते हुए कहा—"बुआ से इस तरह की बात कहते तुझे लाज नहीं लगती!"

"इसमे लाज की क्या बात है?" द्विविधाहीन प्रमीला बोली। "सुन्दर को सुन्दर कहने मे लाज लगनी चाहिये, यह कहाँ के दकियानूसी शास्त्र की बात तुम बता रही हो? क्यो राजीव बाबू, आप भी क्या इसमें कोई दोष मानते है?"

"मै तो इसमे कोई दोष नहीं मानता, बल्कि एक बहुत बड़ा गुण मानता हूँ। भले को भला बताना, स्वस्थ को स्वस्थ बताना, सुन्दर को सुन्दर कहना, यह तो स्वस्थ प्रकृति के लक्षण हैं। इसके अलावा सुनने वाले को भी अपने सम्बन्ध में अच्छी बातें सुनकर प्रसन्न ही होना चाहिये संकुचित नहीं।" कहते हुए राजीव ने सुनन्दा की ओर देखा। "भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः!' यह वैदिक प्रार्थना विशेष महत्त्व रखती है। वैदिक ऋषियो का दृष्टिकोण इसीलिये स्वस्थ है कि वे किसी 'कंप्लेक्स' में उलझे हुए नहीं रहते थे। झूठे शिष्टाचार के फेर में पड़कर वे न तो अपने या दूसरे के संबंध मे स्पष्ट बातें कहने मे हिचकते थे न स्पष्ट और सच्ची बातें सुनने से। अपनी सच्ची प्रशंसा सुनना उन्हे अच्छा लगता था, यद्यपि निंदा से भी वे नहीं डरते थे।"

"सुना बुआ, वैदिक ऋषियों का उपदेश और राजीव बाबू का मत?" प्रमीला ने आँखे नचाते हुए बड़े मीठे व्यंग के साथ कहा।

"अच्छा, तब तुम दोनों मिलकर, जी खोलकर मेरे रूप और गुणों की प्रशंसा करो। मैं अब से दोनों कान खोल कर सुनती रहूँगी।" सहज और मुक्त भाव से हँसती हुई सुनन्दा बोली।

हजरतगंज पहुँचने तक वे लोग इसी तरह हँसी-खुशी की बातें करते रहे। प्रमीला कभी राजीव को और कभी सुनन्दा को लक्ष्य करके मीठे परिहासपूर्ण व्यंग के छींटे कसती जाती थी। राजीव और सुनन्दा दोनो प्रसन्न भाव से उन छींटों को स्वीकार कर रहे थे। हजरतगंज पहुँचने पर गाड़ी खड़ी कर दी गयी। सब लोग उतर गये और प्रमीला के प्रस्तावों के अनुसार विभिन्न दुकानो का निरीक्षण करते हुए, बीच-बीच मे किसी दुकान के भीतर प्रवेश भी कर लेते थे। इस तरह चक्कर लगाने के बाद जब वे लोग लौटने लगे तब प्रमीला ने काफी हाउस में चलने का प्रस्ताव किया। सुनन्दा किसी होटल, रेस्तोराँ या चाय-घर में बैठने की आदी नहीं थी, यह जानते हुए भी आज प्रमीला ने यह विचित्र प्रस्ताव उसके आगे रखा। सुनन्दा टालने लगी, पर प्रमीला ने ऐसा बाल-हठ अख्तियार किया कि अन्त मे उसे मान लेना पड़ा।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

प्रमीला, सुनन्दा और राजीव के चले जाने के कुछ ही समय बाद उमाप्रसादजी की 'कार' भोंपू बजाती हुई आ पहुँची। आज

यह संयोग ही था कि वह शाम को जल्दी घर चले आये थे। 'कार' से उतरने के बाद जब वह भीतर गये तब इधर-उधर झाँकने पर भी किसी को न देखकर सीधे कृष्णाजी के कमरे की तरफ गये। कमरा भीतर से बन्द था। कुछ चिंतित होकर उमाप्रसादजी ने खटखटाना आरम्भ किया। किसी का उत्तर न मिलने पर उनकी चिंता कुछ और बढ़ी और वह फिर अपेक्षाकृत तीव्रता से खटखटाने लगे।

काफी देर बाद भीतर से कृष्णाजी का स्वर सुनायी दिया—"कौन है?"

स्वर मे कुछ कड़ाई का अनुभव करके उमाप्रसादजी यह सोचकर मन ही मन पछताने लगे कि उन्होंने नाहक, न जाने किस मूर्खतापूर्ण तरङ्गवश, क्लब जाने का इरादा छोड़ दिया और 'सुनहरी संध्या' नष्ट कर डाली। वहाँ मित्रों के बीच में बैठकर सिगार का धुआँ उड़ाते हुए, मनोरञ्जक विषयो पर गपशप करते हुए 'ब्रिज' खेलते। और 'रबर' पर 'रबर' समाप्त करते हुए घंटो का समय बेमालूम कट जाता। घर के रंग-ढंग देखते हुए तो लगता है कि एक-एक मिनट एक-एक घंटे के बराबर दुर्वध्य साबित होगा। अपनी श्रीमती जी के आगे वह, न जाने क्यो, सब समय अपने को मन-ही-मन 'अपराधी' अनुभव करते थे, इसलिए उनसे बहुत डरते भी थे। चौबीस घंटो मे जब कभी एक-आध बार भेंट हो जाती तो भरसक कतराते फिरते, और जब निरुपाय अवस्था मे पकड़ लिये जाते तब उनकी कड़ी-कड़ी बातो के उत्तर में भरसक मीठी और प्यारी बातें कहने का प्रयत्न करते रहते।

बेचारे सक्सेनाजी के लिए दोनो तरफ से मरण था । जिस दिन श्रीमतीजी उनसे प्रसन्न रहतीं उस दिन आसानी से उनसे मुक्ति मिलना कठिन हो जाता और उनका राजनीतिक विषयों और सरकारी नीति पर गपशप और ताश के पत्तों से सम्बन्धित कार्यक्रम चौपट हो जाता । और जब वह अप्रसन्न रहतीं तब उनके 'कांशेंस' को खरोंच लगती कि अपनी विवाहिता पत्नी—सहधर्मिणी—का साथ वह नहीं दे पाते, वह गार्हस्थिक धंधों मे बँधी रहती है जब कि वह मुक्त जीवन का उपभोग कर रहे है।

"मैं हूँ, जरा खोलना।" सक्सेना जी ने कुछ दबी हुई जबान से कहा।

थोड़ी देर बाद किवाड़ खुला। कृष्णा जी ने एक बार अग्नि-दृष्टि से उनकी ओर देखा और फिर लेट गयीं । उमाप्रसादजी पहले ही से बिना देखे ही उनकी अग्निदृष्टि का अनुभव अपने मर्म मे कर रहे थे । और अब जब प्रत्यक्ष देखा तो भयभीत हो उठे । समझ गये कि मामला कुछ गोल है और कैकेयी का सनातन नाटक फिर से खेला जा रहा है । दशरथ का पार्ट खेलना उनके लिये अनिवार्य हो उठा है, यह जानकर वह पलॅग पर श्रीमती जी के सिरहाने बैठ गये और धीरे-धीरे उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"तबीअत क्या कुछ खराब है ? सिर मे दर्द हो रहा है ? एस्पिरीन खिलाऊँ ?"

श्रीमती जी ने एक झटके से उनका हाथ हटाकर करवट बदली। उमाप्रसाद जी एक ओर भयभीत हो रहे थे, दूसरी ओर क्रुद्ध हो रहे थे और तीसरी ओर चिन्तित हो उठे थे । पूर्व

अनुभवों से वह जानते थे कि आज वह लंबे—और अत्यन्त अप्रिय—चक्कर के फेर में पड़ गये हैं । पर चक्कर चाहे कितना ही लंबा क्यो न हो उसका निर्वाह अंत तक किये बिना निस्तार नहीं, यह भी वह जानते थे । फलतः श्रीमती जी द्वारा बार-बार प्रतिरोध किये जाने और पीछे की ओर धकेले जाने पर भी वह तरह-तरह की मीठी-मीठी बातों से उन्हें मनाते रहे । अंत मे बहुत मिन्नतों के बाद श्रीमती जी के मुँह से वाणी फूटी । पूर्ववत् पीठ फेरे हुए प्रायः झल्लाती हुई बोली—"घर के मालिक बने बैठे हैं और घर की तनिक भी सुध लेना पाप समझते है ।"

"मै तो बराबर तुमसे पूछता रहता हूँ कि स्थिति क्या है, किस चीज़ की कमी पड़ रही है, किसको क्या चाहिए, क्या-क्या कठिनाइयाँ तुम्हारे या किसी के सामने हैं·· ···" सक्सेना जी सन्धि का क्षीण संकेत पाते हुए कुछ इतमीनान से बोले ।

"घर की खबर अगर लेते रहते तो क्या कभी घर में इस तरह की बातें घटने पातीं ?" करवट बदलने की चेष्टा करती हुई कृष्णा जी बोलीं ।

"किस तरह की बातें ?" वास्तविक चिन्ता के स्वर में सक्सेना जी ने पूछा ।

"न जाने कहाँ के आवारे को घर में घुसा रखा है । बने हैं बड़े सेक्रेटरी ! पता नहीं, इतने बड़े दफ्तर का प्रबन्ध सरकार ऐसे नाकारा आदमियो के हाथो में क्यों दे देती है ! सरकार भी तो इन्हें इनके भाग्य से वैसी ही मिल गई है । स्वदेशी सरकार है न, अंगरेज सरकार होती तब आटे-दाल का भाव मालूम होता ।"

प्राय: फनफनाती हुई कृष्णा जी बोलीं।

सक्सेना जी को हँसी आ गई—अपनी श्रीमती की याददाश्त की भूल पर भी और उनकी बात के ढंग पर भी। अत्यन्त शांत भाव से, हँसने के-से स्वर में, धीरे से बोले—"मेरे रिटायर होने पर भी कांग्रेसी सरकार ने विशेष आग्रह से मुझे रोक रखा है। और अंगरेज़ों के जमाने मे भी स्वयं गवर्नर साहब मुझसे ज़रूरी बातों पर सलाह लिया करते थे, यह बात तुम इतनी जल्दी भूल जाओगी, ऐसी आशा मुझे नहीं थी।"

"बड़ा आया था कहीं का वह गवर्नर! वह भी तुम्हारी ही तरह निखट्टू रहा होगा। गवर्नर भी कौन—हैलेट! नंबरी लफंगा और शोहदा।" और वह फिर करवट बदलने के लिए हिली।

उनकी बात सुनकर सक्सेना जी अपनी उस परम दयनीय स्थिति में भी अट्टहास कर उठे। उसी अट्टहास के 'मूड' में श्रीमती जी को जोर से हिलाते हुए बोले—"अब उठ बैठो! तुम्हें किसी तरह हरा सकना सम्भव नहीं है। पहाड़ में एक पौदा होता है जिसे बिच्छू कहते हैं। तुम्हें याद होगा, उस साल मैंने नैनी-ताल में तुम्हें दिखाया था। उसका पत्ता दो तरफा जहरीला होता है। उलटी तरफ से उसे छूने से भी शरीर झनझना उठता है और सीधी तरफ़ से छूने से भी। तुमने भी आज वैसा ही रूप धर लिया है। उठो, तुम क्या कहने जा रही थीं, साफ-साफ शब्दों मे समझाओ, पहेली-बुझौवल न करो।"

"उस मुस्टंड की बात न पूछो," धीरे से उठकर बैठते हुए कृष्णा जी ने कहा। "इस बार जब से वह आया है तब से

तुम्हारी बहन के मिजाज़ ठिकाने पर नहीं है। चौबीसों घंटे दोनों के बीच खुसुर-खुसुर, हँसी-मजाक और ठहाकेबाजी चलती रहती है। मामला कहाँ तक बढ़ चुका है कौन जाने।" उनकी आँखें अँधेरे में काली बिल्ली की आँखो की तरह चमक रही थीं।

सक्सेना जी क्षण-भर के लिये बेवकूफो की तरह कृष्णा जी की ओर देखते रह गए। पहले तो उनकी समझ में न आया कि उनकी श्रीमती जी किस 'आवारे' और 'मुस्टंड' की बात कह रही हैं। शायद कोई नया नौकर आया होगा, उन्होने सोचा। इस बीच नये नौकर के रखे जाने की खबर उन्हे नही थी, पर उन्हे खबर न हुए बिना भी नौकर का रखा जा सकना, और हफ्तो तक उसके दर्शन तक उन्हे न हो सकना इस घर में पूर्णतया सम्भव है, यह वह जानते थे। पर जब कृष्णाजी ने सुनंदा का उल्लेख किया तब उन्हे समझने में देर न लगी कि किसके प्रति कृष्णा जी का सकेत है।

"तुम राजीव की बात कह रही हो ?" अत्यन्त चिन्तित भाव से और पीड़ित हृदय से उन्होंने पूछा।

"और नहीं तो क्या अपनी ?"

"वह इस तरह का आदमी है ही नहीं," इतमीनान के स्वर में सक्सेना जी ने कहा। "मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। वह न आवारा है न मुस्टंड। उसके समान सुशील और सच्चरित्र मैने आज तक दूसरा कोई देखा नहीं। यह ठीक है कि वह क्रांतिकारी रह चुका है और अँगरेज़ी राज के जमाने में उसकी कार्रवाइयाँ मुझे पसन्द न आयी थीं। पर जिस तरह का गन्दा

आरोप तुम उस पर लगा रही हो उससे वह सदा मुक्त रहा है। तुम्हे खबर ही नही है कि क्रांतिकारी का जीवन कैसे खतरो से भरा होता है, कैसी-कैसी विकट कठिनाइयों का सामना उसे करना पड़ता है। अगर उसमें चरित्र की दृढ़ता न हो तो वह कभी ऐसे जीवन को अपना नहीं सकता। उसके दृष्टिकोण से कोई सहमत हो या न हो, पर उसके उद्देश्य की सचाई और उसके आत्म-बलिदान की लगन पर किसी जानकार को सन्देह नहीं हो सकता। ऐसे होते हैं क्रांतिकारी। और उनमें राजीव तो हीरा है। यह ठीक है कि क्रांतिकारी प्रवृत्ति होने के कारण उसके विचार आज भी कभी-कभी उग्र लगते हैं और वह बड़ा ही स्पष्टवादी है—उसे तुम मुँहफट कह सकती हो—पर उसके सम्बन्ध मे इस तरह की बात मै कानो से सुनना भी पाप समझता हूँ जैसा सन्देह तुमने किया है।"

राजीव के चरित्र का वर्णन करते हुए उमाप्रसाद जी ऐसे आवेश में आ गये थे कि पत्नी के आगे जो भय-भावना एक क्षण पहले तक उन्हें दबाये हुए थी वह काफूर हो गई और अपने उत्तरदायित्वपूर्ण सरकारी पद की मर्यादा उनके भीतर पूर्ण रूप में जाग उठी।

कृष्णा जी ध्यान से पति के उद्‌गार सुन रही थीं। सक्सेना जी की बातों मे ऐसी दृढ़ता थी कि वह प्रभावित हुए बिना न रहीं। यद्यपि राजीव के चरित्र के सम्बन्ध मे अपनी धारणा बदलने की इच्छा उनकी नहीं होती थी, तथापि पति के दृढ़ विश्वास पर अविश्वास करना भी उनके लिए कठिन हो गया।

कुछ क्षणों तक वह प्रश्न-भरी दृष्टि से सक्सेना जी की ओर देखती रहीं। उसके बाद उसी बिगड़े हुए स्वर में बोलीं—"होगा तुम्हारा राजीव चरित्रवान! मुझे इस बात से क्या करना है। मैं केवल तुम्हारी बहन की बात कह रही थी। मैं तुमसे कहे देती हूँ कि बीबी के रंग-ढंग आजकल अच्छे नहीं हैं। एक दिन तुम्हें वह ऐसा धोखा देगी कि ··राजीव चाहे कैसा ही चरित्रवान क्यों न हो, पर किसी पराये मर्द के आगे मटक-मटककर चलना, वक्त-बेवक्त उसके आगे आँखें नचाना, आधी-आधी रात अकेले उसके कमरे में हँसी-ठठोली की बातें करना और ठहाके लगाना यह क्या किसी विधवा को सुहाता है? तुम्हीं बताओ! घर के नौकर-चाकर तक तरह-तरह की बातें करने लगे हैं। पास-पड़ोस में भी कानाफूसी होने लगी है। इतने बड़े घर की प्रतिष्ठा इस तरह मिट्टी में मिलने जा रही है और तुम आँखों पर पट्टी बाँधे और कानों में तेल डाले बैठे हो। तुम तो दिन-भर दफ्तर मे रहते हो और रात में क्लब में नाचते रहते हो, सहना तो चौबीसों घंटे मुझी को पड़ता है।" और कृष्णाजी की आँखें छलछला आयीं।

बाईसवाँ परिच्छेद

सक्सेना जी और सब कुछ सहन कर सकते थे, पर पत्नी के आँसुओं से वह बहुत घबरा उठते थे। उनके मुख पर अत्यन्त दयनीय भाव व्यक्त हो उठा। अपने एक हाथ की उँगलियों को दूसरे हाथ की उँगलियो मे फँसाते हुए, वह मुट्ठी बाँधे चुपचाप बैठे कुछ सोचते रहे। कृष्णा जी आँखें पोछती हुई गद्गद स्वर

में कहती रहीं—"और एक बात में नहीं, सभी बातों में बीबी के यही ढंग मैं देख रही हूँ। तुम माहवार उ—से (वह अभ्यास-वश पहले 'उन्हें' कहने जा रही थीं, पर क्रोध और आक्रोश ने जोर मारा) ५० रु० उसके अपने खर्च के लिये अलग दिया करते हो। पता नहीं उन रुपयों से वह क्या करती है। उनके ऊपर घर के खर्चे में से भी हर महीने सौ-सवा-सौ रुपये निश्चय ही बचा लेती होगी। बिलसिया सब जानती है, उसी ने मुझे बताया है। आज तक मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा। कभी यह शिकायत नहीं की कि तुम घर के खर्चे का कुल रुपया बीबी के हाथ में क्यों दे दिया करते हो, जबकि तुम्हारी घरवाली अभी जिन्दा है, मरी नहीं। मैं यह सोचती रही कि चलो, बीबी गिरस्ती के सभी कामों को ठीक से निभाना जानती है, हिसाब-किताब ठीक से रखती ही होगी, मुझे क्या करना है ! पर अब मुझे पता चला है कि वह कोई हिसाब नहीं रखती है और......"

सक्सेना जी इतनी देर तक चुपचाप सुनते चले आ रहे थे, पर कृष्णा जी का अन्तिम आरोप सुनकर वह रह न सके। बोले—"कृष्णा, तुम यह सरासर अन्याय कर रही हो! सुनंदा हर महीने के अन्त में मुझे पाई-पाई का हिसाब लिखा हुआ दे जाती है। बिलकुल साफ साफ, जिसमे कहीं किसी तरह की गड़बड़ी की कोई सम्भावना ही मुझे नहीं लगती।"

"पिछले महीने का हिसाब उसने तुम्हें दिया था ? तुम्हें ठीक याद है !" प्रायः तमक कर कृष्णा जी ने पूछा। "जब-जब वह हिसाब देती है तुम्हारे कागजों में से निकालकर मैं देख लिया

करती हूँ। हिसाब जैसा होता है वैसा ही होता है। गलत-सही आँकड़े मिलाकर वह तुम्हें अवश्य देती रही है। यह मैं भी स्वीकार करती हूँ। पर पिछले महीने से उसने वह भी बन्द कर दिया है—राजीव के आने के बाद से।"

सक्सेनाजी सिर खुजलाने लगे। कुछ देर सोचकर बोले—"ठीक है। मुझे याद आ गया। पिछले महीने जब वह हिसाब देने आई थी तब मैं दिल्ली जाने की तैयारी कर रहा था। उस समय तुम भी कमरे में नहीं थीं। मैंने ही उससे कहा था कि 'अभी इसे तुम्हीं अपने पास रखे रहो, अगली बार दोनो महीनो का हिसाब एक साथ दे देना।' वह वापस ले गयी थी। मुझे ठीक याद है।"

कृष्णा जी को फिर एक बार हतप्रभ होना पड़ा। उन्होंने सोचा था कि उन्होने एक ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण सुनन्दा की ईमानदारी के विरुद्ध खोज निकाला है जो रामबाण की तरह अचूक सिद्ध होगा, पर जब वह भी वास्तविकता के आगे व्यर्थ सिद्ध हो गया तब मन-ही-मन अकारण ही अपने पति के ऊपर और स्वयं अपने ऊपर क्रुद्ध उठीं।

"होगा," अत्यन्त अवज्ञा से उन्होंने कहा। "पर यह तुम कैसे कहते हो कि बीबी का दिया हुआ हिसाब राजा हरिश्चन्द्र का प्रमाण पत्र है?"

"मेरे पास कोई प्रमाण तो निश्चय ही नहीं है, पर मै विश्वास करता हूँ कि सुनंदा कभी गलत हिसाब नहीं देती होगी। उसका स्वभाव ही इस तरह का नहीं है।"

"बड़े आये हैं स्वभाव पहचानने वाले ! ऐसे त्रिकालदर्शी मुनि अकेले इस युग में तुम्हीं रह गये हो। महीने-महीने न जाने कितना रुपया चोरी चला जा रहा है, न जाने कितना कुप्रबन्ध के कारण व्यर्थ नष्ट हो रहा है । तुम बाल-बच्चे वाले आदमी हो, कुछ आगे की भी खबर रखते हो ? बिटिया का ब्याह सिर पर है, भवानी की पढ़ाई का खर्च अलग है, शीतल और जानकी की पढ़ाई में आगे न जाने कितना खर्चा करना पड़ेगा । और तुम हो कि रुपया पानी की तरह बहाये जा रहे हो ! साठ वर्ष के हो चले हो । मनुष्य के जीवन का क्या ठिकाना ! जाने कब क्या हो जाय ? क्या तुम्हारा इरादा मेरे बच्चो को भिखारी छोड़ जाने का है ?" कृष्णा जी की आत्मकरुणा फिर एक बार पूरे वेग से जग उठी और वह फफकने लगीं।

सक्सेना जी ने अपने दोनो हाथो से मुट्ठी बाँध कर उस पर अपना सिर रख लिया और कृष्णा जी का आवेग शान्त होने की प्रतीक्षा मे मौन, म्लान बैठे रहे।

पर फफकना बन्द न हुआ । धीरज खोकर सक्सेना जी बोले—"देखो कृष्णा, तुम्हारा मिजाज आज किसी कारण से अच्छा नहीं है। इसलिये तुम मुझ पर और दूसरो पर बड़े गलत आरोप लगा रही हो । तुम्हारे बच्चों को मैं कभी भिखारी नहीं छोड़ जाऊँगा, इस सम्बन्ध में तुम निश्चित रहो । मैंने प्रत्येक बच्चे की पढ़ाई और शादी की अलग-अलग व्यवस्था पहले ही से कर रखी है । क्योंकि, जैसा कि अभी तुमने बताया है, मैं साठ वर्ष का हो चला हूँ, (हालाँकि अभी सत्तावनवाँ ही चल

रहा है)। और किसी की जिन्दगी का क्या भरोसा! इधर कुछ समय से मुझे दिल की बीमारी हो गयी है। घर की अशान्ति ने इस बीमारी को और बढ़ा दिया है और किसी भी क्षण मेरा हार्ट फेल कर सकता है।"

"हें! यह तुम क्या कहते हो?" चौंककर कृष्णाजी ने चिन्ता के स्वर में कहा। "तुम्हारे दुश्मन का हार्ट फेल करे! मैंने तुम से कब क्या कहा? तुम आजकल दूध भी नहीं पीते हो। बीच में कुछ समय के लिये बादाम खाने का नियम तुमने बना लिया था, अब वह भी तोड़ दिया। दिन-भर दफ्तर में काम करते हो, रात में आराम करने की फ़ुर्सत नहीं पाते। इसका फल यही सब तो होगा। तुम्हें मेरी कसम अगर आज से तुम दिन-भर में कम से कम डेढ़ सेर दूध न पीओ और पाव-भर बादाम न खाओ!"

"अच्छा, अच्छा, वह देखा जायगा," अपने ब्रह्मास्त्र की सफलता से मन-ही-मन पुलकित होते हुए सक्सेना जी ने कहा। "पहले तुम स्वयं तो शान्त हो जाओ। दूध तो तुम्हे पीना चाहिये। तुम्हे थोड़ी-सी बात पर क्रोध आ जाया करता है। तुम्हे अपना मन और मस्तिष्क मजबूत बनाने की आवश्यकता है।" और सक्सेना साहब कृष्णा जी की पीठ पर हाथ रखकर उन्हे जैसे सांत्वना देने लगे।

"तुम ठीक कहते हो," एक सर्द आह भर कर कृष्णा जी बोलीं—"सचमुच आजकल मेरे दिमाग में कमजोरी आ गयी है। परिवार का खर्चा बढ़ते देखकर मैंने अपने लिये दूध कम कर दिया है, और उधर पीने वाले अपनी मात्रा बढ़ाये चले जा रहे है।"

'पीने वालों' से कृष्णा जी का संकेत स्पष्ट ही सुनन्दा और राजीव की ओर था, सक्सेना जी को यह बात समझने मे देर न लगी। पर वह चुप रहे। सुनन्दा के प्रति उनकी पत्नी का विद्वेष औचित्य की सीमा को किस हद तक लाँघ रहा है, यह देखते हुए भी वह अपने को निरुपाय अनुभव कर रहे थे। सुनंदा जितना दूध घर के लिये लेती थी उसका आधा स्वयं कृष्णा जी पी जाती थीं, एक चौथाई बच्चे पीते थे और शेष चौथाई चाय, काफी आदि में खर्च हो जाता था। सुनन्दा यदि चाहती भी तो अपने लिये कुछ न बचा पाती। रहा राजीव। सो वह चाय, काफी और पानी के सिवा कभी कुछ नहीं पीता था। यदि दूध उसे दिया भी जाता तो शायद वह स्वीकार न करता।

अँधेरा हो गया था। बिलसिया बहू की खबर पूछने और कमरे की बत्ती जलाने आयी। पर दोनों पति-पत्नी को एकान्त वार्तालाप मे मग्न देखकर वह मुसकराती हुई लौट चली। सक्सेना जी ने स्वयं उठकर बत्ती जला दी। कुछ देर तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। उसके बाद कृष्णा जी सहसा बोल उठीं—"तुम्हारा यह राजीव कितना बड़ा दुष्ट है, तुम जान नही सकते। जानते हो उसने आज क्या किया ?"

"क्या किया ?"

"माथुर साहब आये हुए थे, उनके सामने प्रमीला से लगा उनकी शिकायत करने। केवल इतना ही नहीं, प्रमीला को उनके विरुद्ध भड़काने भी लगा। बड़ी मुश्किल से एक अच्छा वर मिल पाया है, अब उसे भी यह दुष्ट हाथ से छीन लेगा, उसकी बातो

से ऐसा ही लगता है।

"देखो कृष्णा", सक्सेना जी ने अपने स्वर में यथासम्भव कोमलता भरते हुए कहा—"मैं एक बात कहना चाहता हूँ, अगर तुम उसका कोई दूसरा अर्थ न लगाओ, और बुरा न मानो तो!"

"कहते क्यों नहीं?"

"मै इस विवाह का तनिक भी विरोध नहीं करूँगा, इतना तुम जाने रहो। पर सच पूछो तो यह वर मुझे भी कतई पसन्द नही है। प्रमीला के योग्य वह किसी भी हालत मे, किसी भी दृष्टि से नहीं है।"

"क्यों, उनमे क्या ऐब है?" कृष्णाजी ने खीझ को भरसक दबाने का प्रयत्न करते हुए पूछा।

"ऐब एक या दो हों तो गिनाऊँ। पहली बात तो यह है कि वह प्रमीला से उम्र में काफ़ी बड़ा है, दूसरे वह बड़ा ही खसीस है। एक-एक पैसे के लिये अपनी जिदगी दाँव पर लगा सकता है। तीसरे वह विकट लोभी है। बिना किसी घृणित स्वार्थ को ध्यान में रखे वह किसी से विवाह करने को राजी नहीं हो सकता। चौथे, यह बात सर्वविदित है कि उसने अपनी पहली पत्नी को अर्थ के लोभ से विष देकर मार डाला था।"

"झूठ बात है!" अपने एक-एक शब्द पर पूरा जोर देते हुए कृष्णाजी ने कहा। "उनकी पत्नी की मृत्यु पेचिश की शिकायत से हुई थी। कांति ने स्वयं मरने के दो दिन पहले मुझसे कहा था कि उसे ऐक्यूट टाइप की डिसेंट्री हो गई है जिसकी वजह से आँतें कटती और फटती हुई सी मालूम होती है और पेट में सैकड़ों सुइयाँ

चुभने का सा दर्द मालूम होता है। डाक्टर ने भी यही बताया था ।"

"पर तुम्हे मालूम है कि एक बहुत बड़े डाक्टर ने 'प्वाइ-ज़निग का क्लीयर केस' बताया था और पोस्ट मार्टम पर जोर देना चाहा था। मामला बड़ा संगीन हो गया था, और मैंने और दूसरे प्रभावशाली व्यक्तियो ने बीच में पड़कर किसी तरह मामले को दबा दिया था।"

"यह सब उस डाक्टर की बदमाशी थी। वह इस झूठे प्रचार द्वारा एक अच्छी खासी रकम ऐंठना चाहता था। इसके अलावा माथुर साहब के दुश्मनो की संख्या बहुत बड़ी है। चूँकि बड़े-बड़े अफसरो और नेताओ की उन पर कृपा रहती है, इसलिए लोग उनसे जलते रहते है। ऐसे ही लोग उनकी शिकायतें करते फिरते है और उनके खिलाफ झूठी बाते फैलाते रहते है।"

"तो तुम्हारे कहने के अनुसार मैं भी उनसे जलता हूँ—इस-लिए कि उनपर बड़े-बड़े अफसरो और नेताओ की कृपादृष्टि रहती है!" कृष्णाजी के कहने के ढंग से कटकर सक्सेना जी ने कहा।

"तुम्हारी बात अलग है। तुम्हारे कानो में उनके दुश्मनो ने शिकायतें पहुँचाई है।"

"हो सकता है। पर तुम मुझे कितना ही बड़ा मूर्ख क्यो न समझो, कृष्णा, मेरी अपनी भी आँखें है। इसलिए मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, पूरी छान-बीन के बाद ही कहा है। वैसे मै पहले ही कह चुका हूँ कि अगर तुम लोग—प्रमीला और तुम—दोनो माथुर के पक्ष मे हो तो मै कोई विघ्न इस विवाह मे नही डालूँगा, यह विश्वास मै तुम्हें दिलाता हूँ।"

कृष्णाजी के मुख पर जो निराशा छाने लगी थी वह प्रसन्नता में बदलने लगी। "मुझे बड़ी खुशी हुई तुम्हारे इस आश्वासन से," उन्होंने कहा। "यक़ीन मानो, ऐसा योग्य दामाद तुम्हें दूसरा न मिलेगा। तुम कभी नहीं पछताओगे। मैं भी आदमी को पहचानती हूँ। पहली पत्नी के साथ उनका व्यवहार कैसा रहा और कैसा न रहा, इस बात पर बहस करना बेकार है। अब तुम जल्दी से जल्दी विवाह की तैयारियों में जुट जाओ। पंडित जी ने २५ जनवरी का लग्न बहुत अच्छा बताया है। वह टलने न पावे इसका ध्यान रखना।"

"ठीक है," मरे मन से सक्सेनाजी बोले—"मेरे हाथ का जो-जो काम है मुझे विस्तार से बता देना। इस समय मैं चलता हूँ। एक जगह जरूरी काम से जाना है।" कहकर सक्सेनाजी उठ खड़े हुए।

कृष्णाजी भी उठ खड़ी हुईं। सक्सेनाजी जब चलने को हुए तब अत्यंत स्नेहपूर्ण भाव से मुसकराते हुए कृष्णाजी ने कहा—"अच्छा, दो बातें मैं कई दिनों से जानना चाहती थी। एक तो यह है कि प्रोविडेंट फंड से तुम्हें कितना रुपया मिलेगा। और दूसरी बात, जो उससे भी जरूरी है, यह कि तुमने कै कंपनियों में बीमा कराया है और कितने का?'

सक्सेना साहब तनिक ठिठक कर खड़े हो गये और एक परीक्षक की-सी पैनी दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखते हुए बोले—"क्यों, आज अचानक यह जानने की उत्सुकता तुम्हें क्यों हो उठी?"

"यों ही," पति के प्रश्न करने के ढंग से कुछ झिझक कर कृष्णाजी ने कहा। "बात यह है कि इन सब बातों की जानकारी

घरवालों को पहले ही से रहना आवश्यक है। गृहस्थ-जीवन के नियम के खिलाफ बात मैंने नहीं पूछी। और फिर—भगवान न करे—कौन जाने किस घड़ी क्या स्थिति आ जाय!"

"ठीक!" अपनी तीखी दृष्टि को कृष्णाजी की आँखों पर गहराई मे गड़ाते हुए सक्सेनाजी ने कहा। लगता था जैसे वह क्षण-भर के लिये अनमने होकर न जाने किस गंभीर चिता मे मग्न हो गये है। कुछ क्षण वह कृष्णाजी की आँखो पर अपनी वह मर्मभेदी दृष्टि गड़ाये रहे। उसके बाद अनमने भाव से बोले—"अच्छी बात है। फिर कभी बताऊंगा।" और यह कह-कर चल दिये।

'कार' पर बैठकर उन्होने शोफर से क्लब की ओर चलने के लिए कहा। रास्ते-भर वह यही सोचते रहे कि विवाहित जीवन की यह कैसी विचित्र विडंबना है। उनकी पत्नी को उनके मरने की उतनी चिन्ता नही है जितनी इस बात की कि मरने पर वह पत्नी के लिए और बच्चो के लिए कितना रुपया जोड़े जा रहे है। उन्हे न दिल की बीमारी थी, न कोई और विशेष रोग। वह तो एक धुप्पल था जिसे उन्होने तुरुप के तौर पर पत्नी को काबू मे लाने के लिए छोड़ा था। वास्तव मे वह बड़े ही आशावादी थे और दीर्घ जीवन बिताने की आकांक्षा और आशा रखते थे। पर कृष्णाजी ने आज दो बार उनकी मृत्यु की ओर जो संकेत किया था वह उन्हे कतई प्रिय नही लगा था। पहली बात तो उन्होने यह कही थी कि "तुम अब साठ वर्ष के हो चले हो। क्या मेरे बच्चो को भिखारी छोड़ जाने का इरादा है?" दूसरी बात तब

कही थी जब बीमा की रकम जानने की इच्छा जताते हुए उन्होने उनके जीवन के अनिश्चय पर फिर जोर दिया था। सोचते-सोचते उमाप्रसाद जी का जी खट्टा हो गया। उस दिन वह देर तक मित्र-मंडली के बीच मे बैठ कर, ताश खेलते हुए तथा दूसरे उपायो से मन की वेदना बिसारने का प्रयत्न करते रहे।

तेईसवाँ परिच्छेद

सुनंदा तब से अक्सर मौका देखकर प्रमीला को इस बात के लिये उसकाती रहती कि वह उसे बाहर घुमा लाये। जब से वह लखनऊ आयी थी तब से बाहर निकलने के अवसर उसे इतने कम मिले थे कि वह उन दिनो को उँगलियो पर तारीख और सन् के साथ गिना सकती थी। पर इधर कुछ दिनो से एक ऐसी प्रतिक्रिया उसके भीतर जग उठी थी कि उसका जी चाहता था, दिन भर के कामो से छुट्टी पाकर कहीं बाहर घूमती-फिरती रहे। जिस दिन राजीव और प्रमीला के साथ वह घूमने निकली थी उस दिन उसने अपने मन को ऐसा हलका हुआ पाया था जैसे मनों बोझ उसके सिर पर से उतर गया हो। उसे लगा था जैसे वह १५ वर्ष छोटी हो गयी हो और बच्चो की तरह उछल-कूद करने के लिये उसका जी छटपटाने लगा था।

उसके भीतर इस नयी और निराली प्रवृत्ति को जगाने मे राजीव का हाथ कितना था यह वह स्वयं ठीक से नहीं जानती थी। पर इतना वह अवश्य जानती थी कि बिलसिया और भाभी के व्यंगों की प्रतिक्रिया निश्चित रूप से उसके स्वभाव के नये

परिवर्तन के लिये दायी है । क्योंकि उन निष्ठुर और मार्मिक व्यंगों की प्रारंभिक चोट से जब वह प्रबल प्रयत्नों के बाद सँभल उठी तब उसने जान बूझकर यह निश्चय कर लिया कि उन दोनो के आगे वह और अधिक ढीठ होकर, और अधिक अकड़ कर चलेगी, और राजीव बाबू के साथ और अधिक बोलेगी और हँसेगी । उसी प्रतिक्रिया से उसने उस दिन पहली बार यह आग्रह किया था कि वह भी घूमने चलेगी । पर प्रतिक्रिया से हो चाहे जिस किसी भी कारण से हो, जब वह घूमने निकल पड़ी तब उसे मुक्त जीवन का एक दूसरा ही रस मिलने लगा । छोटी से छोटी बात, साधारण से साधारण दृश्य भी उसे जीवन की एक अपूर्व रहस्यमयता से पूर्ण लगने लगा था । फुटपाथ पर व्यस्तता से चलने वाले आदमी, ताँगे और इक्के वालो का शोर, साइकिलो और रिक्शो का द्रुत यानायात, दुकानो के बाहर लगे हुए साइन-बोर्ड, उनके भीतर की सजावट, खोंचेवालो की लटकेबाजी, खरीदारो की दिलचस्पी, बसो पर चढ़ने और उनसे उतरने वाली स्त्रियों और बच्चो की हड़बड़ी, सभी दृश्य उसे अत्यंत मनोमोहक और जीवन के नये-नये रूपो पर प्रकाश डालते हुए लगे ।

इसलिये तब से बाहर निकलने और जीवन की उस चहल-पहल से अधिक से अधिक निकट से परिचित होने का चस्का-सा उसे लग गया । इतनी जल्दी और इतने साधारण से कारणो से उसके जीवन-संबंधी दृष्टिकोण मे ऐसा मूलगत परिवर्तन कैसे संभव हुआ यह सोचकर वह स्वयं हैरान थी । घरेलू बातो मे वह अब भी दिलचस्पी लेती थी, और भाभी जी तथा

बिलसिया के प्रतिदिन के चुभते हुए व्यंगो के बावजूद अब भी वह अपने इतने दिनों के नित्य-नैमित्तिक कार्यक्रम को उसी तरह निबाहती चली जाती थी। पर इस तरह के कामों मे अब उस तन्मयता, उस तत्परता और उस लगन का निपट अभाव पाया जाता था जिनमे इतने वर्षों तक कभी एक दिन के लिये भी ढीलापन नही आया था।

बाहर के जीवन से सुनन्दा की बढ़ती हुई दिलचस्पी देखकर प्रमीला को भी न जाने क्यो बड़ा रस मिलता था। और वह अवकाश पाने पर भरसक यह प्रयत्न करती रहती थी कि राजीव को भी अपने साथ पकड़ कर सुनन्दा को घुमा लाये। इस संबंध मे अपनी माॅ के विरोधी रुख से वह परिचित थी, तथापि उस विरोध की तनिक भी परवा करना वह आवश्यक नहीं समझी थी। पर यह सब होने पर भी प्रमीला को अधिक अवकाश नहीं मिल पाता था। विजय बाबू के साथ के लिये उसका मन समस्त विरोधी कारणों के बावजूद सब समय जैसे छटपटाता रहता था। अपने मन की इस प्रवृत्ति को स्वयं अपने-आप से अस्वीकृत करने की इच्छा होने पर भी वह उसकी उपेक्षा करने में असमर्थ थी। जब तक दिन में एक बार वह विजय को कसकर बनाने का अवकाश और सुविधा न पाती तब तक उसे शांति नहीं मिलती थी। उस विचित्र कंजूस के प्रति, जो निपट एकाकी ज़ीवन बिता रहा था, उसके मन मे एक विचित्र भावना घर किये हुए थी, जिसमें वह स्वयं कभी-कभी परस्पर-विरोधी भावो का सम्मिश्रण पाने लगती थी। कभी उसके प्रति प्रमीला के मन मे करुणा जग

उठती थी, कभी ममता और कभी घृणा। पर घृणा अक्सर उसकी परिहास-प्रवृत्ति के साथ मिलकर एकाकार हो जाती थी और एक प्रकार की प्रिय अनुभूति का ही रूप धारण कर लेती थी।

सुनन्दा भी यह सोचकर चकित रहती थी कि प्रमीला के समान प्रगतिशील और स्पष्टवादिनी लड़की किस रहस्यमय कारण से विजय माथुर की ओर आकर्षित हुई है और उससे विवाह करने के लिये राजी हो गयी है। क्योंकि यह तो एक प्रकार से निश्चित हो चुका था कि माघ मे उन दोनो का विवाह हो जायगा। और प्रमीला की सहमति के बिना किसी भी हालत मे विवाह नहीं हो सकता, यह बात सुनन्दा से छिपी नहीं थी। इस सम्बन्ध में बहुत सोचने पर उसे लगा कि प्रमीला का जन्म से ही विनोदी स्वभाव अपने जीवन के समस्त भावी सुख और सुविधाओं के मूल्य पर एक व्यावहारिक परिहास करने जा रहा है, क्योंकि जानबूझकर कोई समझदार लड़की माथुर से विवाह करे, यह परिहास नहीं तो क्या है। पर यह वह नही देख पा रही है कि उसका यह भीषण विनोद अन्त मे लौटकर उसी को परिहसित करके छोड़ेगा। पर कौन उसे समझाये! यह हठीली लड़की जहाँ एक बार किसी बात का निश्चय कर बैठती है फिर उससे उसे लौटाने की शक्ति स्वयं विधाता मे भी है या नहीं, इसमे संदेह है। सोच सोचकर सुनन्दा के मन मे भ्रांति के साथ एक अजीब बेचैनी समा जाती।

जो भी हो, ऐसे अवसर कम ही आ पाते थे जब प्रमीला सन्ध्या को सुनन्दा को अपने साथ घुमाने का अवकाश पाती थी।

विजय का साथ छोड़ना उसके लिये कठिन हो जाता था। फिर भी, जब भी अवकाश मिलता वह बड़ी प्रसन्नता से सुनन्दा को ले चलती, और सम्भव होने पर राजीव को भी।

पर पिछले कुछ दिनों से राजीव एक दूसरे ही चक्कर मे उलझा हुआ था। बेकारी से तंग आकर वह प्रतिदिन नौकरी की तलाश मे कही-न-कहीं एक-आध चक्कर अवश्य लगाता था। निपट विवशता होने पर भी वह भरसक ऐसी नौकरी चाहता था जिसमें उसे अपनी आत्मा को दबाना न पड़े। पहले तो नौकरी ही नहीं मिलती थी, और यदि कहीं अल्प वेतन पर कोई काम मिलने की संभावना दिखायी भी देती तो राजीव के लिए अपनी आत्मा का हनन करने या न करने का प्रश्न उठता। अन्त मे, बहुत दौड़-धूप के बाद एक फर्निचर मार्ट मे उसे बढ़ईगीरी का काम मिल गया। अंडमान मे उसे इस कला को अच्छी तरह सीखने का अवसर मिल गया था। थोड़ा-बहुत ज्ञान तो उसे पहले ही से था। दो रुपया रोज के हिसाब से मजूरी तय हो रही थी, बड़ी मुश्किल से कारखाने के मालिक, उसे शिक्षित और कार्यदक्ष देख-कर ढाई रुपया रोज पर राजी हुए। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि यदि राजीव 'ईमानदारी' से काम करेगा तो उसे सारे कारखाने का 'सुपरवाइजर' बना दिया जायगा और वेतन भी प्रायः दूना कर दिया जायगा। इतने ही को गनीमत जानकर राजीव ने उस कारखाने मे नियमित रूप से काम करना आरम्भ कर दिया था। एक तो उसकी कर्मठ प्रकृति अकर्मण्यता की तत्का-लीन स्थिति के लिए प्रतिक्षण उसे कोसा करती थी, दूसरे अपनी

बेकारी के कारण परिपूर्ण रूप से पराश्रित होने की ग्लानि उसका गला पकड़ रही थी। इसीलिए काम मिल जाने पर उसे यथेष्ट प्रसन्नता हुई।

यह तय हो चुका था कि रोज की मजूरी उसे रोज मिल जायगी। प्रतिदिन ढाई रुपया जेब में रखकर वह आठ आने के चने-चबेने से अपनी गुजर कर लेता और दो रुपया बचा लेता। सक्सेना जी के यहाँ उसने खाना छोड़ दिया, पर रहना अभी न छोड़ा। मकान की ऐसी विकट समस्या थी, जिसका समाधान उसके वश की बात नहीं थी।

सुनन्दा की समझ मे नही आता था कि राजीव के सिर पर यह क्या खब्त सवार हुआ! क्या उसके समान शिक्षित व्यक्ति के लिए केवल बढ़ईगीरी ही एक ऐसा पेशा रह गया था जिसके जरिये वह अपना पेट पाल सके? युग युग के मध्यवर्गीय संस्कारो के कारण उसके मन मे इस भावना से एक सिकुड़न सी पड़ने लगी, जिसे हटाने में उसने मन की संपूर्ण शक्ति, आत्मा का सारा बल लगा दिया।

नौकरी मिलने के पहले ही दिन जब राजीव दिन-भर के परिश्रम के बाद चना चबाते हुए प्रसन्न भाव से पैदल घर लौटा तब काफी देर हो चुकी थी। सुनन्दा अत्यन्त उत्सुकता से, एक-एक पल गिनती हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। राजीव के घर पहुँचते ही उसके हँसमुख पर एक अपूर्व तृप्ति, एक दीप्त उल्लास का भाव झलकते देखकर उसका छुतहा प्रभाव सुनन्दा के भी मन और मुख पर पड़े बिना न रहा। वह सोच रही थी राजीव

को तिरस्कृत करने की बात। पर जब वह एक ट्रे मे चाय लेकर उसके पास पहुँची तब एक शुभ्र शांत और निष्कलुष आनन्द और श्रद्धा से भरे भाव ने उसके हृदय के दोनों कूलों को बाढ़ की तरह छा दिया।

अपने मन की उस उच्छल पुलक को छिपाने का व्यर्थ प्रयास करती हुई सुनंदा कृत्रिम रोष से अपनी सुन्दर, पतली सी भौंहों को तानती हुई बोली—"आप बढ़ई क्या बन गये हैं, मारे घमंड के फूले नहीं समाते! इतने बड़े आदमी हो गये है कि अब हम लोगों के हाथ का खाना तक आपको नहीं भाता।"

"पर चाय अब भी भाती है!" कहकर राजीव ठहाका मारने ही जा रहा था कि पिछले कुछ दिनो के अनुभव की याद आ जाने से सँभल गया—केवल मुसकरा कर रह गया।

"अच्छा, सच बताइये राजीव बाबू, आपने यह नौकरी क्यो स्वीकार की? क्या इससे कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती थी?"

"नहीं, सुनन्दा नहीं!" चाय का प्याला ट्रे से उठाते हुए राजीव ने कहा। "इससे अच्छी का तो प्रश्न ही नहीं है, इससे बुरी नौकरी भी दुश्वार हो उठी थी। आजकल एक तो यो ही बेकारी फैली हुई है, तिस पर मेरी योग्यता वाले व्यक्ति को तो लोग इस स्वदेशी युग में भी निपट अयोग्य मानते है।"

"तब नौकरी की आवश्यकता ही अभी आपको क्या थी? जहाँ तक मैं जानती हूॅ, किसी का बंधन आपके ऊपर नहीं है। और अकेले आदमी को इस कदर परेशान होने की आवश्यकता

ही क्या है कि चाहे बढ़ई या राजमिस्त्री का ही काम क्यों न मिले, स्वीकार करना ही होगा। यहाँ रहकर भोजन और निवास के संबंध मे चिन्ता तो आपको होनी ही नही चाहिये।" कहते ही सुनन्दा मन-ही-मन ठिठक गई। उसे याद आया कि वह इस घर की कौन होती है जो अपनी ओर से राजीव को यह आश्वासन दे कि यहाँ रहने पर उसे भोजन और निवास की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये?

"तुम्हें भ्रम हुआ है नन्दा," अत्यन्त गम्भीर भाव से राजीव बोला—"बढ़ई का काम तुमने इतना हीन क्यों समझ लिया? बढ़ई न कोई चोरबाजारिया होता है न भ्रष्टाचारी। न उसे किसी को खुशामद से अपना काम निकालना होता है, न तिकड़म से, न छल-प्रपंच से। वह ईमानदारी से, अपने परिश्रम से, पसीने की कमाई खाता है। अन्याय, अत्याचार, ठगी या किसी दूसरी पाप-भावना से उसकी आत्मा कभी दबी नहीं रहती। इसलिये आज चारो ओर जब बेईमानी का राज है, भ्रष्टाचारियो की आत्मा से निकली हुई कालिख से सारा वातावरण काला हो उठा है, तब उसकी और उसके दूसरे भाइयो की आतमा का निर्मल प्रकाश अंधे समाज को कोढ़ की तरह लग सकता है, पर तुम्हारी तो आँखे है! तुम तो देख सकती हो नंदा, कि वह प्रकाश अंधगुहा के भीतर के किसी छिद्र से झाँकनेवाली वह आभा है जिसके सहारे अंधकार के सारे राज को शुभ्र प्रकाशमय बना दिया जा सकता है, बशर्ते समाज के भीतर सच्ची लगन उत्पन्न की जा सके और उसे उस प्रकाश का उपयोग करने की कला से परिचित कराया जा सके।"

"पर यही तो सबसे कठिन काम है, राजीव बाबू," सुनन्दा राजीव की गंभीरता के रंग में रँग कर बोली—"आपने जो शर्त लगाई है वही तो कठिन समस्या है। युग-युग में इतने महापुरुष हो गये है, जो आजीवन समाज का अंध-संस्कारो से घिरा हुआ रूढ़िगत दृष्टिकोण बदलने के लिये प्राणपण से प्रयत्न करते रहे है। समाज ने उन्हे गालियाँ भी दी है और उनका आदर भी किया है। पर उनके सारे उपदेश रूढ़िगत समाज के वज्र-कठोर चमड़े पर पानी की बूँदों की तरह छितरा कर रह गये हैं। उस चमड़े के भीतर अपनी अमृतवाणी की एक बूँद भी प्रविष्ट करा सकने मे वे असमर्थ हुए है। आपको क्या यह विश्वास है कि जिन कारणो से वे महापुरुष अपने विराट ध्येय की पूर्ति मे असफल हुए है उन कारणो के मूल बीजों को परखकर उन्हें सुधार कर आप एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकेंगे जिससे समाज के बाहर का वह कड़ा चमड़ा या तो झिल्ली की तरह फट जाये और उसके भीतर से एक ऐसा नया चमड़ा निकल आये जिसका अणु-अणु नये जीवन-रक्त के संचार से फड़कता हो और जिसका प्रत्येक रोम-कूप नयी जीवन-रस-धारा को अपने भीतर खींचकर उसे जज्ब कर लेने मे समर्थ हो ?"

राजीव चाय पीना छोड़कर भ्रांत दृष्टि से, अकपट आश्चर्य से सुनन्दा की ओर देखता रह गया। इतने दिनों तक सुनन्दा के इतने निकट रहने पर भी वह उसे कितना कम जान पाया था, इसका अनुभव उसे आज पहली बार हुआ। वह सुनन्दा की उन आँखों की ओर मंत्र-मुग्ध की तरह अपनी दृष्टि गड़ाये

रहा जिनमें सहसा अतिचेतन लोक की सी अलौकिक भाव-छाया घिर आयी थी। लगता था जैसे सुनन्दा के सम्पूर्ण अन्तर्जगत् मे किसी अज्ञात कारण से युगात की सी उथल-पुथल नच उठी है, और तल-व्यापी अजानित मथन-क्रिया के फल-स्वरूप उसकी चेतना की सतह के ऊपर शुभ्र फेन की एक ऐसी तह जम गयी है जो अकलुष, अमलिन चैतन्य की प्रतीक है।

पर ऊपर का वह अलौकिक फेन-पुञ्ज राजीव की पैनी दृष्टि से उस तूफानी हलचल को न छिपा सका, सौ-सौ तरङ्गों के उस च्छ्वसित और गर्जित कलरोल को न दबा सका, जो सुनन्दा के भीतर भीषण अशांति मचाये हुए था, जिसके लक्षण कुछ दिन पूर्व ही से प्रकट होने लगे थे, पर आज जो पूरे प्रलयंकर वेग से उमड़ उठा था।

"तुम ठीक कहती हो, नंदा," शांत भाव से राजीव बोला। "इस पृथ्वी पर युग युग मे क्रांतिद्रष्टा मनीषी अवतरित हुए है, युग-युग मे वे जड़ मोह से आच्छन्न मानव-जाति को ईमानदारी से किये जानेवाले परिश्रम का महत्त्व समझाते रहे है, और उस सच्चे परिश्रम के समुचित विकास और सन्तुलित नियोजन द्वारा अज्ञान से आवृत उस अंधकार का भेदन करने का उपाय सुझाते रहे है जिसने अकस्मात् आविर्भूत मानव-जगत् को अपनी घनी पर्तों से युग-युग से आवृत कर रखा है। पर आज तक मानव जिस अँधेरे मे था उसी अँधेरे में भटकता चला जा रहा है। निराशा के मूल कारण इस वज्र-सत्य के प्रति मैं अंधा नही हूँ। पर क्या तुम यह चाहती हो कि इस प्रत्यक्ष अनुभूत

असफलता के कारण विश्व के सामूहिक कल्याण के प्रयत्नो से वर्तमान या भविष्य के युग-चेतागण विरत हो जायँ ? मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस धर्म का स्वल्पतम आचरण भी महत् भय से मुक्ति देने मे समर्थ है। प्रति युग मे यदि प्रति महापुरुष उसका अणु-मात्र अंश भी मानव-समाज के भीतर किसी सूक्ष्मतम छिद्र द्वारा भी प्रविष्ट कराने मे समर्थ होता है तो प्रत्यक्ष में चाहे उसका कोई विराट फल न दिखायी दे, अंत मे उन सब अणु-तत्त्वो का सम्मिलित प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। और फिर, प्रभाव पड़े या न पड़े, मैं उसी उद्देश्य से प्रेरित होकर अपने स्वल्पतम प्रयत्नो से कभी विरत न हूँगा। अपने उस कर्तव्य के प्रति सदा सजग रहूँगा जिसका निर्देशन मुझे जीवन के प्रचंड संघर्ष से चटख उठनेवाली ज्वालाओ से—अपने भीतर के परस्पर-विरोधी, मुक्ति की खोज मे एक दूसरे से टकरानेवाली, अंध किन्तु उद्दाम प्रवृत्तियों की परस्पर रगड़ से—उत्पन्न प्रकाश से प्राप्त हुआ है। बाहर के और भीतर के अच्छेद्य अंधकार मे मुक्तिपथ की जो झाँकी मुझे मिल गयी है उसे अब आकाश, भूमण्डल और पाताल-व्यापी निराशा के गाढ़े काले धुएँ के समान घनघोर बादल भी मिटाने में असमर्थ सिद्ध होगे। इसलिये मैं अपने सम्बन्ध मे अब पूर्ण रूप से निश्चिन्त और आश्वस्त हूँ। पर तुम...तुम ..."

राजीव ने सहसा अपना स्वर धीमा कर लिया। एक बार कमरे के बाहर दृष्टि फेरकर प्रायः फुसफुसाने के-से स्वर में वह मूर्तिमान ध्यान के समान निश्चल खड़ी सुनन्दा की ओर अगाध स्नेह-भरी आँखो से देखता हुआ बोला—"तुम्हारे भीतर नयी

नयी शंकाएँ, नये नये सन्देह उमड़ते चले जा रहे हैं, यह मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, नंदा! और किसी भी नयी चेतना के जगने—पाताल के अगम अंधकारमय लोक से ऊपर उभरने—की प्रारंभिक स्थिति मे ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक है। तुम्हारे भीतर भूकम्प की जो लहर सहसा उमड़ उठी है, उससे तुम्हारी अवचेतना का एक-एक स्वर भीषण विस्फोट के साथ फटता जा रहा है और उसमे भयंकर दरारें पड़ने से प्रति बार तुम्हे लगता होगा कि तुम अतल गर्त मे अब विलीन हुई तब विलीन हुई। पर जिस क्षण तुम यह निश्चित रूप से जान जाओगी कि वे दरारें तुम्हे लीलने के लिये नही, तुम्हारे भीतर के समस्त अवरोधो को हटा कर तुम्हारे लिये आत्यतिक मुक्ति का पथ निकालने के लिये अपनी विराट दाढ़ों को खोल रही है, वे विस्फोट तुम्हे भयभीत करने के लिये नही, बल्कि तुम्हारे निरन्तर अग्रसर होते रहने वाले मार्ग मे तुम्हारे आगे-आगे विजय-दुदुभी बजाने के लिये है उस क्षण से फिर तुम कही कोई भी अटक नही पाओगी और बिना रचमात्र संकोच या द्विविधा के महामार्ग की ओर बढ़ निकलोगी—अपने ध्रुव लक्ष्य को निर्मल आकाश मे उज्ज्वल शुक्र ग्रह की तरह सुस्पष्ट देखती हुई।......"

"बुआ!" भीतर अपने कमरे से भवानी ने आवाज़ दी।

सुनन्दा का ध्यान भंग हुआ। "आयी!" कहकर वह चाय के बर्तन को राजीव के प्याले पर दूसरी बार उँडेलने के लिये आगे बढ़ी। पर अभी आधा प्याला भरा था, यद्यपि चाय एकदम ठंढी हो चली थी। राजीव ने ठंढी चाय को एक घूँट मे

गटक लिया। सुनंदा ने फिर से प्याला भर दिया और फिर चाय के बर्तन सहित ट्रे को वापस ले गयी।

चौबीसवाँ परिच्छेद

भवानी के कमरे मे जाकर उसे उसकी माँग के अनुसार. एक प्याला चाय और देकर वह अपने कमरे मे चली गयी। अभ्यास-वश प्रतिदिन—बल्कि प्रति रात्रि—की तरह वह आज भी उमा-प्रसाद जी की प्रतीक्षा मे बैठी। पर आज उसे उस प्रतीक्षा मे तनिक भी उत्साह नहीं मिल रहा था। लग रहा था कि वह सारा घरेलू कर्तव्य-कर्म व्यर्थ है, उसके उस सारे त्याग और सेवा-परायणता की कोई उपयोगिता नहीं है। उस पर जितना महत्त्व आरोपित करके वह इतने वर्षो तक अपने भीतर से प्रचंड इच्छा-शक्ति उभाड़कर, बिना किसी बाहरी फल की प्राप्ति की आशा से, स्वान्तःसुखाय उसे निभाती चली आ रही थी वह अब उसे एकदम निरर्थक और निस्सार लगने लगा था। उसके घेरे की संकीर्णता उसके आगे सुस्पष्ट होकर उसका दम घोटने लगी थी। घेरे की उस संकीर्णता और उद्देश्य की निरर्थकता के बोझ के बावजूद भी वह और अनिश्चित काल तक जानबूझ कर उसीमे बँधे रहना चाहती थी। आठ-नौ वर्षो का स्नेह-बन्धन वह अपने सारे नये ज्ञान के बावजूद यो ही छिन्न होने देना न चाहती थी। कुछ जटिल उलझनो से भरे अंध संस्कार उसके भीतर अभी तक शेष थे। पर इन शेप संस्करों के छिन्न होने के उपकरण—जैसे भाग्य की किसी अप्रति-हत शक्ति के वेग से—अपने-आप उसके आगे उपस्थित होते चले

जा रहे थे। कृष्णा जी और बिलसिया के घृणित और कटु व्यंग, किसी सान पर चढ़े हुए तीखे अस्त्र की तरह, एक-एक करके उन स्नेह-बन्धनों को अत्यन्त निर्ममता से काटते चले जा रहे थे जिनसे वह अपने को प्रबल प्रयत्नो के बाद भी नहीं छुड़ा पाती थी और जो उस परिवार से उसे पग-पग पर कस-कस कर बाँधे हुए थे।

भवानी से वह अँगरेज़ी का एक विचारपत्र अपने पढ़ने के लिए माँगकर ले आई थी, ताकि उमाप्रसाद जी के लौटने तक उसका समय कट जाय। उसे हाथ मे लेकर वह पलँग पर बैठकर पढ़ने लगी। पर एक अक्षर भी ठीक से पढ़ने से जैसे उसकी आँखो ने अस्वीकार कर दिया हो। पत्र की ओर कठपुतली की तरह देखते हुए उसे याद आया कि उसी सुबह को बिलसिया ने एक नयी बात उसके कानों मे --परम हितैषिणा से—डाल दी थी। बिलसिया ने कहा था--"बीबी, तुम मुझसे नाराज़ रहती हो, पर मेरे मन मे बराबर तुम्हारी भलाई का ध्यान रहता है। मेरा न्याय भगवान के यहाँ होगा। अभी उस दिन बड़े बाबू बहू जी से कह रहे थे कि तुमने अभी तक पिछले महीने का हिसाब उन्हे नहीं दिया है। हिसाब दिया था, पर उसमें गलतियाँ थी, उन्हे ठीक करने के लिए तुम्हे लौटा दिया था, पर फिर तुमने कभी दिखाया नही। क्या जानें बीबी, बाबू जो के मन मे किस कारण से शक पैदा हो गया है कि तुम हर महीने कुछ-न-कुछ···पर मै अपने मुँह से कहकर क्यो बुरी बनूँ। तुम समझदार हो, इसलिये इशारा काफी है। तुम भोली हो बीबी, इसलिये पीछे ही पीछे चलने वाली कैंची के करतबों को नहीं समझतीं·····"

सुनते ही सुनन्दा का सारा शरीर और मन एक बार पशु-स्वभाव-गत आतंक से सिहर उठा था। कुछ क्षणों के लिये उसके पाँव बरबस थर-थर काँपते रह गये, जैसे वे उसके अपने पाँव ही न हों। उसे लगा कि मानवीय नीचता और षड्चक्रीय प्रवृत्ति की कोई सीमा ही निर्धारित नहीं की जा सकती।

पर वह आतंक की अनुभूति अधिक समय तक स्थिर न रह पाई। पहले धक्के से सँभलते ही सुनन्दा ने बिलसिया को डाँट बताते हुए कहा—"तुमसे पूछा किसने था? इन सब बातों में तुम दाल-भात मे मूसरचंद की तरह बीच-बिचाव करनेवाली क्यो बन जाती हो? जाओ यहाँ से, अपना काम करो। खबरदार, अगर आज से घर के किसी भी आदमी के बारे मे इस तरह की कोई बात मुझसे कही तो!" और उसे एक प्रकार से बलपूर्वक बाहर ढकेल कर सुनन्दा ने भीतर से किवाड़ बन्द कर दिये थे। पर उसके चले जाने के बाद भी वह शांत नहीं हो पाई थी, बल्कि अशांति और अधिक तीव्रता से, भूत की तरह उसके सिर पर सवार हो गई थी। इस संबंध मे तो वह प्रायः निश्चिन्त थी कि उमाप्रसाद जी ने उस तरह की बात नहीं कही। पर साथ ही यह भी निश्चित था कि किसी-न-किसी के मुँह से इस तरह की बात जरूर ही निकली है। उसने भैया को पिछले महीने का हिसाब दिखाया था, पर उन्होंने दिल्ली जाने की हड़बड़ी मे उसे वापस करते हुए कहा था कि अगली बार दोनों महीनो का हिसाब एक साथ दे देना। बिलसिया ने स्पष्ट ही अपने से तोड़-मरोड़ कर इसी तथ्य का उल्लेख किया है। यदि कोई चर्चा ही न चलती

तो उसे उस तरह की बात कहने की प्रेरणा ही कैसे मिलती ।

"पर... ...यह मै कैसे कह सकती हूँ कि भैया को मेरी ईमानदारी के प्रति तनिक भी सन्देह नही है ? सच तो यह है कि हिसाब वापस करने की बात का पता उनके सिवा दूसरे किसी को था ही नही । यदि वह चर्चा न चलाते तो किसी को कैसे मालूम होता ? पर . . .मैने तो कोई भी कारण सन्देह के लिये कभी उन्हे नही दिया । ठीक है, बात वही है जो मै पहले ही सोच चुकी थी, यह सारा षड्यन्त्र भाभी और बिलसिया के सम्मिलित प्रयत्नो से चलाया जा रहा है । पर मैं इन गीदड़ी चालों के चक्कर मे फँसने को नही । ये बंदर-घुड़कियाँ मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती ।"

बिलसिया कोई साधारण नौकरानी नहीं थी, यह सुनन्दा जानती थी । उसकी उम्र पैतीस वर्ष के लगभग होगी । प्रायः बीस वर्ष से वह सक्सेना परिवार मे नौकरी करती आ रही थी । और उस परिवार की नस-नस से परिचित थी । वह जानती थी कि उस परिवार के भीतर कौन से ऐसे दुर्बल स्थान हैं जहाँ आसानी से आघात किया जा सकता है और कौन से छिद्र है जिनके द्वारा आर्थिक लाभ हो सकने की संभावना है । बीस वर्षो से वह धीरे-धीरे अपने जन्म-जात कूटनीतिक हथकंडो से सारे परिवार पर अपना सिक्का ऐसी मजबूती से जमा चुकी थी कि अब चाहने पर भी कोई उसे वहाँ की जमीन से उखाड़ कर फेंक नही सकता था । उमाप्रसाद जी तक उससे कुछ विशेष कारणों से डरते थे । कृष्णा जी तो एक प्रकार से उसके हाथ की

कठपुतली सी बन चुकी थीं। वह बड़ी ही अनुभवी, चतुर और नीति-कुशल थी। मानवीय मनोभावों का ऊपरी अध्ययन भी वह, बिना किसी पुस्तकगत ज्ञान के ही, अपनी सहज अन्तः-प्रेरणा द्वारा कर लेती थी। आज तक वह यदि कहीं पराजित हुई थी तो केवल सुनन्दा के अधिकार-क्षेत्र मे। जब सुनन्दा पहले पहल इस घर मे आयी थी तब बिलसिया की कार्य-दक्षता और कार्य-तत्परता देखकर दंग थी और उसको यह जानकर प्रसन्नता हुई थी कि परिवार मे उसे ऐसी सेवा-परायण नौकरानी मिल गयी है। बाद में धीरे-धीरे बिलसिया दूसरे रूप मे उसके सामने आने लगी और वह सावधान हो गयी। दो-एक बार उसने बिलसिया को चोरी करते हुए रँगे हाथो पकड़ लिया। बिलसिया के मायकेवाले गणेशगंज मे रहते थे। वह अक्सर रुपया पैसा और रसद वगैरह उनके पास तक पहुँचाया करती थी। सुनन्दा ने उसे सावधान करते हुए कहा कि उसे जिस चीज़ की जरूरत हो माँग लिया करे, इस तरह चुराना उचित नहीं। वह घर की पुरानी नौकरानी है, यदि वही चुराने लगेगी तो दूसरों का क्या भरोसा किया जा सकता है, आदि-आदि। बिलसिया कट गयी थी। तब से वह बीबी से जली-भुनी रहती, उसी का बदला अब वह विविध रूपो से लेने के लिये प्रयत्नशील थी। उस रोज वैसी जली-कटी बातें उसने सुनायी थीं और आज सुबह हिसाब की बात चलाकर बड़ी ही 'भलमनसाहत' से उसने सुनन्दा के कानों मे जहर डाल दिया था।

उसे सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हो रहा था कि

किस सफाई से बिलसिया आज उसका पत्र लेकर भाभी के 'करतबों' की ओर घृणित इंगित करने से बाज न आयी ! कैसे हथकंडे जानती है ! उसका सारे चक्रों का उद्देश्य उसके आगे स्पष्ट हो गया था। यह समझने मे उसे देर न लगी कि बिलसिया विविध छल-छद्मों द्वारा सारी गिरस्ती का प्रबंध उसके हाथ से छीन कर अपने हाथों मे लेना चाहती थी । क्योकि यह तो निश्चित था कि कृष्णा जी सुनन्दा के प्रति चाहे किसी हद तक खड्ग-हस्त क्यों न हो जावें, गिरस्ती के प्रबंध का भार कभी अपने ऊपर नहीं ले सकती थीं—इस काम के लिये वह स्वभाव से ही अयोग्य और अनिच्छुक थी। उनका आलसी शरीर और आलसी मन इस ओर उन्हे कभी प्रवृत्त नही होने दे सकते, यह बिलसिया जानती थी । इसलिये वह इस फेर मे थी कि सुनंदा कृष्णा जी के प्रति विरक्त हो जाय और कृष्णा जी सुनंदा से फिरंट हो जायँ।

+ + +

सुनंदा बहुत देर तक पलँग पर बैठी हुई विचार-पत्र हाथ मे लिये और बिना कुछ देखते हुए भी अपनी शून्य-दृष्टि को अक्षरों की ओर गड़ाये इसी तरह की बातें सोचती रही । जब थक गयी तब उसकी लेटने की इच्छा हुई । जानकी उसके पलँग पर गहरी नींद मे सोयी थी, जैसे किसी वरद हस्त की छत्रच्छाया मे निश्चित भाव से, परम आराम से आँखें मूँदे हुए हो। सुनंदा की अन्यमनस्कता भंग होने पर जब उसकी दृष्टि जानकी की भोली शिशु-छवि पर पड़ी तब वह कुछ देर तक उसी की ओर

भावमग्न होकर देखती रह गयी। उन दो बन्द, सुकुमार पलकों के भीतर न जाने किस मायालोक के इंद्रजाल का खेल चल रहा होगा। देख-देख कर सुनंदा का हृदय उमड़ आया और कब उसकी अपनी पलकें भीग उठीं, वह जान ही न पायी। जानकी प्रायः जन्म से ही बुआ की गोद में पली थी और भरसक बुआ के अंचल से एक क्षण के लिये भी वह छिन्न होना नहीं चाहती थी। उसका सोता हुआ मुँह चूमकर, आँखें पोंछकर वह लौटकर दूसरे पलँग की ओर देखने लगी, जिस पर शीतल अकेला सोया हुआ था—बुआ की निकटता का अनुभव अपनी अवचेतना में करता हुआ। उन दो बच्चों ने अपने स्नेह से, अपने भोले हृदय के अचेष्टित उच्छ्वास से उसके मानसिक वातावरण को चारों ओर से छाकर उसकी आँखों के आगे से विशाल संसार को ढक लिया था, जिस प्रकार एक अति लघु मेघ-खंड पृथ्वी पर से सारे सौरमंडल को ढक लेता है। इतने दिनों तक इस तरह की कल्पना ही उसके मन में नहीं आती थी, और वह सहज विश्वास से उतने ही को संपूर्ण संसार माने हुए थी। पर इधर कुछ दिनों से जो परिवर्तन उसके भीतर हो रहा था उसके फलस्वरूप वह अपने को एक ओर उन्हीं पुराने भावों के खूँटे में बँधी हुई पाती थी और दूसरी ओर उस खूँटे का परीक्षण भी किये बिना न रहती।

वह थक गयी थी कि और कुछ देर लेट जाना चाहती थी। बिना बत्ती बुझाये ही वह जब धीरे से लिहाफ के भीतर प्रवेश करती हुई जानकी की बगल में लेट गयी तब उसके गरम-गरम श्वासों का अनुभव अपने शरीर में करती हुई, कुछ देर तक उसके

सिर पर धीरे से हाथ फेरती रही। फिर उसने आँखें बन्द कर ली। जो तरह-तरह की विचित्र, विभ्रामक कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क मे अनचाहे जग रही थीं उनमें राजीव की शांत, प्रसन्न अलौकिक आदर्श-स्वप्न से भावाच्छन्न मूर्ति ज्ञात या अज्ञात—सुस्पष्ट या छायात्मक—रूप मे सब समय वर्तमान थी। उन्ही कल्पनाओं के बीच मे कब उसकी आँखे झप गई और कब वह सो गई यह वह न जान पायी। बीच-बीच मे उसकी निद्रा मे भी सजग मन साधारण सी-भी आहट पाकर चौक उठता था, और इस चिंता से कि भैया कहीं आ न गये हो! वह बैठना चाहती थी। पर ऐसी विकट निद्रालसता ने उसके कुछ दिनो से अस्वस्थ शरीर को घेर लिया था कि वह चाहने पर भी उठ नहीं पाती थी। अन्त मे बहुत देर बाद, बाहर जब वास्तव मे मोटर का भोंपू बजा तब वह हड़बड़ाती हुई उठ बैठी। उमाप्रसाद जी आ गये थे।

उठकर, खाना गरम करके थाली और कटोरों मे सजा कर जब वह उमाप्रसाद जी के पास ले गयी तब उन्होंने आज सच-मुच कुछ रुखाई का ही भाव जताया। बिना कुछ बोले उन्होंने एक पराठा किसी तरह खाया, बाकी लौटा दिया। राशन के जमाने के अन्न की वह बरबादी सुनंदा को खली, उसने कम से कम एक पराठा और खा लेने के लिये आग्रह भी किया। पर उमाप्रसाद जी ने कहा कि उनकी तबीअत ठीक नही है, कारण स्पष्ट ही दूसरा था। वह आज भी क्लब मे खान-पान मे कुछ गड़बड़ी कर आये थे। पर सुनन्दा को लगा कि बिलसिया की बात में बहुत कुछ सचाई हो सकती है। उसके भीतर किसी ने

जैसे फिर एक बार किसी तीखी चीज़ से खरोंच दिया हो। पर तत्काल उसने जी कड़ा कर लिया।

"भैया, चाय लाऊँ ?"

"नही, आज मै कई प्याले पी चुका हूँ। अब इस समय न चाय पीऊँगा न काफी।" सुनन्दा खिन्न मन लौट चली और बत्ती बुझाकर लेट गयी।

पचीसवाँ परिच्छेद

विवाह की तैयारियाँ पूरे जोरो पर होने लगी थी। सुनन्दा से किसी भी बात के सम्बन्ध मे कोई राय नहीं ली जा रही थी। कृष्णाजी, सक्सेनाजी, प्रमीला, बिलसिया और भवानी, इन पाँच व्यक्तियों की कानफरेन्स अकसर बैठती रहती थी। खर्चा कृष्णा जी ने स्वयं अपने हाथो मे ले लिया था, हालाँकि बिलसिया को उन्होंने, स्वभावतः, पूरा अधिकार दे दिया था। अकेली प्रमीला सुनन्दा की राय बीच-बीच मे ले लिया करती थी।

तरह-तरह के गहने बनवाये जा रहे थे और तरह-तरह के कपड़े खरीदे और सिलवाये जा रहे थे। बरातियो की दावत के लिये 'कंट्रोल' के कारण फलाहारी चीजे इकट्ठी की जा रही थीं। सुखाये हुए सिघाड़ो का एक बोरा मँगाया गया था और उन्हे साफ कराके पिसवाकर अलग रख दिया गया था। कृष्णाजी ने हड़बड़ी में दो बोरे आलू और एक बोरा मखाना भी बिलसिया से खरीदवा कर रखवा लिया था, हालाँकि इन चीजो की अभी कोई जल्दी नही थी। सुपारियाँ भी घर ही मे कटवायी

जा रही थीं। विवाह-मण्डप सजाने का प्रबन्ध स्वयं विजय को सौप दिया गया था। घर के नौकर-चाकर, पड़ोस के स्त्री-पुरुष सब एक अपूर्व उत्साह से विवाह-कार्य में सहयोग देते हुए व्यस्तता जता रहे थे। अकेली सुनन्दा ही ऐसी रह गयी थी जिसके हाथ मे कोई काम नही था।

न जाने कितने दिनो से यह सोचकर पुलक-भरी प्रसन्नता से उसका मन भर आया करता था कि प्रमीला के विवाह के अवसर पर वह स्वयं प्रायः चौबीसो घटे व्यस्त रहकर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार काम सौंपेगी और पूरे प्रयत्नो से ऐसा प्रबन्ध करेगी जिससे बरातियो के मन पर यह प्रभाव पड़े बिना न रहे कि किसी साधारण घर की साधारण लड़की का विवाह नहीं हुआ है, और देखकर स्वयं प्रमीला का भी हृदय गर्व और प्रसन्नता से फूल उठे। इस सम्बन्ध मे संदेह करने की कल्पना ही उसके मन मे कभी क्षण-भर के लिये भी नही उठी थी कि प्रबन्ध का सारा भार ही उसके हाथो से छीन लिया जायगा। उसे प्रबन्ध छिन जाने से भी उतना दुःख नहीं हुआ जितना इस बात से कि इस शुभ अवसर पर उसके हाथों में कोई काम ही नही रहा और प्रमीला के जीवन की इतनी बड़ी और महत्त्व-पूर्ण घटना में किसी प्रकार का सहयोग देने से उसे वंचित कर दिया गया। आज उसकी हालत नौकरो से भी बदतर है जब कि इतने दिनों तक वह एक प्रकार से पूरे घर की मालकिन थी! इतनी बड़ी पदच्युति उसकी हो गयी, इस बुरी तरह से उसकी तौहीन हुई, तथापि वह अभी तक पड़ी हुई है। क्यो? इसलिए

कि वह विवश है और उसकी असमर्थताओं का अन्त नहीं है।

सारे घर में एकमात्र प्रमीला ही ऐसी व्यक्ति थी जिसके मन मे उसके प्रति स्नेह के अतिरिक्त श्रद्धा भी थी। इस ख्याल से कि प्रमीला के मन मे किसी प्रकार की खिन्नता न आने पाये, सुनन्दा प्रत्येक काम के बीच में बिना बुलाये, अनचाहे अतिथि की तरह, खड़ी हो जाती, और कृष्णाजी और बिलसिया की निपट उपेक्षा, बल्कि आक्रोश के बावजूद, किसी न किसी काम मे बलपूर्वक अपना हाथ डाल ही लेती। पर बार-बार व्यंगो और कटूक्तियो द्वारा बाण-बिद्ध और तिरस्कृत किये जाने पर उसकी इच्छाशक्ति दब जाती और उत्साह टूट जाता, और वह उठकर अपने कमरे में वापस चली जाती।

एक दिन वह संध्या के समय इसी तरह बाण-बिद्ध होकर, भग्न-हृदय लेकर, छिन्न-लतिका की तरह अपने कमरे में फर्श पर पड़ी हुई थी। किवाड़ यों ही फेरे हुए थे, भीतर से चिटखनी बन्द नहीं थी।

सहसा दरवाजा खुला और प्रमीला ने भीतर प्रवेश किया। सुनन्दा को उस तरह पड़े देखकर वह क्षण-भर के लिए ठिठक कर खड़ी रह गई। फिर धीरे से आगे बढ़ी और नीचे फर्श पर ही सुनन्दा के एकदम निकट बैठ गयी।

"बुआ, मैं सब जानती हूँ।" सुनन्दा के बिखरे हुए बालों पर हाथ फेरती हुई प्रायः गद्‌गद कंठ से प्रमीला बोली।

सुनन्दा आँखें एकदम बन्द किये हुए थी। बिना देखे भी उसके अंतर के कानो ने यह पहचान लिया था कि कोमल पद-

चाप प्रमीला को छोड़कर दूसरे का नहीं हो सकता। इसलिये सहसा उसकी आवाज़ सुनकर वह चौंकी नहीं। पर चारों ओर के अत्यन्त क्रूर और निर्मम अवज्ञापूर्ण वातावरण के बीच में बहुत दिनों बाद एक स्निग्ध सहानुभूति-पूर्ण स्वर सुनकर वह रह न सकी। इतने दिनों से रुद्ध हृदय का बाँध थरहराकर टूट पड़ा और वह प्रमीला की गोद मे मुँह छिपाकर बे-अख्तियार, फफक-फफक कर, बिलख-बिलखकर, प्रायः बच्चों की तरह रोने लगी।

प्रमीला की आँखें भी भर आयी थीं। वह अनमने भाव से कभी सुनन्दा के बालो पर और कभी पीठ पर हाथ फेरती हुई मौन सांत्वना दे रही थी। जब तक सुनन्दा के हृदय का सारा भार न उतर गया, जब तक उसका सिसकना बंद न हुआ, तब तक प्रमीला केवल अपनी स्नेह-भरी सुकोमल उँगलियो के स्पर्श द्वारा उसके अन्तर्वासी से मूक भाषा मे बातें करती रही। जब उसने जाना कि सुनन्दा बहुत कुछ शांत हो गई और उसका बहुत दिनो से भरा हुआ हृदय हलका हो गया है तब वह धीरे से, अपने एक-एक शब्द में अमिश्रित स्नेहरस घोलती हुई बोली—"बुआ, मै सारे षड्यंत्र से परिचित हूँ। अभी कुछ ऐसे कारण है जिनकी वजह से मै कुछ बोल नहीं पाती हूँ, पर तुम्हारी समझदारी पर, तुम्हारे विशाल हृदय की उदारता पर मुझे पूरा विश्वास है। इन सब छोटी बुद्धिवाले लोगो को अपने अंतर से क्षमा कर दो बुआ! मुझे वचन दो कि इन्हें क्षमा कर दोगी! बोलो बुआ, क्षमा कर दोगी?"

बच्चों की-सी प्यारी बोली मे, प्रायः मचलती हुई, जब प्रमीला

अनुनय कर रही थी तब सुनन्दा का मातृ-हृदय उच्छ्वसित आवेग से फूल-फूल उठता था। उसका जी करता था कि प्रमीला के ऊपर अपने मन का सारा प्यार उसी क्षण उँडेल दे, पर एक ऐसी जड़ता उसके भीतर छा गयी थी कि लगता था जैसे सारा शरीर, सारा मन एकदम प्राणहीन, निःस्पन्द और निश्चेतन बन गया है। उसमे न उठने की शक्ति रह गयी थी न कुछ बोलने की। पर प्रमीला हठीली लड़की की तरह मचलती हुई कहती रही—"बोलो बुआ, बोलो! क्षमा कर दोगी?"

अंत मे सुनन्दा रह न सकी। धीरे से उठ बैठी। प्रमीला का गला दोनों हाथों से जकड़ कर उसके सिर को अपने माथे से स्थापित करती हुई गद्‌गद स्वर में बोली—"किसी ने मेरी कोई हानि नही की है, रानी! मैं किसी को क्षमा करने वाली कौन होती हूँ। इतना विश्वास तुम्हें दिलाती हूँ कि किसी के लिये मेरे मन मे कोई शिकायत नही है। और, अगर इस समय उसका कुछ लेश मेरे न चाहने पर भी वर्तमान हो तो जल्दी ही वह मिट जायगा। मेरे आँसू बहुत जल्दी उस मैल को साफ कर डालेंगे।"

"पर तुम्हें ये आँसू शोभा नहीं देते, बुआ! तुम आत्म-करुणा के बहुत ऊपर हो, यह मैं अच्छी तरह जान चुकी हूँ। आश्चर्य है कि तुम भी अत्यन्त साधारण नारियों की तरह आँसुओ से अपने मन के घावों को धोकर साफ करना चाहती हो। इन आँसुओ के बल पर तुम अपना दीर्घ, अनिश्चित भविष्य काटने की बात सोच रही हो। बुआ, सच पूछो तो आज मै तुमसे यही प्रार्थना करने आयी हूँ। क्षमा तो तुम अपने आप,

बिना मेरे अनुरोध के ही कर दोगी, इसकी चिन्ता मुझे नहीं है।"

सुनन्दा कुछ नही बोली, मौन गंभीर भाव से प्रमीला की बात को मन-ही-मन दुहराकर जैसे उसका ठीक-ठीक अर्थ समझने का प्रयत्न करती रही।

"मै चाहती हूँ कि तुम अपने पिछले लंबे वर्षों से संचित आँसुओ को हज़ारो वाट वाले हीटर के-से ताप से एकदम सुखा डालो बुआ," सुनन्दा की पीठ थपथपाती हुई प्रमीला बोली। पीठ वह अपने अज्ञात ही मे थपथपा रही थी, जैसे किसी बच्चे का उत्साह बढ़ाना चाहती हो। "और ऐसा तीव्र ताप अपने भीतर उत्पन्न कर लो जिससे तुम्हारा मन सूखकर इस कदर कड़ा हो जाय कि फिर किसी भी कारण से, किसी भी भावाकुल आवेग से, एक बूँद भी आँसू तुम्हारे भीतर उमड़ने न पाये। तभी तुम कठोर जीवन की यथार्थता को अपना पाओगी बुआ, नहीं तो जो बाँध तुम्हारा इस समय टूटा है उसके फलस्वरूप जीवन-व्यापी आँसुओ की ऐसी बाढ़ आ जायगी जो तुमको एकदम अकूल मे बहा ले जायगी। तुम्हारे लिए आँसुओ के कारण अनंत है और आगे भी असंख्य आयेंगे। इसीलिए अगर तुमको सच्चे अर्थो में जीवित रहना है तो अपने भीतर की बीज-शक्ति को उसकाते हुए ऐसी आग सुलगाओ जो आँसुओ के उन सब मूल कारणो को ही जलाकर सुखा डालेगी। उसके बाद उसी आग को नियंत्रित करके उससे अभाव के शीत से ग्रस्त असंख्य अनाथों, निराश्रितो और आत्म-विश्वास खोये हुए दीन-दुर्बल मानवों की आत्मा मे आवश्यक परिमाण से ताप

का संचार करती चली जाना। उठो बुआ, तुम्हारा जन्म इस प्रकार नितान्त असहाय अवस्था मे एक कुचले हुए क्षुद्र जीव की तरह मिट्टी पर पड़े रहने और भाग्य पर रोते रहने के लिए नहीं हुआ है।"

सुनन्दा अपना सिर उठाकर विस्मित उत्सुकता से प्रमीला की भावोन्माद-ग्रस्त सी आँखों की ओर एकटक देखने लगी थी। प्रमीला के सुन्दर मुख की उस समय की अभिव्यंजना ऐसी मोहक—बल्कि मादक—थी कि लगता था जैसे वह प्रचंड विद्युत-शक्ति से चुम्बकमय हो उठी हो। कहाँ से पायी उसने वह महा-शक्ति? सुनन्दा को लगा कि उस शक्ति के छुतहा प्रभाव से स्वयं उसके अपने भीतर की सारी जड़िमा, सारा अवसाद, सारी आत्म-करुणा छूमंतर हो गई है और उस निपट निर्जीवता और दयनीय दीनता के बदले जैसे वही हजारो वोल्टवाली बिजली संचारित हो गई है जिसकी ओर अभी प्रमीला ने उसका ध्यान खीचा था।

कुछ क्षणो तक दोनो एक दूसरी की आँखो की ओर, परस्पर चुम्बकाकर्षित की तरह देखती रहीं। उसके बाद सुनन्दा बोली—"पिछले जन्म मे तुम निश्चय ही राजीव बाबू की सगी बहन रही होगी, रानी! नही तो असंभव लगता है कि तुम्हारे मन मे भी ठीक उन्ही की तरह मेरे भीतर आग सुलगाने की बात रही है! राजीव बाबू की बातो ने मुझे कुछ जगा दिया था, पर फिर बीच-बीच मे मुझे ऐसी मूर्छा सी आती रही है कि उनकी जगाई हुई सारी नयी चेतना युग-युग की पुरानी मोहाच्छन्न चेतना क साथ मिलकर एकाकार होकर मुझे निपट आत्म-करुणा की स्याही से

गाढ़े काले अँधेरे मे डुबोती रही है। आज तुमने फिर मेरे खोये हुए आत्म-सम्मान को, मेरे दबे हुए व्यक्तित्व को उभाड़ दिया है, रानी। तुम बड़ी शक्तिशालिनी हो, राजीव बाबू की ही तरह ।" और सुनंदा ने फिर एक बार प्रमीला को दोनो बाँहो से जकड़ लिया।

जब दोनो का आवेग कुछ शांत हुआ तब प्रमीला ने अपने सहज स्निग्ध, सरस स्वर मे मधु घोलते हुए पूछा—"तुम अक्सर राजीव बाबू की प्रशंसा करती हो, बुआ, क्या वह सचमुच महान् है ?"

"हाँ रानी! वे बहुत महान् है। इतने महान् कि उनके मस्तिष्क की ऊँचाई तक साधारण मनुष्य की दृष्टि पहुँच ही नहीं पाती और साथ ही उनके हृदय की गहराई की थाह मिल सकना संभव नहीं है। वह जितने ही निर्मम है उतने ही दयालु भी, जितने ही सीमित लगते है उतने ही असीम भी।"

प्रमीला कुछ क्षणो तक अत्यन्त श्रद्धा भरी दृष्टि से सुनन्दा की ओर इस तरह देखती रही जैसे सुनन्दा के माध्यम से अपनी वह श्रद्धा राजीव तक पहुँचा देना चाहती हो। उसके बाद सहसा उसके सुन्दर सुडौल ओठो मे स्निग्ध मुसकान की एक पतली-सी रेखा खिच गई। आँखो को तनिक नचाती हुई बोली—"मेरा यह अनुमान ठीक ही निकला, बुआ, कि तुम दोनो एक दूसरे को अच्छी तरह जान चुके हो—राजीव बाबू और तुम। क्यो, है न ?"

उसकी उस मुसकान का छुतहा प्रभाव सुनन्दा पर भी पड़ा। उसके मुख पर भी बरबस मुसकान फूट पड़ी। घनघोर वर्षा के

बाद आकाश मे जमे रहने वाले बादल जैसे सहसा एक स्थल पर फट पड़े और उस दरार के भीतर से सूरज अपनी सहस्र किरणों से चारो ओर हेमंत ऋतु का मंद-मधुर ताप और स्निग्ध-उज्ज्वल प्रकाश बिखेरने लगा।

"तुम बड़ी दुष्ट हो !" सुनन्दा एक नवोढ़ा बाला की तरह आंतरिक भोलेपन से बोली—"तुम्हारा संकेत कब किस ओर रहता है, यह तुम्हारी बातो से जान पाना कठिन है।"

"नही, सच बताओ बुआ," प्रायः मचलते हुए प्रमीला ने आग्रह के स्वर में कहा—"तुम क्या राजीव बाबू को सचमुच चाहती हो ? मुझसे अपने मन की बात न छिपाओ बुआ, हाथ जोड़ती हूँ। बताओ ! मेरा अनुमान ठीक है न ?"

"दुत, पगली कही की !" सुनन्दा ने उसकी ठुड्डी पकड़ कर सस्नेह मुसकाते हुए कहा, "विधवा बुआ से इस तरह की बात पूछते तुम्हे लाज नहीं लगती ?"

"इसमें लाज की क्या बात है ? विधवा के क्या मन नही होता ? उसके हृदय के स्थान पर क्या सृष्टिकर्ता केवल पत्थर या लोहे का कोई यन्त्र बनाकर रख देता है ? तुम कोई मूर्ख तो हो नहीं कि तुम्हे इस तरह की बातें समझाने की आवश्यकता पड़े। सब कुछ समझती हुई भी क्यो नासमझ बन रही हो ? बता दो बुआ, एक बार अपने मुँह से स्वीकार कर लो कि मैं ठीक जान पायी हूँ !"

प्रमीला का यह स्नेह-हठ सुनन्दा को वास्तव में बड़ा विचित्र लगा। क्षण-भर के लिये वह द्विविधा में पड़ी रही। उसके बाद

मुसकराकर बोली—"तुम्हारी जैसी दुष्ट लड़की का अनुमान कभी गलत हो सकता है ?" सहसा सुनन्दा का मुख गंभीर हो आया। अनमनी दृष्टि से प्रमीला की वसंती रंग की साड़ी की ओर देखते हुए उसने कहा—"पर इस तरह का प्रश्न तुम्हे मुझसे करना नही चाहिये था, रानी ! मैने आज तक स्वयं अपने मन से भी यह बात छिपा रखी थी। मै बहुत दुःखी हूँ, हजारो बंधनों मे जकड़ी हुई हूँ, अकेली हूँ, असहाय हूँ। मुझे क्या इस तरह के विचार अपने मन मे लाने चाहिये !" और फिर उसके भीतर का आँसुओ का अक्षय स्रोत उमड़ आया।

"बुआ, तुम फिर आत्म-करुणा की उस तुच्छ भावुकता मे डूब चली। तुम न अकेली हो न असहाय ! एक बहुत बड़ा समाज तुम्हारे साथ है। तुम्हारे लिये एक भी बंधन नही है। जिन हजारो बधनो की बात तुम कह रही हो वे सब तुम्हारे मन के द्वारा रचे गये मकड़ी के जाले है जो अँधेरे मे हौवा की तरह लग रहे है। एक बार दृढ़ निश्चय करके, पूर्ण विश्वास के साथ खड़ी हो जाओ। देखोगी, तुम्हारा पथ रोकने वाला समस्त विश्व मे एक भी नहीं है। उठो बुआ, हिम्मत बाँधो !" कहकर प्रमीला सुनन्दा के दोनो हाथ पकड़ कर सचमुच उसे उठाने का प्रयत्न करने लगी।

अँधेरा हो चला था। प्रमीला उठ खड़ी हुई और सुनन्दा का दाहिना हाथ खींचती हुई बोली—"उठो बुआ, बाहर निकलो ! अँधेरे मे बैठे-बैठे, लेटे-लेटे अपने मन पर जंग न लगने दो !"

सुनन्दा धीरे से उठ खड़ी हुई। कमरे की बत्ती जलाकर ज्योंही

वह बाहर निकलने की तैयारी करने लगी त्योंही जानकी ने आकर उसका अंचल पकड़ लिया।

"माथुर साहब आये हैं," नौकर ने सूचना दी।

"तुम चलो प्रमीला, मैं अभी आती हूँ।" कहते हुए सुनन्दा ने जानकी को गोद मे ले लिया।

प्रमीला चली गयी।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

प्रमीला की बातो से सुनन्दा को बडा बल मिला था। तब से वह फिर बिना बुलाये, बिना किसी के चाहे ब्याह की तैयारियों से संबंधित सभी कामो मे घर के दूसरे लोगो का साथ देती रही। वह अपने मन से कोई एक काम अपने हाथ मे ले लेती थी, और बिना किसी की कोई राय लिये अपने ही ढंग से उसे करती चली जाती थी। कृष्णा जी, बिलसिया, या कोई नौकर, कोई भी उससे न तो किसी विषय पर राय लेता था न राय देता था। यह भी सुनन्दा के आगे स्पष्ट हो गया था कि उसका किसी भी काम मे हाथ बटाना किसी को पसंद नही है। कभी-कभी ऐसा होता कि वह यदि कोई काम कर रही होती तो बीच ही मे या तो स्वयं कृष्णा जी या बिलसिया, या कोई नौकर बिना कुछ बोले, आधे परिश्रम को बेकार करके उसे नये सिरे से, निजी ढंग से करने लग जाता। एक दिन वह, अपने मन से, भंडार के कमरे मे चीज़ों को स्वयं सजाकर करीने से रख रही थी और साथ ही एक नये आये हुए छोकरे को बताकर उससे भी वही काम करवा रही थी। इतने मे

बिलसिया प्रायः उफनती हुई-सी आयी और सुनन्दा की सारी सजावट मे उलट-पुलट करके, बड़बड़ाती हुई, शायद दीवार से, कहने लगी—"बार-बार मै चीज़ो को ठीक से सँभालकर रख जाती हूँ और बार-बार उन्हे तितर-बितर कर दिया जाता है। पता नही क्यो अपने मन से लोग चीज़ो मे हाथ लगाते है। कौन इनसे कहता है! बेशर्मी की भी हद हो गयी। कल से मैं यहाँ अपना एक अलग ताला लगाकर ताली अपने हाथ मे ले लिया करूँगी। पेठे की मिठाई का एक बंद कनिस्टर का कनिस्टर अभी से खतम कर दिया गया है। ऐसे चटोर-चटोरियो से तो भगवान ही बचाये। रसद निकाल-निकाल कर न जाने किसके घर पहुँचायी जा रही है। न जाने किस नये आदमी पर किरपा होने लगी है।"

सुनंदा पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध खड़ी रह गयी, शरीर का सारा रक्त जम कर जैसे बर्फ बन गया। वह तत्काल भडार घर के बाहर निकल जाना चाहती थी, पर पाँवों पर जैसे किसी ने कील ठोंक कर फर्श पर जमा दिया हो। जीभ जैसे सूखकर लकड़ी हो गयी थी। एक मिनट तक वह उसी अवस्था मे खड़ी रही। उसका सिर झनझन करने लगा। चक्कर खाकर गिरना ही चाहती थी कि प्रबल इच्छा शक्ति से उसने अपने को सँभाला। उसके बाद बिना एक शब्द भी बोले, वह लड़खड़ाते पाँवों से बाहर चली गयी।

अपने कमरे के दरवाजे पर पहुँची ही थी कि प्रमीला ने आकर टोका।

"तबीअत तो ठीक है, बुआ ?" उसका एकदम मुरझाया हुआ चेहरा देखकर प्रमीला ने पूछा।

"ठीक है," मुरझायी आवाज़ मे सुनंदा बोली।

"तो जल्दी तैयार हो जाओ। राजीव बाबू ठहरे हुए है।"

"कहाँ ? क्यों ?" पिछले क्षणो की भ्रांति को कंधे से झाड़ते हुए सुनंदा ने विस्मयभरे स्वर में पूछा।

"तुम पहले तैयार तो हो लो। और कोई खास तैयारी की आवश्यकता नहीं है। केवल एक शाल कंधे पर रख लो।"

सुनंदा ने फिर इसके आगे कोई प्रश्न नहीं किया। एक शाल उठाकर कंधे पर डाल लिया और प्रमीला के साथ बाहर निकल पड़ी। राजीव सचमुच बाहर फाटक पर खडा था। सुनंदा ने एक बार उसकी ओर गंभीर दृष्टि से देखा। फिर तत्काल आँखें फेर लीं। गाड़ी तैयार थी। प्रमीला ने सुनंदा का हाथ पकड़ कर कहा—"चलो बैठो।" वे दोनो एक सीट पर साथ-साथ बैठ गयीं। राजीव सामने वाली सीट पर अनमने भाव से, अपराधी की तरह बैठ गया। कुछ दिनों से उसने मकान बदल लिया था। कारखाने की बगल मे ही दो छोटे से कमरे उसे मिल गये थे। प्रायः एक सप्ताह के बाद आज वह उस बॅगले मे आया था। सुनन्दा के मुख के भाव से उसे यह पता चल गया था कि वह नाराज़ है। उसकी इस अप्रसन्नता के कारण का अनुमान लगाना कठिन नहीं था और वह उसके लिये मन-ही-मन अपने को अपराधी अनुभव कर रहा था।

जब गाड़ी चल दी तब प्रमीला ने मीठा ताना देते हुए

कहा—"राजीव बाबू, आप तो ऐसे मौन हैं जैसे भीगी बिल्ली। बात क्या है?"

"मौन अकेला मैं ही तो नहीं हूँ। कोई दूसरा भी है! उसी दूसरे व्यक्ति से कारण पूछ लो तो पता लग जायगा।"

"क्यों बुआ, बताओगी कारण?" दुष्टतापूर्ण मुसकान-भरी दृष्टि से सुनन्दा की ओर देखते हुए प्रमीला ने कहा।

सुनन्दा ने एक बार वही गंभीर और तीखी दृष्टि राजीव की ओर घुमाई। फिर आधी दृष्टि से प्रमीला की ओर और आधी से राजीव की ओर देखती हुई बोली—'जो व्यक्ति सात-सात दिन तक गायब रहकर एकबार यह देख जाने की भी आवश्यकता नहीं समझता कि कौन मौन है और कौन मुखर उसके प्रति अगर कोई मौनव्रत धारण करे तो इसमें कौन अपराध है?"

"बात यह हो गयी थी, प्रमीला," राजीव ने अपनी सफाई देते हुए कहा, "मैंने इधर काम और बढ़ा लिया था। दिन-भर कारखाने में काम करने के बाद मैंने एक 'ट्यूशन' भी स्वीकार कर लिया था। बी. ए. के एक लड़के को एक घंटे तक राजनीति और इतिहास पढ़ाने लगा था। कुछ रुपयों का लोभ था। अब एक दूसरा आदमी अपनी जगह पर ढूँढ कर मैंने पढ़ाने का काम छोड़ दिया है। और आज तो मैं कारखाने से भी छुट्टी लेकर आया हूँ। जाड़े के दिन इतने छोटे होते हैं कि कारखाने से लौटते-लौटते आधी रात मालूम होने लगती है। इसके बाद इतनी दूर आना, और फिर उतनी ही दूर पैदल वापस जाना, यह कोई विशेष सुविधा-जनक बात भी नहीं है।"

'लगन होने पर लोग रात-रात भर पहाड़ो और जंगलों के बीच पैदल चक्कर काटते रहे है, प्रमीला।" सुनन्दा ने राजीव की ओर कनखियों से देखते हुए कहा, "यहाँ तो शहर है और सड़कें साफ सुथरी और सीमेंट या कोलतार से पटी हुई हैं।"

"ठीक है, मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ," राजीव ने एक झलक तिरछी दृष्टि से सुनंदा की ओर देखते हुए कहा। "अब से ऐसी गलती नहीं होगी।"

'जो गलती हो चुकी है उसका परिहार नहीं हो सकता, प्रमीला, इसलिए कह दो कि इस बात की कोई चर्चा चलाना अब व्यर्थ है।"

और कोई समय होता तो प्रमीला को इस वार्तालाप पर हँसी छूटती। उसे मध्यस्थ बना कर उसकी ओट में दोनो ओर से उलाहने और सफाई की जो बातें हो रही थीं वे प्रकट मे बच्चो की खुट्टी से सम्बन्धित मान-अभिमान की तरह उसे लग रही थीं। पर उस प्रकट बाल नाटक के भीतर जो मार्मिक गंभीरता छिपी हुई थी उससे चूँकि प्रमीला अपरिचित नहीं थी, इसलिए वह शांत भाव से आंतरिक सहृदयता-पूर्ण गंभीरता से दोनो की बातें सुन रही थी। जब सुनन्दा ने कहा कि "जो गलती हो चुकी है उसका कोई परिहार नहीं हो सकता," तब वह रह न सकी। स्नेह-भरी खीझ के स्वर में बोली—"तुम भी अजब हठीली हो, बुआ! राजीव बाबू ने जो कारण बताये है, पहले तो उन्हीं से तुम्हें संतुष्ट हो जाना चाहिए था। उस पर जब उन्होने अपनी गलती स्वीकार करके उसके लिए क्षमा भी माँग ली है, तब भी तुम अपने हठ

पर अड़ी हो और टेढ़े-मेढ़े जवाब दिये चली जा रही हो। यह कहाँ का न्याय है ?"

उसकी खीझ पर सुनंदा को हँसी आ गयी। "अच्छा, तुम कहती हो तो मैं मान गयी, बस ?" और तत्काल उसका गंभीर आक्रोशपूर्ण भाव सहज स्निग्धता मे बदल गया। बस बार अपनी सहज, स्वाभाविक, मधुर दृष्टि से उसने राजीव की ओर देखा।

गाड़ी हजरतगंज की ओर बढ़ रही थी। हजरतगंज पहुँचने पर एक दुकान का साइनबोर्ड पढ़कर प्रमीला ने गाड़ी को रोकने का आदेश दिया। जब तीनो उतर गये तब उसने गाड़ी वाले को वापस चले जाने को कहा। उसे बता दिया कि ताँगे पर चली आयगी। प्रमीला की बात पर आपत्ति करने का साहस वर्षों के अनुभवी कोचवान में नहीं था। वह बिना एक शब्द कहे चुपचाप लौट गया।

प्रमीला के कहने पर राजीव और सुनन्दा ने भी उसके साथ दुकान के भीतर प्रवेश किया। राजीव ने देखा, दुकान मे पलंग के गद्दे, तकिये, पलँगपोश, दरी, कालीन आदि चीजें बिक रही थी। प्रमीला को किस चीज की आवश्यकता है, इसका कुछ भी अनुमान न वह लगा पाया न सुनन्दा। दोनो चुपचाप दर्शक के रूप मे एक कोने मे खड़े हो गये।

प्रमीला ने दो गद्दे, दो लिहाफ, दो तकिये, चार पलॅगपोश, दो दरियाँ, एक कालीन और दो होलडाल का आर्डर दिया। दुकान के एक आदमी ने उसे अपने मन की चीजें पसन्द कर लेने के लिये कहा। प्रमीला ने जल्दी-जल्दी सब चीजें पसन्द कर डालीं।

दो बड़े-बड़े बंडलो मे सब चीजें बॅधवा कर और दाम चुकाकर उसने कुछ समय तक उन्हे दुकान ही मे रखे रहने के लिये कहा।

राजीव ने प्रायः डरते-डरते पूछा—"ये सब चीजें किसके लिये खरीद रही हो ?

"बरातियो के लिये !" और एक विचित्र रहस्य-भरी दुष्टता-पूर्ण मुसकान उसकी ऑखो मे और ओठो के इर्द-गिर्द झलक गयी।

सुनन्दा किसी अज्ञात कारण से इस तरह घबरायी हुई थी कि उसके मुँह से कोई प्रश्न ही नही निकल पाता था।

उसके बाद प्रमीला उन दोनो को एक कपड़े की दुकान में ले गयी। वहॉ उसने अलग-अलग किस्म की आठ साड़ियॉ, उतने ही तैयार ब्लाउज्ज और पेटीकोट खरीदे। स्त्रियो के पहनने का एक कोटनुमां गरम बनियाइन भी खरीदा, चार जोड़े मर्दानी धोतियो के और चार सिले-सिलाये कुर्ते भी खरीदे।

राजीव फिर एक बार प्रश्न किये बिना न रह सका—"ये सब किनके लिये ?"

"बरातियों के लिये।" उसी रहस्य-भरी मुसकान से प्रमीला बोली।

दो बंडलो मे उसने उन चीजों को भी बॅधवाकर एक बंडल राजीव के हाथ में दिया दूसरा स्वयं ले लिया।

दुकान से बाहर निकलने पर राजीव ने पूछा—"अब और कहॉ चलना होगा ?"

"दो बक्स खरीदने है; चलिये, आगे मिलेंगे।"

सुनंदा और राजीव मशीन परिचालित पुतला की तरह उसके पीछे-पीछे चलते रहे। ट्रंको की एक दुकान के पास प्रमीला ठहर गयी। वहाँ चमड़े के दो अच्छे से खासे बड़े सूटकेस उसने पसन्द किये। दाम चुकाने के बाद प्रश्न उठा कि उन्हे कैसे ले जाया जाय। प्रमीला एक कुली ढूंढने लगी। राजीव ने अपने हाथ का बंडल सुनन्दा के हाथ मे देकर अपने हाथो मे दोनो बक्सो को ले लिया।

"अब कहाँ चलना होगा ?" बाहर आकर राजीव ने पूछा।

"बस, अब एक ताँगा कर लें।"

सामने एक खाली ताँगा खड़ा था। प्रमीला ने उसे आदेश देते हुए कहा—"चलो।"

"आइये।" कहकर ताँगे वाले ने अपना चाबुक सँभाला। बक्सो को सीटो के नीचे रखकर राजीव आगे बैठ गया और प्रमीला और सुनन्दा पीछे।

ताँगा आगे बढ़ा। गद्दे वाले की दुकान पर उसे रोककर प्रमीला ने दोनो बंडलो को दुकान के एक नौकर से कहकर बाहर मँगवा लिया। उन्हे भी किसी तरह ताँगे पर रखवाकर जब फिर से तीनो बैठे तब ताँगेवाले ने पूछा—"मिस साहब, कहाँ जाना होगा ?"

"अब बताइये, राजीव बाबू," प्रमीला ने उसी रहस्य-भरी, किन्तु अपेक्षाकृत गम्भीर दृष्टि से एक बार राजीव और फिर सुनंदा की ओर देखते हुए कहा—"आपने मकान कहाँ लिया है ?"

राजीव के सिर पर जैसे गाज गिरी हो, ऐसे विमूढ़ भाव से उसने पूछा—"क्यो ? मेरे मकान का पता क्यों पूछ रही हो ?

प्रमीला के प्रश्न से सुनन्दा भी सन्न रह गयी थी। बहुत देर से वह एक शब्द भी नहीं बोली थी। केवल मौन दर्शक के रूप मे प्रमीला का साथ देती आ रही थी। अत्यन्त भीत दृष्टि से वह प्रमीला के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

"वाह; अभी तक आपको इतना भी पता नहीं है? अरे, सभी बरातियो के लिये हमारे बँगले में स्थान कहाँ? मेरा विवाह होने जा रहा है और आप इतनी भी सहायता मुझे नहीं देना चाहते कि अपने यहाँ एक आध को टिकाये रहें?" कहकर फिर उसने एकबार दुष्टतापूर्ण दृष्टि से सुनन्दा की ओर देखा।

"प्रमीला, इस पहेली-बुझौवल से काम न चलेगा। अपनी बात जरा स्पष्ट करो।" राजीव बोला।

"पहले अपने मकान का पता तो बताइये। ताँगा खड़ा है। रास्ते में सब बता दूँगी।"

"अच्छी बात है," किसी तरह स्थिति की जटिलता का सामना करने के इरादे से राजीव बोला। "चलो चारबाग।" उसने ताँगेवाले से कहा।

"चारबाग स्टेशन?" सुनन्दा आतंकित होकर सहसा पूछ बैठी।

"नही, गणेशगंज के आगे एक गली में।"

ताँगा बढ़ा। सुनन्दा फिर एकदम मौन हो गयी—वज्र-मौन। प्रमीला बड़ी ढीठ, साहसी और विचित्र खामखयालियो वाली लड़की है, यह वह जानती थी। पर उसकी खामखयाली किस हद तक और कहाँ तक जा सकती है, इसका ठीक अंदाज़ लगा पाना उसके लिए भी सम्भव नहीं था।

तीनों चुप थे। न कोई कुछ बोलता था न कुछ पूछता था। सुनन्दा रहरह कर एक अजानित आशंका से व्याध-ग्रस्त कपोती सी थर-थर काँप रही थी। एक-एक सड़क को पार करते हुए ऐसा लग रहा था जैसे वह सहस्रों योजनों तक प्रसारित देशों और असंख्य युगों को पार करती हुई न जाने शून्य-स्थित किस अनिश्चित केन्द्र की ओर बरबस बढ़ी चली जा रही है।

कैसरबाग से अमीनाबाद और अमीनाबाद से गणेशगंज को पार करता हुआ ताँगा आगे बढ़ निकला। अंत में एक गली के पास राजीव ने उसे रुकवाया।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

ताँगे से उतर कर राजीव ने प्रमीला से कहा—"तुम लोग यहीं ठहरे रहो। मैं जाकर कमरा खोलता हूँ तब सामान उठा ले जाऊँगा।" और वह गली के भीतर चला गया।

सुनंदा ससपंज में पड़ी थी कि यह सारा चक्कर क्या है, उसकी परिणति किस रूप मे होगी, वहाँ उतरना उचित होगा या नहीं। पर मुँह से वह एक शब्द भी नही निकाल पाती थी—न विरोध मे न पक्ष में।

राजीव लौटकर आया और अपने सबल हाथों में सबसे पहले दो भारी बडल उठाकर ले गया। उसके बाद दोनो बक्स उठा ले गया, जिनमें प्रमीला ने कपड़े भर दिये थे। जब उन्हे रख आया तब मुसकराकर बोला—"अब आइये, आप दोनों मेरे कमरे मे पधार कर उसकी शोभा बढ़ाइये।"

"चलो बुआ !" कहकर प्रमीला पूर्ववत् दुष्टतापूर्ण मुसकान मुख पर झलकाती हुई उतरी और सुनन्दा का हाथ पकड़कर उसे उतरने मे सहायता देने लगी । वास्तव मे उस समय सुनन्दा को किसी के सहारे की आवश्यकता थी । उसके पॉव बुरी तरह कॉप रहे थे और लड़खड़ाकर गिर जाने का भय था ।

गली के भीतर कुछ दूर तक प्रवेश करने के बाद दायीं ओर एक छोटे से दुमञ्जिले मकान के पास राजीव ठहर गया । नीचे का एक कमरा दिखाकर बोला—"यही मेरा गरीबखाना है । चलिये !"

प्रमीला और सुनन्दा उसका अनुसरण करती हुई सीढ़ी पर से ऊपर चढ़ी । जब दोनो ने कमरे के भीतर प्रवेश किया तब देखा कि छोटा-सा कमरा सामान से भर गया है ।

"अब इन्ही गद्दो और बकसो के ऊपर तुम लोगों को बैठना होगा ।" कहकर राजीव फिर विचित्र ढग से मुसकराया । उसके मुख के भाव से ऐसा लगता था जैसे प्रमीला का सारा खेल उसकी समझ मे आ गया है, और वह भी उसे अंत तक खेलने के लिये तैयार है ।

"मकान तो आपने एक क्रांतिकारी के उपयुक्त ही लिया है," प्रमीला ने मीठी चुटकी लेते हुए कहा ।

"आजीवन काल कोठरियो और अँधेरी गुफाओ मे रहने का आदी रहा हूँ न, इसीलिये ! पर तुम लोगो की आवभगत में कोई कमी न होगी । तनिक सुस्ताओ, मै दस मिनट मे आता हूँ !" कहकर राजीव जाने लगा ।

"आवभगत की कोई आवश्यकता नहीं, आप बैठें," प्रमीला

ने उसे रोकने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"ऐसा नहीं हो सकता। तुम लोग बैठो, मैं अभी आया," कहकर राजीव बाहर निकल गया।

सुनन्दा के मुख का चमड़ा एकदम रक्तहीन और सफेद होता चला जा रहा था। प्रमीला ने जैसे उपयुक्त अवसर पाकर, अत्यन्त शांत और गंभीर भाव से बहुत ही धीमी आवाज़ में, कहा—"बुआ, अब जी कड़ा कर लो और वास्तविकता के लिए तैयार हो जाओ!"

"तुम क्या कह रही हो, प्रमीला!" रोने के से स्वर मे सुनंदा ने कहा। "तुम्हारा क्या उद्देश्य है, साफ-साफ बताओ! बिना किसी पूर्व सूचना के तुम अचानक मेरा हाथ पकड़कर सीधे इस आजन्म-अपरिचित गली मे ले आयी हो, और अब जी कड़ा करने को कहती हो। क्या चाहती हो तुम मुझसे?"

"इस तरह घबराने से कतई काम नहीं चलेगा, बुआ! आज ही तो तुम्हारी अग्नि-परीक्षा का अवसर आया है!"

"पहले अपना मतलब साफ-साफ समझाओ।" सुनन्दा की घबरायी हुई आवाज़ में भी एक निराली दृढ़ता भरी थी।

"आज से तुम्हे इसी कमरे मे, राजीव बाबू के साथ रहना होगा।" अत्यन्त शांत और संयत स्वर मे प्रमीला ने कहा।

सुनन्दा चौंककर अपनी जगह से उठ बैठी, जैसे सहसा किसी कीड़े ने काट खाया हो। कुछ क्षणों तक वह आक्रोश और तिरस्कार-भरी दृष्टि से प्रमीला की ओर देखती रही। उसके बाद अपने क्रोध को बलपूर्वक पी जाने का प्रयत्न करती हुई धीरे से

बोली—"जान पड़ता है तुम्हारे पागलपन मे अब कुछ भी कसर नहीं रह गयी है। तुम ऐसी मनचली हो चली हो कि जो मन मे आया कर बैठती हो और जैसा जी चाहा बक देती हो। तुम मे न तनिक लाज शेष रह गयी है न हया ! अपनी ही तरह तुम दूसरो को भी समझती हो!"

"तुम ठीक कहती हो, बुआ," तनिक भी उत्तेजित न होकर, उसी शान्त, स्निग्ध और मधुर स्वर मे प्रमीला बोली। "मैं मनचली और निर्लज्ज हूँ, यह मै मान लेती हूँ। पर मेरी बात पर तनिक शांत चित्त से विचार तो करो। बैठ जाओ। अगर मेरा तर्क तुम्हे न जँचे तो मै अभी तुम्हे अपने साथ वापस ले चलूँगी और फिर कभी इस जीवन मे भूलकर भी इस सम्बन्ध मे कोई बात मुँह से नहीं निकालूँगी।"

उसका आश्चर्यजनक धैर्य, और अविचलित शान्ति देखकर और आश्वासन-भरी वाणी सुनकर सुनन्दा अपने-आप, बिना किसी इच्छा या प्रयास के, धीरे-से बैठ गयी और प्रश्न और उत्सुकता-भरी दृष्टि से प्रमीला की ओर देखती रही।

प्रमीला उसी शांत भाव से कहने लगी—"सुनो बुआ, मान लो तुम्हे मै अभी घर वापस ले चलूँ। पर तुम्हे क्या निश्चित विश्वास है कि वहाँ तुम यहाँ से ज्यादा इज्जत से रहोगी? वहाँ क्या अब तुम्हें हर तरह से लांछित और कलंकित करने के प्रयत्नो मे कुछ भी कसर बाकी रह गयी है? तुम्हारे सतीत्व पर झूठा कलंक लगाया जा चुका है—केवल लगाया ही नहीं, बल्कि सारे टोले-मुहल्ले मे फैलाया भी जा चुका है। तुम भीतर ही बैठी

रहती हो, किसी के यहाँ आती-जाती नहीं, इसलिये तुम्हें अभी तक पता नहीं है कि बात किस हद तक बढ़ायी और गढ़ी गयी है और कहाँ-कहाँ तक फैल चुकी है। इसके अलावा सुबह-शाम दिन-रात तुम्हें तरह-तरह के तानो द्वारा बेईमान, चोर और चटोर बताया जाता है। घर के नौकर-चाकर तक तुम्हे अपमानित करने मे कोई बात उठा नही रखते। मुझसे कोई भी बात छिपी नही है, बुआ! यह है कठोर और कड़वी वास्तविकता। अब तुम शांत मन से ठंढे तक से विचार कर मुझे बताओ कि इस परि-स्थिति के बावजूद तुम उस घर मे पाँव रखना अपनी मान-प्रतिष्ठा और आत्मिक मर्यादा के अनुकूल समझती हो? मैंने पूरे चार दिन और चार रात तक रेशा-रेशा करके सारी स्थिति का विश्लेषण करने के बाद विवेचन किया है। बार-बार विचार करने पर मुझे केवल एक ही रास्ता उस घोर अपमानकर और निदारुण ग्लानि-कर गदगी से बाहर निकलने का दिखाई दिया है। और वह रास्ता यही है कि तुम सीधे-सीधे राजीव बाबू के साथ आकर रहने लगो। मै तुम्हे विश्वास दिलाती हूँ बुआ, कि इससे अधिक सम्मानजनक स्थान, इससे बढ़कर गौरवपूर्ण स्थिति तुम्हारे लिये दूसरी नहीं हो सकती। तुम्हारे ही शब्दो मे, राजीव बाबू महान् है, इतने महान कि उनकी ऊँचाई तक साधारण मनुष्य की दृष्टि नहीं पहुँच पाती। उनके साथ रहकर तुम निःशंक होकर अपना माथा गर्व से उन्नत कर सकती हो। तब तुम मेरे प्रस्ताव से इस कदर क्यो उचक उठी हो जैसे मै तुम्हे एक नीच, पतित और घृणित गुंडे के साथ रहने के लिए भगा लाई हूँ? तनिक शांत

होकर सोचो, बुआ, और एक बात निश्चित रूप से तय कर डालो। इस समय तनिक भी संशय और द्विविधा में रहना तुम्हारे लिये मृत्यु से भी भयंकर होगा। वह तुम्हारे समूल विनाश का भी कारण हो सकता है। तुम्हारे लिए चरम परीक्षा का समय आ पहुँचा है, बुआ! यह सब अच्छी तरह सोचकर ही मै तुम्हे यहाँ घसीट लायी हूँ। राजीव बाबू को मैने इस बात का स्पष्ट संकेत तो नही दिया था, पर आज जब वह आये तब मै उन्हे पकड़कर एकांत मे ले गयी और उन्हे स्पष्ट शब्दों मे इतना बता दिया कि तुम्हारी स्थिति इस घर मै आजकल क्या हो उठी है। इसके बाद भी अगर तुम यह सोचो कि मैने तुम्हारा अहित किया है और तुम्हारे साथ अन्याय किया है तो मै तुमसे अन्तर से क्षमा माँग लूँगी, और जैसा कि मै कह चुकी हूँ, तुम्हें अपने ही साथ वापस ले चलूँगी·· ···"

प्रमीला की आँखों मे एक ऐसी अकपट और मर्मस्पर्शी विह्वलता छा गयी थी कि देख-देखकर सुनन्दा का हृदय जी भरकर रोने के लिए बरबस फूल-फूल उठता था।

"रानी, मैंने जो तुमसे कड़ी बात कही उसके लिए तुम मुझे क्षमा करना! मैं तुम्हे किस बात के लिए क्षमा करूं!" भर्राई हुई आवाज़ में सुनन्दा बोली। "तुम्हे याद होगा, मैंने तुमसे कहा था कि पूर्व जन्म मे तुम राजीव बाबू की सगी बहन रही होगी, पर तब मैं यह नहीं जानती थी कि तुम कई बातो मे राजीव बाबू से भी आगे हो। केवल तुम्हारा चरित्र ही राजीव बाबू की तरह ही महान् नही है, उन्हीं ही तरह तुम केवल

सहृदय ही नहीं हो, बल्कि तुममे दूरदर्शिता के साथ ही प्रत्युत्पन्न-बुद्धि का ऐसा समन्वय है जो बिरले ही किसी महापुरुष में सम्भव होता हो। जिस आदर्श के सम्बन्ध में तुम्हारे मन में यह विश्वास जम जाता है कि वह कल्याणकारी है उसे तुम व्यावहारिक रूप मे परिणत किये बिना चैन नहीं लेती। समाज के या और किसी के भय से पीछे हट नही जातीं। यह कितना बड़ा गुण है, रानी, इसे मैं जानती हूँ।" और सुनन्दा ने दोनों हाथो से अपनी आँखें मूँद ली।

प्रमीला के मुख के भाव से स्पष्ट था कि उसे अपनी प्रशंसा सुनने मे तनिक भी सुख नहीं मिल रहा है और वह किसी दूसरी ही बात के लिए चिंतित है।

"उस समाज के लिए चिंतित होने के बराबर कायरता दूसरी नहीं है, बुआ", प्रमीला ने कहा, "जो बिना कणमात्र आधार के किसी असहाय और विवश नारी को घृणित रूप से लांछित करने, उसके सतीत्व पर, उसके चरित्र पर झूठा कलंक लगाने के प्रयत्नों से बाज नहीं आता। वह वास्तव मे समाज है भी नही। वह तो समाज के अस्वस्थ-मति रोगियो का समूह है। इसलिए अब एक क्षण के लिए भी अपने भीतर दुर्बलता न आने दो बुआ, और पतितो के बीच मे जाने की कल्पना को अपने मन से जड़ से उखाड़कर फेंक दो। चाहे तुम्हे बाहर सड़को पर भीख माँगनी पड़े, पर उस ओर अब एक कदम भी रखना, मेरी दृष्टि से, तुम्हारी आत्मा की शोचनीय हत्या के सिवा और कुछ न होगा। मैं स्पष्ट बातें कहने से रह नहीं पाती, बुआ, आदत से लाचार हूँ,

इसलिए क्षमा ”

“देर हो गयी, इसलिए मैं भी क्षमा चाहता हूँ,” राजीव ने सहसा प्रवेश करके मिठाइयों और नमकीन से भरा हुआ एक दोना सामने रखते हुए कहा। उसके मुख पर इस समय मंद मधुर मुसकान झलक रही थी, जैसे सारी स्थिति की रहस्यमयता के सम्बन्ध में किसी तरह का कुतूहल उसके मन मे शेष न रह गया हो और अपने कर्तव्य के सम्बन्ध मे वह पूर्णतः सचेत हो चुका हो।

प्रमीला दोना देखते ही कह उठी—“वाह! इन चीजों को देखकर तो यह पता ही नहीं चल सकता कि किसी मजदूर के यहाँ आए हैं। यह तो किसी अच्छे खासे बूर्जवा की दी हुई दावत है! इसे देखकर अब मै निश्चित हो गयी हूँ कि आप उस बराती की आवभगत खूब अच्छी तरह करेंगे जिसे मै आपके यहाँ टिकाऊँगी!”

राजीव के पीछे एक लड़का एक ट्रे में चाय और तीन खाली प्याले लेकर आ पहुँचा।

“यह सुविधा भी यहाँ है!” प्रमीला ने कहा “तब अब क्या कसर रह गयी!”

“तुम लोगो के यहाँ रहकर चाय के कई प्याले खाली कर चुका हूँ, प्रमीला,” राजीव बोला। आज इस एक प्याले द्वारा उन सबका हिसाब चुका देना चाहता हूँ!” कहकर उसने अर्थ-भरी दृष्टि से सुनन्दा की ओर देखा।

सुनन्दा इस बीच सँभल चुकी थी। प्रमीला की खरी-खरी

बातों के आघात से उसकी सुप्त चेतना परिपूर्ण रूप से जागरित हो उठी थी। उसका स्वस्थ, सशक्त और विद्रोही रूप सारी जड़ता को एक झटके से झाड़ कर खड़ा हो गया था। लगता था जैसे किसी प्रकार की ग्लानि, द्विविधा या उलझन का लेश भी उसके भीतर शेष नहीं रह गया। इसलिये वह प्रमोला और राजीव की बातों मे पूरी दिलचस्पी लेने लगी थी।

"मै पूछना चाहती हूँ, प्रमीला," उसने कहा, "क्या वे सब प्याले केवल इसी दृष्टि से स्वीकृत किये गये थे कि एक दिन उन सब का हिसाब देना होगा ? यदि यही बात थी तो मैं पहले ही से सचेत कर देना चाहती हूँ कि वे ऐसे सस्ते प्याले नहीं थे जैसा कि 'लोग' समझे बैठे है। उनका हिसाब देते-देते जीवन बीत जायगा।" कहती हुई सुनन्दा बीच-बीच में तिरछी दृष्टि से राजीव की ओर देख लेती थी।

प्रमीला जानती थी कि वह प्रश्न उसे संबोधित करके भले ही पूछा गया हो, पर था दूसरे के लिये। इसलिये वह चुप थी और कुतूहल से राजीव की ओर देख रही थी।

"मै यही तो जानना चाहता था, प्रमीला, कि उन प्यालों का यथार्थ मूल्य क्या है। इसीलिये मैंने जान बूझ कर यह प्रश्न उठाया। हिसाब मे मै बराबर कच्चा रहा हूँ। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई यह जानकर कि उन असाधारण प्यालो का मूल्य चुकाने में मुझे अपना सारा जीवन बिता देना होगा। मैं उस महाऋण को पूरे उत्तरदायित्व के साथ स्वीकार करता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि निश्चय ही अपना सर्वस्व—तन, मन और आत्मा तक—

उसे चुकाने में लगा दूँगा।"

प्रमीला ने देखा कि राजीव के मुख पर परिहास की लेश-मात्र छाया भी न थी। वह समझ गयी कि उस रूपकात्मक वार्तालाप के बहाने निगूढ़तम बातें सुनन्दा और राजीव के बीच हो गयी हैं। राजीव का उत्तर सुनकर प्रमीला को आंतरिक सतोष हुआ।

राजीव के उस उत्तर के बाद फिर जैसे किसी के पास कोई बात कहने को रह ही नहीं गयी। तीनो चुपचाप चाय पीने लगे। कौन जाने, उस क्षणिक सन्नाटे में तीनो मे से किसके भीतर किस प्रकार के विचारो और भावो की तूफानी तरंगे उठती और गिरती जाती थीं।

सहसा राजीव प्रमीला की ओर देखकर बोला—"मैं जानना चाहता हूँ, अगर तुम्हे बताने में कोई आपत्ति न हो, कि तुम जिन विशिष्ट बरातियो को मेरे यहाँ ठहराना चाहती हो वे कौन है ?"

"एक बराती है श्रीमती सुनंदा देवी और दूसरे है श्रीयुत राजीवप्रसाद।" प्रमीला ने अत्यन्त शांत भाव से, अव्यक्त मुसकान के साथ कहा। "जहाँ तक मेरी जानकारी है, दोनो ही शिष्ट, शांत और सज्जन है, और मैं आशा करती हूँ कि दोनो की एक-दूसरे से अच्छी निभेगी।"

राजीव के मुख के भाव से स्पष्ट था कि इस उत्तर से उसे तनिक भी आश्चर्य नही हुआ है और वह पहले ही से उसी ढंग का उत्तर पाने की आशा करता था। पर प्रत्याशा जब निश्चित तथ्य में परिणत हो जाती है तब अंतरानुभूति मे कुछ-

न-कुछ परिवर्तन होता ही है। वही परिवर्तन राजीव की आँखों में झलक रहा था। उसमें पुलक भी था और शंका का क्षीण आभास भी। शंका शायद इसलिए कि प्रमीला के उस एकदम नये और आकस्मिक प्रस्ताव के सम्बन्ध में सुनन्दा का मनोभाव ठीक-ठीक क्या है, इस सम्बन्ध में वह संदिग्ध था। इस कारण प्रमीला का उत्तर सुनते ही वह सुनंदा की ओर बड़े गौर से देखने लगा—उसके मुख पर विभासित भाव-छायाओं द्वारा उसका प्रत्युत्तर पढ़ने के इरादे से। उसे एक भी छाया सुनन्दा के मुख पर ऐसी नहीं दिखाई दी जो प्रमीला के प्रस्ताव का विरोध करती हो। पर साथ ही समर्थन का भी कोई प्रत्यक्ष चिह्न उनसे प्रकट नहीं होता था।

चाय समाप्त होने पर प्रमीला सहसा उठ खड़ी हुई। उठते ही उसके मुख का सहज चंचल भाव पल में तिरोहित हो गया। अत्यन्त गंभीर भाव से राजीव की ओर हाथ जोड़ती हुई बोली—"क्षमा कीजियेगा, राजीव बाबू, बिना किसी निश्चित पूर्व सूचना के आपके ऊपर एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ा है।" उसके बाद सुनंदा की ओर देखकर बोली—"बुआ, जो लड़कपन मुझसे हुआ है उसके लिए क्षमा करना। मेरी लाज रखना बुआ! इससे अधिक इस समय मैं कुछ न कहूँगी। मैं बीच-बीच में तुमसे मिलती रहूँगी। अच्छा इस समय चलती हूँ, विजय आये होंगे और माँ भी घबरा रही होगी।"

"ठहरो, मैं भी चलता हूँ तुम्हें पहुँचाने। यह सब सामान…"

"सामान सब यहीं रहेगा। आप अभी तक कुछ समझे नहीं

क्या ?" तनिक खिन्न भाव से प्रमीला ने कहा।

"समझ चुका हूँ, प्रमीला, पर इतने सारे सामान की कोई आवश्यकता······"

"वह सब ठीक है। हिसाब से खरीदा गया है। अच्छा···"

प्रमीला ने फिर एक बार दोनों की ओर हाथ जोड़े और फिर तेजी से बाहर निकल गयी।

"सुनंदा, मैं अभी एक मिनट में आया।" कहकर राजीव भी प्रमीला के साथ हो लिया।

दो कदम आगे बढ़ने पर राजीव ने प्रमीला के कानों के पास खड़े होकर धीरे से पूछा—"सुनंदा को तुमने सब समझा दिया है ?"

"हाँ, आप चिन्ता न करें। निश्चय ही बीच में अभी एक-आध बार उसकी आत्म-करुणा वाली भावुकता जगेगी। अब यह आपका काम है—उसे शांत करने और समझाने का। और हाँ, काम की बात तो मैं भूल ही गयी थी। आपने अच्छा ही किया जो आप चले आये, नहीं तो मुझे ही लौटना पड़ता। यह लीजिये···" कहकर उसने अपने 'बैग' से एक बड़ा सा बंद लिफाफा निकाला। "यह जरूरी चिट्ठी बुआ को दे दीजियेगा।" राजीव ने उसे अपने हाथ में ले लिया और हाथ ही में रखे रहा।

गली पार करके जब प्रमीला ताँगे पर बैठी तब फिर उसने राजीव की ओर एक बार हाथ जोड़े। राजीव ने भी पलटे में हाथ जोड़े और तब तक एकटक प्रमीला की ओर देखता रहा जब तक वह भीड़ के बीच में आँखों से ओझल न हो गयी।

लौटते हुए राजीव सोचने लगा कि कैसी विचित्र लड़की है

यह प्रमीला! उसकी प्रत्येक बात मे, प्रत्येक कार्य मे एक ऐसी अभिनव मौलिकता रहती है, जिसकी कल्पना पहले से नहीं की जा सकती।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

जब राजीव अपने कमरे में पहुँचा तब सुनंदा ध्यान-मग्न अवस्था में निश्चल बैठी हुई थी। उसके उदास मुख पर एक स्थिर भाव वर्तमान था। राजीव को देखकर वह जैसे चौंक उठी। इस बीच वह अपनी विचार-तरंगो मे बहती हुई न जाने कहाँ—अनंत-प्रसारित अकूल समुद्र के किस बिन्दु पर पहुँच चुकी थी। राजीव के आने पर जब उसका ध्यान भंग हुआ तो उलटी धारा ने उसे कहाँ से कहाँ पटक दिया। वह हिली और एक बार, न जाने क्या सोचकर, उठने को हुई, पर फिर जिस बक्स पर बैठी हुई थी उसी पर तनिक सँभल कर बैठ गई।

"उस बक्स पर बैठने से तुम्हे तकलीफ हो रही होगी, सुनंदा," राजीव ने सांत्वना के-से स्वर मे कहा। "इस खटिया पर आराम से बैठ जाओ।"

'नहीं, मुझे कोई तकलीफ नही हो रही है," शांत और सहज भाव से सुनंदा ने कहा। "मैं केवल यह जानना चाहती हूँ कि आपके अधिकार मे क्या यही एक कमरा है?"

राजीव के मुख पर मधुर मुसकान झलक उठी। "घबराओ नहीं, एक और कमरा मेरे कब्जे मे है।" कहकर उसने बगलवाले कमरे की चिटखनी खोली।

सुनंदा उठ खड़ी हुई और नये कमरे की ओर उसने झाँका। उसके बाद वह कमरे के भीतर चली गयी। कमरे में लाल रंग का पक्का फर्श था। बहुत दिनो से सफाई न होने के कारण इधर-उधर कूड़ा बिखरा पड़ा था। एक कोने पर कुछ जूठे पत्ते और जूठे सिकोरे और कुल्हड़ पड़े थे। पश्चिम को एक खिड़की थी जो बंद थी। राजीव ने उसे खोला।

"झाड़ू है ?" सुनंदा ने पूछा। उसके स्वर से राजीव को लगा कि उसने नयी—और स्पष्ट ही अप्रत्याशित—स्थिति को यथारूप स्वीकार कर लिया है।

"है तो नहीं, पर मै ला देता हूँ मिनट-भर मे।"

"जाओ तब, जल्दी ले आओ। दोनो कमरों की सफाई करनी होगी और सब सामान ठीक से रखना होगा।" अधिकार भरे स्वर मे सुनन्दा ने कहा।

उसके सहज स्वाभाविक स्वर से, और "जाइये" न कहकर "जाओ" कहने के ढंग से राजीव के भीतर एक पुलक-तरङ्ग दौड़ गयी।

"मैं अभी आया," कहकर वह तेज़ कदम रखता हुआ बाहर निकल गया। प्रायः तीन मिनट बाद वह एक झाड़ू ले आया। वह स्वयं बुहारने लगा। एक कोने मे झाड़ू लगाते हुए उसकी नज़र दूसरे कोने के कूड़े पर पड़ी। तत्काल पहले की सफाई अधूरी छोड़कर दूसरे कोने का कूड़ा बटोरने लगा। वहाँ से भी तुरन्त ही तीसरे कोने में जाकर झाड़ू लगाने लगा। सुनन्दा रह न सकी, खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके बाद उसने बलपूर्वक

राजीव के हाथ से झाड़ू छीन लिया और स्वयं कूड़ा साफ करने लगी। झाड़ू लगाती हुई बोली—"सभी कामों में तुम अपने को दक्ष क्यों मान लेते हो! दुनिया में बहुत-से काम ऐसे भी हैं जिनमें तुम्हारी वीरता कोई सहायता नहीं कर सकती।" और वह व्यंग्यपूर्वक मुसकराने लगी।

"तुम्हारे सत्साहस के आगे मेरी वीरता पहले भी कई बार हार मान चुकी है, सुनन्दा," विनम्र भाव से राजीव ने कहा।

कूड़ा बटोर कर उसने अखबार का एक बड़ा सा पन्ना उठाया जो राजीव की खटिया के पीछे रखा हुआ था। कूड़ा उठा उठाकर उस पर रखा और राजीव से बाहर फेंक आने के लिए कहा। उसके बाद वह बाहर वाले कमरे का सामान उठा-उठाकर ठीक से रखने लगी। संवादपत्रों को उठाकर एक कोने मे सजाकर रख दिया। इधर उधर बिखरी हुई पुस्तको को एक आले पर करीने से रख दिया। एक बंडल खोलकर उसने नया गद्दा राजीव की खटिया पर बिछा दिया और उसके ऊपर नया पलॅगपोश बिछाया। नये लिहाफ की तह लगाकर उसे पैताने पर सजाकर रख दिया। राजीव के पुराने कंबल को उसके नीचे छिपाकर रख दिया। दरी और कालीन उठाकर वह दूसरे कमरे मे ले गयी जिसकी सफाई उसने अभी की थी। एक किनारे पर उसने उन दोनों को बिछा दिया। जब राजीव लौटकर आया तब वह देखकर बोला—"वाह, यह अच्छा-खासा ड्राइंग रूम बनाने जा रही हो तुम!"

"ड्राइङ्ग रूम नहीं जनाब, यह भी स्लीपिंग रूम ही रहेगा! वह सब मेहनत मैं अपने लिए कर रही हूँ, आपके लिए नहीं!

अब आप कृपा करके दोनों बक्सों को उठाकर इसी कमरे में ले आइये और दूसरा वाला बंडल भी।"

राजीव ने तत्काल बड़ी तत्परता से उसके आदेश का पालन किया। एक कोने मे एक बक्स के ऊपर दूसरा बक्स रखकर बंडल भी सुनन्दा ने उसी पर रख दिया। उसके बाद वह राजीव के कमरे का कूड़ा बटोरने चली गयी। कूड़ा बटोर कर उसने दूसरी दरी राजीव की खटिया के नीचे बिछा दी।

राजीव के कमरे की सफाई और सजावट हो चुकने के बाद सुनन्दा फिर उसी कमरे मे चली गई जहाँ उसने दरी के ऊपर कालीन बिछा रखा था। वहाँ जाकर वह आराम से कालीन पर बैठ गई।

राजीव उसके सामने खड़ा था। —बोला—"खटिया एक ही है। दूसरी खटिया अभी खरीद लाऊँगा।"

"नहीं, खटिया की कोई जरूरत नहीं है। मै इस कालीन के ऊपर सोऊँगी। गद्दा भी नहीं बिछाऊँगी। तुम खटिया लाओगे तो वह पड़ी रहेगी। इसलिए व्यर्थ है।"

"माफ करना, सुनन्दा, तुम बड़ी स्वार्थी हो।" दुष्टता के साथ मुसकराते हुए राजीव ने कहा।

"क्यो ?" तनिक घबरायी हुई मुद्रा से सुनन्दा ने पूछा।

"अपनी साधना के सम्बन्ध तुम इतनी सजग हो कि फर्श पर केवल एक कालीन बिछाकर सोने का निश्चय किये बैठी हो, पर मेरी साधना भंग करने के लिये तुमने मेरी खटिया पर बिछी हुई दरी और कंबल के ऊपर नया गद्दा बिछा दिया।"

सुनन्दा भी मुसकरा उठी। बोली—"तुम जीवन मे बहुत साधना कर चुके हो। अब साधना की कोई आवश्यकता तुम्हें नहीं है। और फिर..... " कहते ही उसके मुँह पर एक घनी छाया घिर आयी। तनिक अनमने भाव से, जैसे स्वयं अपने से ही कहती हो, बोली—"मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हे चाहे कैसे ही आराम से रहने की सुविधा क्यों न मिले तुम्हारी साधना कभी भंग नही हो सकती। तुम स्वभाव से ही साधनाशील हो मेरा अन्तर्वासी यह जान चुका है। नही तो घोर से घोर संकट की विवशता आने पर भी और प्रमीला के या और किसी के लाख समझाने पर भी मैं तुम्हारे यहाँ शरण लेने को कभी राजी न हुई होती। साधना के सम्बन्ध मे सजग रहने की आवश्यकता होती है मुझ जैसे व्यक्तियो को, साधना जिनका सहज स्वभाव या प्रकृति-गत धर्म नहीं है, जो केवल समाज मे या संसार मे आत्म-रक्षा के भय से साधना के कवच को अपनाने के लिये विवश है।"

राजीव खड़े-खड़े बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रहा था और उसके प्रत्येक हाव-भाव पर एकांत दृष्टि से गौर कर रहा था। जब सुनन्दा अपनी बात समाप्त कर चुकी तब उसके मुँह से बरबस एक लम्बी साँस निकल गयी। गंभीर भाव से, बहुत ही धीरे से, बोला—"तुम अपने प्रति आवश्यकता से बहुत अधिक निर्मम हो सुनन्दा। अपने महत्त्व को स्वयं अपने से घटाने के लिये तुम प्रतिक्षण इस कदर आतुर रहती हो कि कभी-कभी आश्चर्य —और दुःख भी—होने लगता है। एक बात मैं तुम्हें फिर बता दूँ, सुनन्दा, बुरा न मानना। अपने स्वभाव पर इस कदर हीनता

का आरोप करने की प्रवृत्ति, अपने को प्रत्येक विषय मे छोटा समझने की भावना अच्छे स्वास्थ्य का परिचायक नही है। तुम बहुत-सी बातो में मुझसे भी अधिक स्वस्थ हो। पर तुम्हारी इस विशेष भावना के सम्बन्ध मे मेरी यह धारणा है कि तुम जैसे जानबूझ कर अपने स्वस्थ मन पर आघात करके, अत्यन्त निर्ममता से उसमे से रक्त निकाल कर उसे अस्वस्थता का रूप देना पसन्द करती हो। तुम्हारी जो वास्तविक महानता है उसे तुम किस लिये, किसके भय से छिपाती हो? पूर्ण आत्मविश्वास और गर्व के साथ तुम्हे खुले आम उस महत्ता को प्रदर्शित होने देना चाहिये। जब तक वह अपने-आप, बिना किसी प्रयत्न के छिपी है, तब तक छिपी रहने दो। पर जब वह भीतरी धक्कों से स्वतः प्रदर्शित होने पर होती है तब भी कृत्रिम अवरोधो से उसे भीतर की ओर ढकेलना और उसे पर्दा-दर-पर्दा छिपाने के प्रयत्न करना मै तो उचित नहीं समझता। स्वयं तुमने कई बार, संकट-पूर्ण परिस्थितियो के अवसरो पर अपनी उस स्वाभाविक और स्वस्थ चेतना को निःशंक प्रकट होने दिया है।"

सुनन्दा ध्यान-मग्न अवस्था में सुनती रही। जब राजीव रुका तब भी वह कुछ बोली नहीं। अनमनी दृष्टि से उसी की ओर देखती रह गयी।

राजीव भी कुछ क्षणो तक भाव-मग्न सा खड़ा रहा। उसके बाद बोला—"अच्छा मैं जाता हूँ। जरा बाजार हो आता हूँ।"

"किस लिए?" तनिक चिंतित भाव से सुनन्दा ने पूछा।

"कुछ खाने को लेता आऊँ। गरम-गरम कचौड़ियाँ। मेरे

यहाँ बाजार की चीजों से ही तुम्हे काम चलाना [illegible]ा। क्योकि राशन कार्ड मैंने बनवाया ही नहीं, न बनवाने की प्रवृत्ति ही होती है।···दिन-भर कारखाने में काम करने के बाद राशन लाने, गेहूँ साफ कराने, चक्की पर पिसाने का अवकाश कहाँ रहता है। इसलिये अभी इस झंझट से मैंने अपने को मुक्त कर रखा है।"

"पर अब इससे मुक्त न हो पाओगे। रोज-रोज बाजार की कचौड़ियाँ नही चलने पायेगी। आज तो, खैर, समय नहीं रहा। कल तुम्हे दो आदमियो का राशन कार्ड बनवाना ही होगा।" कहते हुए सुनन्दा के मुख पर फिर सहज-स्वाभाविक मुसकान खिल आई।

"कल की कल ही देखी जायगी," राजीव ने कहा, "पर अभी तो कुछ-न-कुछ प्रबंध करना होगा। पास ही एक अच्छी दुकान है। मैं दौड़कर जाता हूँ और ले आता हूँ।"

"अरे, अभी-अभी तो नमकीन और मिठाई खायी है। अभी से इतनी उतावली क्या है। पर तुमने शायद उसमे से कुछ नही खाया। हम दोनो सब खा गयीं।" कहकर सस्नेह, सविनोद मुसकराने लगी। "अच्छा है, तब ले आओ अपने लिए। मै अभी कुछ नहीं खाऊँगी।"

"तो मुझे भी भूख नहीं है। शाम को देखी जायगी।" कह कर राजीव नीचे सीमेंट पर ही बैठ गया।

"अरे, अरे, सीमंट पर क्यो बैठते हो? यहाँ कालीन पर आकर बैठो। बढ़ईगीरी करते हो, पर अपने बैठने के लिए एक कुर्सी या तिपाई तक तुम नहीं बना पाये। आओ, इधर बैठो।"

राजीव उठा और तनिक संकोच से कालीन के अंतिम सिरे

पर सिमट कर बैठ गया।

"तो कल राशन कार्ड भी बनवा लेना, और—और—हाँ, कुछ बर्तन-वर्तन है कि नहीं ? और चूल्हा ? खाना कहाँ बनेगा ? खैर, कोयला और अंगीठियों से काम चल जायगा। नमक, मिर्च, मसाला यह सब भी कम से कम एक महीने के लिये खरीद लेना होगा। और हाँ, घी भी। चाहिये तो देसी ही घी, पर वह एक तो शुद्ध मिलेगा ही नहीं, दूसरे महँगा बहुत पड़ेगा। तो वेजिटेबिल घी से ही काम चला लेंगे, क्यों ?"

राजीव ने केवल सिर हिलाया।

"कहते है कि वेजिटेबिल घी खाने से तीसरी पुश्त की संतान अंधी पैदा होती है। चूहों पर आजमा कर देखा गया है। है तो बड़ी भयंकर चीज़। पता नहीं, इस देश मे यह चीज़ कहाँ से आ गई। सुना है, और किसी भी देश मे इसका प्रचलन नहीं है। सरकार जब जानती है कि यह इतनी खतरनाक चीज़ है तब इसकी बिक्री पर रोक क्यों नहीं लगाती ?"

राजीव के मुखपर व्यंग-भरी मुसकान परिपूर्ण विकास के साथ खिल उठी। बोला—"इसलिये कि सरकार तीसरी पुश्त के लिये अपने को उत्तरदायी नहीं समझती। उसे वर्तमान की यथार्थ परिस्थितियों का सामना करने से दम नहीं मिल रहा है, तीन पुश्त तक की बात सोचने का अवकाश ही उसे कहाँ है।"

"बड़े ही विचित्र युग से होकर हम लोग गुजर रहे है," सुनंदा ने खिन्न भाव से कहा। पर तत्काल उसका सहज भाव फिर उभर आया। बोली—"जब सरकार को तीसरी पुश्त की

चिंता नहीं है, तब तुम्हे क्या हो सकती है ! तुम्हारे जैसे अकेले आदमी के लिये तो यह सवाल ही नहीं उठता । इसलिये तुम निश्चित होकर वेजिटेबल घी खाये चले जाओ ।" कहकर वह, जैसे बरबस, खिल-खिल करके हँस पड़ी।

पर राजीव उस हँसी मे योग न दे सका। उसके चेहरे पर किसी कारण से चिंता की छाप स्पष्ट हो उठी थी। वह चुप रहा।

"तुम क्या सोच रहे हो ?" उसको चिंता से चिंतित होकर सुनन्दा ने पूछा।

"कुछ नहीं," उसी खिन्न भाव से राजीव ने कहा। "मुझे भय है, सुनन्दा, कि सामान जुटाने के संबंध मे तुम्हारा प्रस्ताव अभी कार्य-रूप मे परिणत नहो किया जा सकेगा।"

"क्यो ?" शंकित भाव से सुनन्दा ने पूछा।

"इसलिये कि अभी उसके लिये आर्थिक सुविधा मेरे पास नही है ।" सुनन्दा की ओर देखने का साहस न करते हुए राजीव ने कहा।

सुनन्दा सन्न रह गयी। वास्तव मे इतने बड़े प्रश्न की ओर उसका ध्यान ही अभी तक नहीं गया था। अपनी भूल पर उसे जो आश्चर्य हुआ वह हुआ ही, साथ ही और भी बहुत-सी बातें उसके मस्तिष्क मे चक्कर काटने लगी। प्रमीला की जिस आकस्मिक, और अंतिम क्षण तक गुप्त, योजना के फेर मे पड़कर वह एक नये स्थल मे आश्रय पकड़ने आयी थी वहाँ सर्वशून्य दरिद्रता राज करती है, इस ज्वलंत तथ्य की ओर न प्रमीला ने ध्यान दिया था न उसने, यह सोचकर वह रह-रहकर अपनी विवशता

पर भीतर ही भीतर छटपटाने लगी। "यदि प्रमीला ने पहले ही मुझे अपनी योजना की स्पष्ट सूचना दे दी होती !" वह सोचने लगी—"उस हालत में मैं कुछ-न-कुछ प्रबंध, कुछ समय तक के लिये, अवश्य ही कर पाती !" उमाप्रसाद जी प्रतिमास उसे अपनी निजी खर्चे के लिए ४० रु० दिया करते थे। उन्हें वह प्रायः पूरे का पूरा बैंक मे जमा कर दिया करती थी। "पर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। मेरी पासबुक बॅगले में पड़ी हुई है। केवल उसे किसी तरह ले आने का प्रश्न है। पर अब जाये कौन और पाये कैसे! क्योंकि..." और उस घुप अँधेरे मे आशा की जो एक क्षीण चिनगारी उसे दिखाई दी थी वह तत्काल बुझ गयी।

"तब क्या होगा राजीव बाबू!" अत्यंत हताश भाव से सुनन्दा ने कहा। "दो प्राणियो का गुजारा इस तरह कब तक हो सकेगा!" और वह अपने गाल पर हाथ रखकर सिर झुकाये बैठ गयी।

उनतीसवाँ परिच्छेद

सुनंदा की अतलव्यापी निराशा ने राजीव की सारी अंतरात्मा को इस तीव्रता से झकझोर दिया कि उसकी समस्त भीतरी शक्तियाँ पूरे प्रवेग से उभर आयीं। वह शांत और स्थिर भाव से मुसकराता हुआ बोला—"यदि प्रारम्भ ही मे इस छोटी-सी समस्या से हम लोग घबरा जायें, सुनन्दा, तो जिस महत् उद्देश्य और ऊँचे लक्ष्य को सामने रखकर तुम घर से बाहर निकल पड़ी हो वहाँ तक पहुँचने में हमें असंख्य युग बीत जायेंगे।"

"पर तुम्हीं ने तो मुझे सिखाया है, राजीव बाबू, कि जीवन की प्रतिदिन की कठोर यथार्थता की उपेक्षा करने से काम न चलेगा। उसे यथारूप स्वीकार करना होगा।"

"ठीक है। पर मैं तुमसे उसकी उपेक्षा करने के लिये कहाँ कह रहा हूँ। मैं यही कहना चाहता हूँ कि उससे घबराओ मत, उसे यथारूप स्वीकार करो, और जितना कुछ भी उपाय, परिस्थिति को देखते हुए, संभव हो सकता है पूरी शक्ति से उसका उपयोग करने का प्रयत्न करो। इसके लिये सबसे पहली आवश्यकता इस काम की है कि परिस्थिति को खूब अच्छी तरह सोच लो और समझ लो। तुम अब घर से बाहर निकल पड़ी हो और जीवन के परिपूर्ण संघर्ष के बीच मे आ कूदी हो। अब फिर उसी पुराने घेरे के भीतर लौट चलने की बात, जहाँ तक मैं सोचता हूँ, तुम्हारे मन में नही उठेगी। और यह भी किसी प्रकार उचित नहीं है कि तुम संघर्ष को एक बार स्वीकार कर चुकने के बाद तनिक-तनिक सी रुकावटों और अवरोधों के कारण जड़वत् बैठी रहो। अब स्थिति यह है कि अभी तत्काल ही यह संभव नहीं है कि तुम स्वयं अपने हाथ-पैर के बल पर, मजदूरी या और किसी प्रकार की नौकरी द्वारा स्वयं अपने लिये अपने भोजन-वस्त्र का खर्चा जुटा सको। रहा मै। मेरी स्थिति से तुम अपरिचित नहीं हो। दिन-भर खटने के बाद ढाई रुपया रोज कमाता हूँ। उनमे से कम से कम खर्च करने, केवल एक ही बार खाने पर भी आठ दस आना रोज निकल जाता है। बीस रुपया प्रति मास के हिसाब से, बड़ी मुश्किल से, एक भले आदमी की

सहायता से, ये कमरे किराये पर मिले हैं। प्रायः बारह आना रोज इस मद मे निकाल लो। अब बचता है एक रुपया। बीच मे कोई और फुटकर खर्च न आये तो मै पूरे का पूरा वह एक रुपया बचा लेता हूँ। मेरा ऐसा खयाल है कि अगर हम लोग ढंग से चलें तो इतने मे दो प्राणियो का निर्वाह मजे मे हो सकता है, कभी कभी रूखा-सूखा खाकर और कभी केवल चना चबेना करके काम चलाया जा सकता है। और बीच मे एक-आध दिन, अगर इच्छा हो तो, रबड़ी और मालपुआ भी खा सकते है। पर अगर तुम यह कहो कि अभी तत्काल बाजार से एक महीने का पूरा सामान, नये बर्तन, अँगीठियाँ और कोयले लाकर रख दूँ तो यह संभव नही है। धीरे-धीरे वह भी हो जायगा। इसलिये अभी से व्यर्थ की चिंता करने से कोई लाभ न होगा।"

"अच्छी बात है", आश्वस्त होकर सुनन्दा ने कहा। "कल से मेरे लिए बहुत-सारा चना ला देना। उसे कभी भिगोकर मै छौंक लिया करूँगी, कभी उसे सूखा ही भूँज लिया करूँगी और कभी उसी को पिसवाकर एकाध रोटी अपने लिये बना लिया करूँगी। इतने से मेरी गुजर अच्छी तरह हो जायगी। तुम्हे मै अपने हाथ से गेहूँ की रोटी या पराठा खिलाये बिना न मानूँगी। उसके साथ कम से कम दो किस्म के साग तो चाहिये ही। और पापड़ और थोड़ा अचार भी ....."

"और रबड़ी और मलाई भी। मोहनभोग और रसगुल्ला भी।" कहकर राजीव ठहाका मार कर हँस पड़ा।

"जाओ, तुमको सब समय ठठोली सूझती है!" कहकर

सुनन्दा अपनी भौहों को कुछ टेढ़ा करके मुसकराने लगी। बड़े दुलार से बोली—"सच, तुम्हे अपने मन की चीजें अपने हाथ से बनाकर खिलाने की इच्छा मेरी बहुत दिनों से है।"

"परत-पर-परत वाला परॉठा एक दिन तुमने खिलाया तो था, भूल गयी हो? किसी के भीतर पिट्ठी, किसी के भीतर विचित्र मसाले, कोई एकदम खाली।"

उस दिन की सुमधुर स्मृति से सुनन्दा का चेहरा खिल उठा। पर उसके साथ ही दूसरी स्मृतियाँ उभर आयी, जो किसो भी हालत मे सुखद नहीं थीं। इसलिये वह मन मानकर चुप रही।

बहुत देर तक दोनो बैठे रहे और इस सम्बन्ध में तरह-तरह की योजनाएँ बनाते और बिगाड़ते रहे कि कम खर्च मे, अधिक से अधिक संभव सुचारुता से, कैसे दो व्यक्तियों का निर्वाह हो सकेगा।

जब अँधेरा हुआ तब राजीव ने दोनो कमरों की बत्ती जला दी और स्वयं सुनन्दा से कहकर कचौड़ियाँ लाने के लिए बाजार चला गया। उसके चले जाने पर सुनन्दा को यह अनुभव करके आश्चर्य, और हर्ष भी, हुआ कि उसके मन मे उस एकदम अपरिचित और तंग गली के घेरे के भीतर बंद मकान मे रात के समय अकेले में भी तनिक भय या शंका की भावना नही जग रही है। "इसका अर्थ यह है," उसने मन-ही-मन, अपने-आप से कहा "कि मै अपने अनजान में ही नयी परिस्थिति का सामना करने के लिये अपने भीतर शक्ति बटोरने मे धीरे-धीरे सफल होती जा रही हूँ।"

कोई काम हाथ में न होने से उसके प्रतिदिन के अभ्यास

मे रुकावट पड़ रही थी। राजीव के कमरे में जाकर वह समय काटने के लिए कोई संवादपत्र ढूँढने लगी। संसार की हलचलो के प्रति आज पहली बार उसके मन मे कुतूहल जगा था। एक कोने मे उसने कमरे की सफाई करते समय स्वयं कुछ संवादपत्र बटोर कर रख दिये थे। उन्हीं में से एक को उसने उठाया। उसे उठाते ही एक बंद लिफाफा नीचे गिर पड़ा। कोई काम की चीज़ तो नहीं गिरी है यह जानने के लिए वह नीचे झुकी। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने लिफाफे पर अपना नाम लिखा हुआ देखा। अक्षर कुछ परिचित से लगते थे। राजीव के यहाँ उसके नाम का लिफाफा कब और कैसे आया, किसने उसे भेजा, यह रहस्य-जाल उसकी समझ ही में न आया। काँपते हुए हाथों से उसने लिफाफा खोलना चाहा। पर लिफाफा मोटे कागज का था और अच्छी तरह चिपकाया गया था। सुनन्दा की उत्सुकता प्रतिक्षण जोर मारती चली जा रही थी। उसने पूरी ताकत से उसका एक कोना फाड़ डाला और उसके भीतर उंगली डालकर लिफाफा आर-पार चीर डाला। मुँह से फूँक मार कर लिफाफे का मुँह खोला और फिर उसके भीतर का कागज निकालने लगी। कागजों का एक पुलिंदा सा लगा। बाहर निकाल कर खोल कर देखा तो एक कागज के भीतर लपेटे हुए सौ सौ रुपये के कई नोट थे। गिना तो पन्द्रह निकले। साथ मे एक छोटा-सा चिट था, जिसमे लिखा था—"बुआ, यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो। भेंट न मानो तो कर्ज ही सही। राजीव बाबू को जीवन में जब भी सुविधा हो वापस कर सकते हैं—तुम्हारी प्रमीला।"

सुनन्दा भ्रांत अवस्था मे एक हाथ मे खाली लिफाफा और दूसरे हाथ मे नोटों का पुलिदा लिये खड़ी रह गयी। जब चैतन्य हुआ तब सोचने लगी कि इन फेंके हुए अखबारो के भीतर वह लिफाफा कहाँ से आ गया ? वह राजीव की प्रतीक्षा में, अनमने भाव से उसकी खटिया पर जाकर बैठ गयी।

जब राजीव कचौड़ियो का दोना लेकर लौटा तब उसके मुख पर एक उल्लास चमक रहा था। आते ही बोला—"संयोग से गरम गरम कचौड़ियाँ मिल गयी, सुनन्दा। लो, जल्दी खाओ, ठंढा न होने दो। क्यो, तुम तो सोच मे पड़ गयी हो। क्या बात है ? हाथ मे यह कागज कैसा है ?"

"तुम्ही देखो और पढ़ो", कहकर सुनन्दा ने चिट सहित नोटों का पुलिदा उसकी ओर बढ़ा दिया। दोने को नीचे रखकर राजीव ने आश्चर्य से उन नोटो को हाथ मे लेकर देखा और देखता रह गया।

"कहाँ से आये ?" उसने भ्रांत दृष्टि से पूछा।

"चिट पढ़ लो।"

राजीव ने चिट पढ़ा और पढ़ते ही उसे याद आया कि प्रमीला ने जाते समय उसके हाथ मे एक लिफाफा दिया था जिसे वह दूसरी ही बातो मे उलझे रहने के कारण भूल गया था और अन्यमनस्क अवस्था मे न जाने कहाँ रख दिया था। सुनन्दा को जब उसने यह बात बताई तब सुनंदा समझ गई कि कूड़ा बटोर जब उसने सब अखबार और कागज एक कोने मे कर दिये थे तब लिफाफा भी उन्हीं के साथ चला गया होगा।

"पर इन रुपयों का होगा क्या ? इन्हें स्वीकार करना चाहिये या नहीं ? चिट पढ़ा तुमने ?" सुनन्दा ने पूछा।

"हाँ पढ़ लिया है। तुम जैसा उचित समझो वैसा करो। यह प्रमीला के और तुम्हारे बीच के सम्बन्धों का प्रश्न है। केवल एक बात मैं अपने संबंध मे बता दूँ। मुझे जीवन में कभी इतना रुपया चुकाने की सुविधा हो सकेगी, इसकी कल्पना मैं नहीं करता।"

राजीव का सूखा जवाब सुनकर सुनंदा के भीतर एक दूसरी ही प्रतिक्रिया हुई। बोली—"तुम्हारी सुविधा-असुविधा से कुछ नहीं करना है। मैं तो अपनी बात जानती हूँ। मै तुमसे केवल यह जानना चाहती थी कि मुझे यह कर्ज स्वीकार करना चाहिये या नही ? क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि कर्ज यदि पटाना होगा तो मै ही पटाऊँगी। तुमसे इसकी आशा मैं भी नहीं करती।"

"देखो, तुम नाराज़ हो गयी हो सुनन्दा", राजीव ने स्निग्ध भाव से मुसकराकर कहा। "मेरा आशय तुम शायद ठीक से समझी नहीं। मैंने वास्तविकता की ओर तुम्हारा ध्यान खींचा था। न कभी मुझे जीवन में ऐसी नौकरी मिलेगी कि मै अपने वेतन मे से कुछ बचा सकने की स्थिति मे हो सकूँ। और यदि कभी ऐसी स्थिति संभव हो गयी तो भी मैं नही बचाऊँगा—इसलिये कि कुछ बचाने—संचय करने—की प्रवृत्ति मेरे रक्त से मेल ही नहीं खाती। मेरे रक्त के कीटाणु उसका प्राणपण से विरोध करेंगे। रही तुम्हारे स्वीकार करने या न करने की बात। यह बात पारस्परिक व्यवहार और सम्बन्धो पर निर्भर करती है। व्यक्तिगत रूप से मैं स्वीकार न करता। उसने शायद यह

जानकर ही सीधे मुझे नहीं दिया · ”

“मैं तो सोचती हूँ कि मुझे स्वीकार कर लेना चाहिये। इसलिये कि तत्काल ही इनकी आवश्यकता है। मेरे पास कुछ रुपये बैंक मे जमा है। इतने तो होगे ही। यदि प्रमीला कभी आयी तो उससे पासबुक मँगाकर रुपये निकलवा लूँगी।”

“तुम जैसा उचित समझना वैसा करना। पर अभी कचौड़ियाँ तो खा लो। ठंढी हुई जा रही है।” राजीव ने दोना उठाते हुए कहा।

“विश्वास मानो, मुझे तनिक भी भूख नही है। तुम खाओ, मै देखती रहूँगी। मुझे उसी मे सुख मिलता है।”

“तुम नही खाओगी तो मै एक टुकड़ा भी मुँह मे नहीं रखूँगा, यह बताये देता हूँ।” दृढ़ स्वर मे राजीव बोला।

“तब लाओ, थोड़ा सा मैं चख लूँगी।”

दोनो खटिया के नीचे बिछी दरी पर बैठ गये, और खाने लगे।

“वाह, बड़ी अच्छी कचौड़ियाँ हैं।” सुनन्दा ने कहा। “आज तक मैंने कभी बाजार मे बिकने वाला पकवान नहीं खाया था। बराबर घर ही की बनी चीजें खाती रही हूँ। शायद इसीलिये आज ये इतनी स्वादिष्ट लग रही हैं।”

राजीव भी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा मे खा रहा था। उसने कहा—“आज मेरे लिये भी तुम्हारे साथ बैठकर खाने का यह पहला ही अवसर है, सुनन्दा। शायद इसी कारण आज की कचौड़ियाँ मुझे भी इतनी मीठी लग रही है। इधर रोज यही

खाता हूँ, पर ऐसा स्वाद तो कभी नहीं मिला।"

जब दोना खतम हो चुका तब राजीव बोला—"मै और ले आता हूँ।" और वह उठा।

"मै हाथ जोड़ती हूँ, मेरे लिये अब और कुछ न लाना। हाँ अपने लिये अवश्य ले आओ। तुम्हारा हिस्सा तो सब मै ही खा गयी।"

"मेरा भी पेट भर चुका है। तब रहने दो।" कहकर राजीव दोना और पत्तो उठा कर बाहर फेंकने चला गया।

तीसवाँ परिच्छेद

हाथ-मुँह धोकर सुनन्दा दूसरे कमरे मे जाकर शाल ओढ़कर कालीन पर बैठ गयी। जब राजीव आया तब अपने साथ एक छोटी सी खटिया भी लेता आया। जिस कमरे मे सुनन्दा बैठो थी वहीं एक कोने पर खटिया को रखता हुआ बोला—"मैंने सोचा था, न जाने कितनी परेशानी उठानी पड़ेगी। पर विश्वास मानो, बड़ी आसानी से मिल गयी। पड़ोस मे दो छात्र एक कमरा किराये पर लेकर रहते हैं। उनके पास एक खटिया फाजिल थी। उन्होने बड़ी प्रसन्नता से मुझे दे दी। पता नहीं, मेरे प्रति वे क्यो श्रद्धालु है। मुझे देखते ही सम्मानपूर्वक हाथ जोड़ने लगते है।"

"शायद सोचते होगे कि कभी उनकी कोई कुर्सी-वुर्सी टूट जाय तो तुम तत्काल मरम्मत कर दोगे।" कह कर सुनन्दा हँसी। फिर बोली—"पर खटिया के लिये तुमने व्यर्थ उनका अहसान लिया। मै इस पर नही सोऊँगी। मै तुमसे पहले ही कह चुकी

हूँ कि मैं इसी कालीन के ऊपर सोऊँगी। अपने इस निश्चय से मै टस से मस नही होने की, यह तुम समझ लो।"

"पर सीमेंट पर सोने की आदी तुम नहीं रही हो, इसलिये वात या और कोई दूसरी व्याधि हो जाने का खतरा है।"

"होने दो!" संक्षिप्त किंतु दृढ़ स्वर मे सुनन्दा ने कहा।

"अच्छी बात है। तब इसी कालीन के ऊपर ही तुम्हारा गद्दा बिछाये देता हूँ।"

"न न न! वह सब मुझे कुछ नही चाहिये। चाहो तो कालीन भी उठा लो। मै केवल दरी पर ही बड़े सुख से सोऊँगी।"

"इतनी बड़ी तपस्या का व्रत तुमने अभी से ले लिया, सुनन्दा!" राजीव के स्वर मे व्यंग था या हलके परिहास का छींटा, यह ठीक से कहा नही जा सकता।

पर सुनन्दा ने उसे सहज रूप मे लिया। बोली—"यदि अभी से आदत न डालूँगी, राजीव बाबू, तब भविष्य में जब उससे भी विकटतर परिस्थितियाँ आयेंगी, उनके लिये कैसे तैयार हो पाऊँगी! इतने दिनों तक तुमने जो सिखाया पढ़ाया, आज उसी को तुम वापस ले लेना चाहते हो!"

सुनन्दा ने जब यह बात कही तब उसके मुख पर कृत्रिमता का लेश भी नही था। सुदृढ़ निश्चय-भरा एक गहन-गंभीर भाव उसकी आँखो मे वर्तमान था।

राजीव कुछ देर तक मौन निरीक्षण की-सी स्थिति मे उसकी ओर देखता रहा। फिर गंभीर भाव से बोला—"मुझ से गलती हुई, सुनन्दा, क्षमा करना।"

राजीव खटिया को वापस करने चला गया। जब तक वह लौटा तब तक सुनंदा ने एक पुस्तक आले पर से उठाकर कालीन पर लेटकर ऊपर से केवल शाल ओढ़ कर उसे पढ़ना शुरू कर दिया था। पुस्तक वही थी 'वीम्यन इन बांडेज।' कई दिनो से उस पुस्तक की ओर वह चुम्बक की तरह आकर्षित हो रही थी। अब उसे इतमीनान से, ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहती थी।

पहला परिच्छेद खोलकर तन्मयता से, पूरी दिलचस्पी के साथ, पढ़ने लगी। जब राजीव लौटकर आया तब उसने सुनन्दा को पुस्तक-पाठ मे तल्लीन देखकर विघ्न डालना उचित नहीं समझा। दरवाजा भीतर से धीरे से बन्द करके वह स्वयं भी लेटने की तैयारी करने लगा। वह कुछ थकावट सी अनुभव कर रहा था। पर सहसा एक बात की याद आई। सुनन्दा की तन्मयता मे विघ्न डालते हुए वह उसके कमरे मे जाकर बंडल खोलने लगा।

"क्या चाहिये ?" सुनन्दा ने पुस्तक से आँखें हटाते हुए कहा।

"तुम्हारे ओढ़ने के लिए लिहाफ निकाल रहा हूँ। कुछ बिछाओगी नही तो न सही, पर ओढ़ने की आवश्यकता तो पड़ेगी ही।"

"न, न, मैं कुछ ओढ़ूँगी भी नहीं," पूरे प्रतिरोध के साथ सुनन्दा बोली। "यह शाल मेरे लिए ज़रूरत से ज्यादा ही है, कम नहीं।"

"तुम्हारा यह हठ बड़ा विचित्र है, सुनन्दा," तनिक खीझकर राजीव बोला। "लखनऊ की सर्दी कैसी विकट होती है, यह जानते हुए भी तुम जिद कर रही हो। अगर बीमार पड़ गई तो सारी साधना निरर्थक हो जायगी।"

पर उसकी खीझ का कोई प्रभाव सुनन्दा पर नही पड़ा। "मै हर्गिज़ बीमार नही पड़ूँगी, तुम देख लेना।" उसने सस्नेह मुसकराते हुए कहा।

'तब ठीक है," कहकर राजीव ने फिर बंडल बाँध दिया। फिर बोला—"अच्छा, तो मैं अब जाकर सोने की तैयारी करता हूँ। तुम्हे अब किसी चीज़ की जरूरत तो नहीं है?"

"किसी चीज़ की नहीं। तुम जाकर निश्चित सो रहो।"

राजीव के चले जाने के बाद बहुत देर तक सुनन्दा पुस्तक पढ़ती रही। ऐसा सुख शायद एक पूरे युग के बाद उसे मिला होगा। जब वह तल्लीन होकर पढ़ रही थी तब उसके मुख पर उद्दीप्त उल्लास चमक रहा था, जैसे जिस पथ के लिए वह इतने वर्षों से भटक रही थी, जिसे राजीव के समझाने पर ठीक से समझ नहीं पा रही थी, वह उसके आगे प्रत्यक्षवत् हो गया हो। केवल इतना ही नहीं। पथ का थोड़ा बहुत कल्पनात्मक आभास मिलने पर भी उस कंटकाकीर्ण पथ पर कैसे पाँव रखा जाय और चला जाय, इस समस्या को वह इतने दिनो तक सुलझा ही नहीं पा रही थी। उस पुस्तक के पढ़ने से उसे लगा कि वह बड़ी आसानी से उन कटकों को पार कर सकती है। पुस्तक मे इस उपाय का समुचित निर्देशन किया गया हो, ऐसा नहीं, पर जो वातावरण लेखक ने उत्पन्न कर दिया था वह जैसे सारी उलझी हुई समस्याओ को अपने-आप सुलझाता चला जाता था।

जब दो बजे का घंटा कही से सुनायी दिया तब सुनन्दा ने पुस्तक रख दी। उसकी आँखें थक गयी थी। बत्ती बुझाकर

वह फिर लेट गई और सोने का प्रयत्न करने लगी। चारों ओर परिपूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था। पर सुनन्दा को नींद आते आते रह जाती थी। जिस नयी परिस्थिति मे वह विचित्र चक्करो के फेर से आ पहुँची थी वह ऐसे आकस्मिक और अप्रत्याशित रूप से आई थी, कि वह उस पर जितना ही सोचती थी उतना ही उसे आश्चर्य होता था। और सबसे बड़ा आश्चर्य उसे इस बात से हो रहा था कि उसने इतनी आसानी से, ऐसे सहज भाव से, उस परिस्थिति को स्वीकार कर लिया, जिसके सम्बन्ध में कोई कल्पना ही कभी उसके सचेत मन में नहीं उठ सकती थी। केवल इतना ही नही, उस नयी परिस्थिति मे न तो वह दुःखी थी न उदासीन ही। पुस्तक को पढ़ते हुए वह जिस सुख और उल्लास का अनुभव कर रही थी वह उसके लिये एकदम अपूर्व था। जिस परिस्थिति मे किसी भी कारण से इतने उल्लास का अनुभव हो सकता हो उसे किसी भी हालत मे संकटपूर्ण नहीं कहा जा सकता। तब क्या यही मुक्ति है ? मुक्ति के जिस श्रेयात्मक सुख का वर्णन ज्ञानी लोग करते रहते है क्या उसी का अनुभव आज वह कर रही है ?

सोचने-सोचते वह दूसरे पहलू पर आ गयी। कैसे यह सब संभव हो गया ? प्रमीला कि 'खामखयाली' और विचित्र सूझ इतना बड़ा जादू का सा करिश्मा कैसे दिखा गयी ? और वह बॅगले की सब छोटी-मोटी घटनाओ और बातो की पिछली स्मृतियो को कुरेद कुरेद कर नये सिरे से उनका विश्लेषण करने का प्रयत्न करने लगी। बिलसिया के कूटचक्र, भाभी और भैया

के मनोभाव मे परिवर्तन, नौकरो का बदला हुआ रुख, पड़ोस की स्त्रियो की छींटेबाजी—यह सब केवल इसलिए सम्भव हुआ कि वह राजीव बाबू को बीच-बीच मे चाय और काफी पिलाया करती थी और उनसे खुलकर बातें किया करती थी। कितने बड़े झूठ ने कैसी आसानी से इतने सब लोगो पर विजय पा ली। यह सब इस बात का प्रमाण है कि समाज का कितना घोर पतन दीर्घकाल से प्रचलित मिथ्याचार के फलस्वरूप हो चुका है!

"तब इन मिथ्याचारियो से सम्बन्ध टूटने के कारण किसी बात की ग्लानि की आवश्यकता ही क्या है! प्रमीला की बात मुझे सिर-माथे रखनी चाहिये!" उसने मन-ही-मन अपने को प्रबोध देते हुए कहा।

सहसा उसका ध्यान इस बात की ओर गया कि जानकी उसकी बगल मे नही है। और तब उसने जाना कि बँगले को छोड़ने से ग्लानि और दुःख का कोई भी प्रत्यक्ष कारण न होने पर भी जो एक अव्यक्त वेदना रह-रहकर इतनी देर तक उसके हृदय में चुभ रही थी वह क्या थी। इतनी देर तक वह नयी स्थिति की वज्र कठोर यथार्थता को स्वीकार करने और उसका सामना करने के प्रयत्नो मे ऐसी उलझी हुई थी कि जानकी का ध्यान ही उसके सचेत मन मे स्पष्ट रूप से नही आया था। जानकी की याद आते ही एक मार्मिक ममतामयी करुण वेदना ने उसके भीतर उमड़कर उसके हृदय को तल से सतह तक हिलकोर दिया। काफी देर तक वह शाल से आँखें पोछती रही।

जब वह खूब रो चुकी, और मन हलका हो गया, तब अपने

वह फिर लेट गई और सोने का प्रयत्न करने लगी। चारों ओर परिपूर्ण सन्नाटा छाया हुआ था। पर सुनन्दा को नींद आते आते रह जाती थी। जिस नयी परिस्थिति मे वह विचित्र चक्करो के फेर से आ पहुॅची थी वह ऐसे आकस्मिक और अप्रत्याशित रूप से आई थी, कि वह उस पर जितना ही सोचती थी उतना ही उसे आश्चर्य होता था। और सबसे बड़ा आश्चर्य उसे इस बात से हो रहा था कि उसने इतनी आसानी से, ऐसे सहज भाव से, उस परिस्थिति को स्वीकार कर लिया, जिसके सम्बन्ध मे कोई कल्पना ही कभी उसके सचेत मन मे नही उठ सकती थी। केवल इतना ही नहीं, उस नयी परिस्थिति मे न तो वह दुःखी थी न उदासीन ही। पुस्तक को पढ़ते हुए वह जिस सुख और उल्लास का अनुभव कर रही थी वह उसके लिये एकदम अपूर्व था। जिस परिस्थिति मे किसी भी कारण से इतने उल्लास का अनुभव हो सकता हो उसे किसी भी हालत मे संकटपूर्ण नहीं कहा जा सकता। तब क्या यही मुक्ति है ? मुक्ति के जिस श्रेयात्मक सुख का वर्णन ज्ञानी लोग करते रहते है क्या उसी का अनुभव आज वह कर रही है ?

सोचने-सोचते वह दूसरे पहलू पर आ गयी। कैसे यह सब संभव हो गया ? प्रमीला कि 'खामखयाली' और विचित्र सूझ इतना बड़ा जादू का सा करिश्मा कैसे दिखा गयी ? और वह बॅगले की सब छोटी-मोटी घटनाओ और बातो की पिछली स्मृतियो को कुरेद कुरेद कर नये सिरे से उनका विश्लेषण करने का प्रयत्न करने लगी। बिलसिया के कूटचक्र, भाभी और भैया

के मनोभाव मे परिवर्तन, नौकरो का बदला हुआ रुख, पड़ोस की स्त्रियो की छींटेबाजी—यह सब केवल इसलिए सम्भव हुआ कि वह राजीव बाबू को बीच-बीच में चाय और काफी पिलाया करती थी और उनसे खुलकर बातें किया करती थी! कितने बड़े झूठ ने कैसी आसानी से इतने सब लोगो पर विजय पा ली! यह सब इस बात का प्रमाण है कि समाज का कितना घोर पतन दीर्घकाल से प्रचलित मिथ्याचार के फलस्वरूप हो चुका है! "तब इन मिथ्याचारियो से सम्बन्ध टूटने के कारण किसी बात की ग्लानि की आवश्यकता ही क्या है! प्रमीला की बात मुझे सिर-माथे रखनी चाहिये!" उसने मन-ही-मन अपने को प्रबोध देते हुए कहा।

सहसा उसका ध्यान इस बात की ओर गया कि जानकी उसकी बगल मे नही है। और तब उसने जाना कि बँगले को छोड़ने से ग्लानि और दुःख का कोई भी प्रत्यक्ष कारण न होने पर भी जो एक अव्यक्त वेदना रह-रहकर इतनी देर तक उसके हृदय में चुभ रही थी वह क्या थी। इतनी देर तक वह नयी स्थिति की वज्र कठोर यथार्थता को स्वीकार करने और उसका सामना करने के प्रयत्नो मे ऐसी उलझी हुई थी कि जानकी का ध्यान ही उसके सचेत मन मे स्पष्ट रूप से नही आया था। जानकी की याद आते ही एक मार्मिक ममतामयी करुण वेदना ने उसके भीतर उमड़कर उसके हृदय को तल से सतह तक हिलकोर दिया। काफी देर तक वह शाल से आँखें पोछती रही।

जब वह खूब रो चुकी, और मन हलका हो गया, तब अपने

भीतर से ही वह सांत्वना का स्वर निकालने लगी । "पर इसके लिये मैं दोषी नहीं हूँ," उसने मन-ही-मन कहा, "और फिर बच्चे बहुत जल्दी भूल भी जाते हैं । दो महीने बाद अगर मै उससे मिल पाऊँ तो वह तब मुझे पहचानेगी तक नहीं। फिर वह अपनी माँ की और घर की मालकिन बिलसिया की देखरेख मे अच्छी तरह रहेगी और बिलसिया के साथ ही आराम से सोयेगी भी। दो महीने क्या, दो ही दिन में मुझे भूल जायेगी ! इस स्वार्थ-भरे संसार मे किसके लिये किसे अधिक समय तक रोने की फुर्सत है, और क्यो कोई रोवे !"

इसी तरह की कल्पनाओं मे उलझते हुए प्रायः चार बजे उसकी आँखें लग पायीं।

इकतीसवाँ परिच्छेद

जब राजीव सुबह उठा तब सुनंदा बेखबर सोयी हुई थी । जीवन में शायद पहली बार वह इस तरह फर्श पर, जाड़े के दिनों में बिना गद्दे और लिहाफ के, सोई होगी । सारे शरीर पर शाल लपेटे हुए थी, केवल सिर का भाग आधा खुला था । बिखरे बालो की दो-एक पतली लच्छियाँ कपाल पर और गालों पर लहरा रही थीं । मुख पर एक शांत, संयत, तापस-भाव वर्तमान था । श्रद्धा और संभ्रम से राजीव की इच्छा हुई कि उसके चरणों पर गिरकर माथा झुका ले । यह अदम्य भावुकता आज न जाने कितने वर्षों बाद उसके भीतर उमड़ी थी।

राजीव कुछ देर तक पुलक-गद्गद भाव से, स्थिर दृष्टि से

सुनन्दा की ओर देखता रहा। उसके बाद एक लंबी साँस खींच-कर नहाने चला गया।

कुछ देर बाद जब नहा-धोकर, कपड़े बदलकर लौटा तब सुनन्दा जग उठी थी। अनमने भाव से शायद अँगड़ाई लेने ही जा रही थी कि राजीव की आहट पाकर रुक गयी और सँभल कर बैठ गयी। बोली—"रात मे देर तक जागती रह गयी थी।"

"मैं तो पहले ही कहता था कि इस सीमेंट पर ·····"

"नहीं, यह बात नहीं थी। मै देर तक किताब पढ़ती रह गयी। उसके बाद इधर-उधर की बातें सोचती रही। फिर एक-दम बेखबर सो गयी। जैसे घोड़े बेच आई होऊँ।"

"घोड़े रहे हो या गधे, तुम उन्हे जरूर बेच आई हो, इस बात पर मै भी विश्वास कर सकता हूँ।" राजीव ने मुसकराते हुए कहा।

"अच्छा, अब यह तो बताओ, नहाने-बहाने का कोई प्रबंध तुम्हारे यहाँ है या नहीं? लोटा-बाल्टी तो तुम्हारे यहाँ मैने कहीं देखी नहीं।"

"आज तो किसी तरह सीधे नल के पानी से काम चला लो। कल देखी जायगी।"

सुनन्दा शाल फेंककर उठी। राजीव बोला—"बिना बंडल खोले तुम्हारा काम चल ही नहीं सकता। दूसरी साड़ी तक तुम्हारे पास नहीं है। और तौलिया भी—" और वह बंडल खोलने लगा। जब खोल चुका तब एक साड़ी और एक तौलिया निकालकर उसने सुनन्दा को दिया। सुनन्दा उन्हें लेकर गुसल-

खाने की तरफ चली गयी।

अखबार वाला तड़के ही अखबार दे गया था। राजीव उसे खोलकर पढ़ता रहा। जब सुनन्दा नहा-धोकर आई तब उसने अखबार उठाकर एक तरफ रख दिया और बोला—"मुझे कारखाने मे जल्दी ही पहुँचना होता है। इसलिए मैं नाश्ता करके अभी चल दूँगा। तुम्हारे लिये कचौड़ियाँ लाकर रख जाऊँगा। तुम चाहो तो अभी खा लेना या बाद मे फुर्सत से। दिन भर तुम्हे अकेले रहना होगा। मैं आशा करता हूँ तुम उकताओगी नही। मै झट से चाय और नाश्ता ले आता हूँ।" कहकर वह जैसे भगा। सुनंदा का कोई उत्तर सुनने के लिए भी उसके पास समय नही था।

सुनन्दा मन-ही-मन मुसकराई। उसके हाथ मे जो गीली धोती थी उसे दीवार मे ठुकी हुई कीलो के सहारे बाँधकर उसने किसी तरह फैलाया। उसके बाद राजीव की खटिया पर बैठकर अखबार खोलकर पढ़ने लगी।

थोड़ी देर बाद राजीव एक पत्तल मे गरम-गरम जलेबियाँ लिये आ पहुँचा। उसके पीछे वही कल वाला लड़का एक ट्रे में चाय का बर्तन और दो प्याले लिये हुए आ रहा था।

"नीचे बैठो! गरमागरम की बहार है।" खोचेवाले की नकल उतारता हुआ राजीव बोला।

सुनन्दा उसका लड़कपन देखकर खिलखिला उठी। दोनो नीचे बैठ गये। सुनन्दा ने आज राजीव का साथ देने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। वह जान चुकी थी कि यदि वह साथ नहीं देगी तो राजीव के गले के नीचे एक टुकड़ा भी नहीं उतर

पायेगा। इसलिए इच्छा न होने पर भी उसने एक गरम जलेबी उठाकर मुँह मे डाली। मुँह मे डालते ही उसे ऐसा रस मिलने लगा जैसा केवल बचपन मे ही उसे मिल पाया होगा। आज वर्षों बाद उसे जलेबी खाने का अवसर मिला था। बोली "वाह! सचमुच बहुत ही बढ़िया और रसदार जलेबी है। यह तुम्हारे साथ की विशेषता है या संयोग ही है कि तुम्हारी लाई हुई सभी चीजें बहुत ही स्वादिष्ठ लगने लगती है।"

राजीव मुसकराया, फिर उसके बाद तत्काल ही गंभीर हो गया। बोला—"कारण बिलकुल दूसरा है, सुनन्दा, जिस पर एकांत मे विचार करने पर तुम स्वयं जान जाओगी।"

"क्या है, तुम्ही बताओ न।"

"बात यह है कि तुम न चाहने पर भी जिन बन्धनो से मुक्त होकर यहाँ आयी हो, उन्होने केवल तुम्हारी आत्मा को ही बंदी नहीं बना रखा था, बल्कि तुम्हारे मन को, तन को और इंद्रियों तक को बाँध रखा था। किसी भी चीज़ मे तुम मुक्त निर्द्वन्द्व और स्वच्छंद भाव से रस ही नहीं ले पाती थीं। उन बन्धनो को तोड़ने पर अब छोटी से छोटी चीज़, साधारण से साधारण बात भी तुम्हारे आगे एक अभिनव रूप मे आती है।"

"हो सकता है," उदासीनता से सुनन्दा ने कहा। "पर मै एक बात सोच रही हूँ। मुझे लगता है कि बढ़ईगीरी से खोंचे-वालो का पेशा कही अच्छा है। तुम यही पेशा क्यो नहीं अख्तियार कर लेते? मुझे अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ बनाना आता है। मैं मिठाइयाँ बनाऊँगी, तुम उन्हें गली-गली मे बेचते

रहना। खोचेवालो की तरह लटके के साथ आवाज निकालना तुम जानते ही हो।" कहकर वह फिर खिलखिला उठी। राजीव ने भी ठहाका मारा।

"नही, इस समय मै हँसी नहीं करती", चाय का प्याला मुँह से लगाती हुई सुनन्दा बोली। "इस पर विचार करके देखना। अगर तुम चला सको तो बढ़ईगीरी से यह लाख दर्जा अच्छा रहेगा, तुम देख लेना। सबसे बड़ी बात इसमें यह होगी कि तुम्हे किसी की नौकरी पर निर्भर नही रहना पड़ेगा। दूसरी बात यह होगी कि तब तुम अधिक समय तक मुझसे दूर नही रहने पाओगे। सुबह-शाम फेरी लगाकर दिन मे घर ही रहोगे। क्यो ?"

उसकी गंभीरता देखकर राजीव को आश्चर्य हुआ और साथ ही उसका प्रस्ताव उसे वास्तव में जँचने लगा।

"सचमुच, नौकरी की अपेक्षा यह काम अच्छा रहेगा", उसने कहा। "पर इसके लिये रुपया चाहिए। रुपया कहाँ से आयेगा ?"

"प्रमीला के दिये हुए रुपये आखिर है किस मर्ज की दवा ? इस काम को चला पाओगे तो तुम जल्दी कर्ज पटा भी सकोगे।"

"अच्छी बात है", चाय समाप्त करता हुआ राजीव बोला। "इस पर मै एकांत मे विचार करूंगा। इस समय मै चलता हूँ। हाँ, पहले तुम्हारे लिए कचौड़ियाँ लाकर रख देता हूँ।" कहकर वह बाहर निकल गया। चायवाला छोकरा भी प्याले और बर्तन बटोर कर चलता बना।

दस मिनट बाद राजीव कचौड़ियों का दोना लेकर लौटा।

"लो, इसे सँभाल लो," कहकर उसने सुनन्दा के हाथ में उसे थमा दिया और फिर 'मै जल्दी ही लौटने की कोशिश करूँगा, तुम घबराना मत" कहकर चल दिया।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

राजीव के चले जाने के बाद सुनन्दा कुछ देर तक अनमने भाव से राजीव के पलँग के नीचे वाली दरी पर ही बैठी रही। उसके बाद उठी और दरी झाड़कर झाड़ू लेकर उसने कमरा साफ किया। फिर अपने कमरे की भी सफाई की। उसके बाद कलवाली पुस्तक उठाकर कालीन के ऊपर बैठकर पढ़ने लगी। पुस्तक के केवल दस ही पृष्ठ शेष रह गये थे। उन्हे समाप्त करके वह एक तृप्ति का भाव लेकर उठी और उसे पुस्तकोवाले आले पर रखकर कोई दूसरी पुस्तक ढूँढने लगी। विभिन्न पुस्तको को उलटते-पलटते एक हिन्दी की पुस्तक पर उसकी दृष्टि गयी। उसे निकालकर उसने खोला। पहले ही परिच्छेद के पहले पैरे पर उसकी दृष्टि अटक गई। उसमें लिखा था—"नारी, मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ। तुम्हीं सृष्टि की मूल शक्ति हो। तुम महामाया हो, परमा धारणा भी तुम्ही हो। तुमने स्वेच्छा से सहस्रों बंधन स्वीकार करके भी पुरुष की उच्छृंखल, केन्द्रातिग शक्ति को परिपूर्ण विनाश की ओर बहे चले जाने से रोक रखा है। जिस दिन तुम्हारी केन्द्रानुगी शक्ति में विस्फोट मच जायगा उसी दिन सृष्टि मे प्रलय की सहस्रमुखी ज्वालाएँ धधक उठेंगी। हे महामाता! आज तुम्हारी विश्वव्यापी संतान पागलो की तरह महाविनाश

की ओर दौड़ी चली जा रही है। अपनी संरक्षणी शक्ति के पूर्ण प्रयोग द्वारा उसे बचाओ। यह आश्वासन दो कि तुम अपनी केन्द्रानुगी शक्ति मे विस्फोट नहीं आने दोगी……"

सुनन्दा के हृदय में वह काव्यात्मक वाक्यावली झनझना उठी। उसकी दिलचस्पी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। वह बैठ गयी और एकाग्र चित्त से पढ़ने लगी। दूसरे पैरे में लिखा था—"भारतीय संस्कृति की संरक्षिका तुम्हीं हो। युग-युग से इस संस्कृति की दीवारें विजातीय आक्रमणो द्वारा ध्वस्त-विध्वस्त होती रही है। तुम्ही ने उस महामूल्य संस्कृति को परिपूर्ण विनाश से बचाने के लिये उसे बाहर की बिखरी हुई कायरता से घर की सीमा के भीतर लाकर बाँध दिया। घर के इस सुदृढ़ दुर्ग को भेदने की सामर्थ्य विश्व की किसी भी ध्वंसात्मक शक्ति मे नहीं है। आज तुम गृहलक्ष्मी के रूप में उसी चिर-पुरातन भारतीय संस्कृति के अमर प्रकाश का अखंड प्रदीप जलाये हुए हो। तुम धन्य हो! मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ……"

"ठीक है! ठीक है!" सुनन्दा ने मन-ही मन कहा। "यह वही भारतीय संस्कृति है जिसके बीच में रहने का कोई अधिकार मुझे नहीं है; जिसने मुझे हर तरह से विवश करके घर से खदेड़ दिया है—इसलिये कि मैं एकाकिनी थी, निस्सहाय थी और निःस्वार्थ भाव से घर वालो की सेवा कर रही थी; इसलिये कि मैं एक ऐसे पुरुष से पर्दा नहीं करती थी जो अपने विचारो की स्पष्टता और सचाई के कारण समाज मे कहीं भी स्थान पाने में असमर्थ है! भाभीजी और बिलसिया ही इस महान् संस्कृति की प्रधान

संरक्षिकाएँ हैं जो घर-घर मे उसके अमर प्रकाश का अखंड प्रदीप जलाये हुए है ।" एक तीव्र व्यंग की तीखी मुसकान उसके मुख पर सान पर चढ़ी हुई तेज छुरी की तरह झलझला उठी।

पुस्तक को यथास्थान रखकर उसने एक और पुस्तक निकाली 'वीम्यन इन रिवोल्ट ।' यह उसी लेखक की थी जिसने 'वीम्यन इन बांडेज' लिखा था । उसे वह अपने कमरे में ले गयी और कालीन पर बैठकर इतमीनान से पढ़ने लगी । पहले तीन परिच्छेदों में लेखक ने संक्षेप में दिखाया था कि किन परंपरागत बंधनो के चरम सीमा तक कस जाने के कारण आज के युग की नारी उनके विरुद्ध विद्रोहिणी हो उठी है। उसके बाद उस विद्रोह का प्रदर्शन नारियाँ पाश्चात्य देशो में किन-किन रूपों मे कर रही है इसका विस्तृत वर्णन उसने किया था। पुस्तक मे दिखाया गया था कि किन छोटे-छोटे हास्यास्पद कारणों से आज की नारी पति को तलाक देकर, विवाह-बंधन तोड़कर, उस बंधन के फलस्वरूप उत्पन्न बच्चो को आजीवन अनिश्चित स्थिति मे भटकने के लिये छोड़कर, गृहस्थ-जीवन को छिन्न-भिन्न करने मे ही प्रगति समझ रही है । उसकी स्वतंत्रता केवल व्यक्तिगत स्वार्थ और और विलासिता-पूर्ण तथा उच्छृंखल जीवन बिताने की स्वच्छंदता के सिवा और कुछ नही है। लेखक का मत था कि जिन दम घोटने वाली परिस्थितियों में युगों से नारी को जकड़ा जा रहा था उसके विरुद्ध विद्रोह स्वाभाविक था, उसकी स्वतन्त्रता की आकांक्षा स्वाभाविक थी। यदि उस स्वतन्त्रता को उपयुक्त प्रणालियो द्वारा परिचालित किया गया होता तो समाज मे वास्तविक

प्रगति के लक्षण प्रकट होते और मानवीय जीवन के विकास का एक सच्चे अर्थों मे उन्नत स्वरूप सामने आता। पर उस विद्रोह की प्रतिक्रिया आज जिन रूपों में सामने आ रही है वे सच्ची और सहज-स्वाभाविक प्रगति से बहुत दूर है।

सुनन्दा को लगा कि एक ओर भारतीय संस्कृति के नाम पर एक आमूल कृत्रिम संस्कृति का ढकोसला खड़ा करके अत्यंत अनुदार दृष्टिकोण को अपनाया जा रहा है और नारी के चारो ओर वज्रतुल्य अवरोधो को खड़ा किया जा रहा है। उसे 'महा-माया', 'आदिशक्ति' और 'गृहलक्ष्मी' के बनावटी विशेषणो से विभूषित करके ऐसी हीन परिस्थितियों मे रहने के लिये विवश किया जा रहा है जो सच्ची भारतीय सस्कृति को कलंकित करती है। दूसरी ओर स्वतंत्रता के नाम पर नारी स्वयं अपने को ऐसी विकृत और अस्वाभाविक परिस्थितियो मे उलझा रही है जो उसे पुरुषो की दासता से भले ही छुड़ा दे, पर स्वय अपनी ही दासता के सहस्र नागपाशों मे उसे लपेटती चली जा रही है। आत्म-स्वातंत्र्य, जो सब से बड़ा स्वातंत्र्य है, उससे वह कोसों दूर भागती चली जा रही है। "यदि उस स्वतंत्रता का उपयुक्त प्रणालियो द्वारा परिचालन किया गया होता!" पुस्तक के एक वाक्य को मन ही-मन दुहराती हुई वह सोचने लगी। पर वह उपयुक्त प्रणालियाँ क्या हो सकती है? उन दो चरम दृष्टिकोणों के बीच मे कोई मध्यमार्ग सचमुच संभव है क्या? पुस्तक बंद करके वह काफी देर तक सोचती रह गयी। पर किसी निश्चित निर्णय पर न पहुँच सकी। सोचते-सोचते उसकी

आँखें झपने लगी थीं। रात-भर का जागरण अपना प्रभाव दिखाने लगा था। वह शाल ओढ़कर कालीन पर लेट गयी और लेटते ही सो गयी।

जब आँखें खुलीं तब दिन ढल चुका था। पर राजीव अभी तक काम से नहीं लौटा था। सुनन्दा फिर उसी पुस्तक को उठाकर, जहाँ तक पढ़ चुकी थी उसके आगे पढ़ने लगी। पर अब उसका जी उसमें नहीं लग पाता था। शायद जानने योग्य जितनी बातें उसमे थी उन्हें वह जान चुकी थी। दो तीन पन्ने पढ़ने पर उसने पुस्तक उठाकर रख दी। पर खाली बैठना भी अच्छा नही लग रहा था। कुछ देर तक वह इस कमरे से उस कमरे में और उस कमरे से इस कमरे मे बिना किसी उद्देश्य के चक्कर काटती रही। जब उससे भी जी उकता गया तब किवाड़ खोलकर वह बाहर के दरवाजे के चौखटे पर बैठ गयी और गली का दृश्य देखने लगी। गंदी नालियों से शीतकाल मे भी जैसी दुर्गंध उठ रही थी उससे अनुमान लगाया जा सकता था कि गरमियों मे वहाँ क्या हाल होता होगा। सामने नाली के पास ही गंदे और फटे कपड़े पहने हुए कुछ बच्चे गोली खेल रहे थे। वे ऐसी तन्मयता से खेल रहे थे कि लगता था जैसे उनके लिये जीवन की सबसे बड़ी समस्या यही है कि एक गोली से दूसरी गोली का निशाना ठीक कैसे बैठे। सुनन्दा बड़ी दिलचस्पी से उनका खेल देखती रही। बड़े प्यारे-प्यारे मासूम बच्चे थे वे। सुनंदा का जी चाहता था कि उन्हे पास बिठाकर उन्हें प्यार करे, उनकी मीठी-मीठी बातें सुने और फिर उन्हे कुछ मीठी चीजें खाने को दे। पर

न उसके पास मीठी चीजें खिलाने को थीं, न उसे उन अनजान बच्चों को पास बुलाने का साहस ही होता था। वह केवल देख-देखकर खुश हो रही थी। खोचेवाले, तरकारी वाले, जूतों की मरम्मत करने वाले विचित्र-विचित्र आवाजें लगाते हुए उसके सामने से होकर उसकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखते, और कभी-कभी पूछते हुए चले जा रहे थे। सुनंदा को आज वे सब भी परम आत्मीय लग रहे थे। इस्पात की जिस सुदृढ़ चहारदीवारी के घेरे-पर-घेरे के भीतर से वह पिंजर-मुक्त पक्षी की तरह जीवन में आज पहली बार बाहर निकली थी उसने इतने दिनों तक घर के बाहर की ओर से उसकी आँखें ही जैसे एकदम बंद कर रखी थीं। आज जब उसकी आँखें खुलीं तब वह सारे संसार को मुक्त और स्वतन्त्र पा रही थी। उस बंद और गंदी गली के भीतर का जीवन भी उसे स्वच्छंद और निर्बाध लग रहा था। बत्तखों का एक दल पूर्व के छोर से आया और नाली के तरल कीचड़ के भीतर चोंचें डालकर, प्राणपोषक तत्त्व खोजता हुआ, परम प्रसन्न भाव से 'क्यॉक-क्यॉक' शब्द करता हुआ पश्चिम की ओर बढ़ता चला गया। एक मुर्गा न जाने कहाँ से, किस तिलिस्म से बाहर निकल कर सुनन्दा के ठीक नीचे आकर खड़ा हो गया और उस असमय में ही पूरे उल्लास के साथ 'कुकड़ूँ कूँ!' बोल उठा। पहले तो सुनंदा को हँसी आयी उस मुर्गे को अकड़ते, इतराते और अकस्मात्, असमय में पूरी ताकत से बाँग देते देखकर। पर तत्काल उसके भीतर का कोई युग-युगांत का अंध संस्कार जैसे उसके कानों में एक अभिनव चेतन-मंत्र फूँक गया। "क्या मुर्गे की यह बाँग

उसके जीवन के नये सबेरे की शुभ सूचक है? कुछ आश्चर्य और असंभव नहीं," उसने मन-ही-मन कहा। मुर्गा दो कदम आगे बढ़-कर फिर एक बार बोल उठा—"कुकड़ूँ-कूँ ऊँ!" सुनंदा कुछ देर तक उसी की गतिविधि का निरीक्षण करती रही। कूड़े के जो ढेर स्थान-स्थान पर पड़े हुए थे, मुर्गा उन्हीं मे से कुछ चुगता जाता था और 'कक्-कक्' की आवाज मुँह से निकालता हुआ आगे बढ़ता जाता था। जब गली के मोड़ से मुर्गा गायब हो गया तब सुनंदा भी उठी। एक बार इस आशा से उसने फिर गली के इस पार और उस पार देखा कि शायद राजीव आता हो। फिर भीतर चली गयी।

भीतर जाकर उसने फिर पुस्तक हाथ में उठाई और बैठकर उसके पन्ने उलट कर पढ़ने का प्रयत्न किया। पर उसका जी उचाट हो चुका था। अब वह किसी तरह पुस्तक मे मन नहीं लगा पाती थी। उसका मन किसी कारण से छटपट करने लगा था। वह फिर उठी और फिर दरवाजे के पास गयी। एक बार इधर-उधर झाँक कर उसने निराश भाव से भीतर से दरवाजा बंद कर दिया और छिन्न लता की तरह कालीन पर लेट गयी।

"क्या यही वह स्वतंत्रता है जिसके लिये मैं समाज के समस्त कड़े अनुशासनों को तोड़कर घर से बाहर निकली हूँ?" अत्यंत खिन्न और थकित मन से विचार करती हुई वह मन ही-मन कहने लगी। "यह तो एक पिंजरे से दूसरे पिंजरे में आकर चुपचाप बंद हो जाने के सिवा और कुछ नहीं है। उस बंधन मे कम से कम यह सांत्वना तो थी कि मैं अपना कर्तव्य-कर्म करती

चली जा रही हूँ। यहाँ तो कोई भी काम नहीं है। केवल अकेलापन, केवल नैष्कर्म्य और केवल शून्य बंधन ! क्या होगा, क्या होगा ! कैसे होगा मेरे इन जड़ बंधन-ग्रस्त प्राणों का त्राण ! कुकड़ूँ—कूँ ! कुकड़ूँ—कूँ ! क्यॉक-क्यॉक-क्यॉक-क्यॉक ! ..."
उसका माथा गरम हो उठा । उसे लगने लगा कि चारो ओर की जड़ और बद्ध निराशा में उत्पन्न उसका यह आत्म-विलाप कहीं उसे सचमुच पागल न बना बैठे। उसने तत्काल उठकर दरवाजा खोला । बाहर की बद्धता भी जैसे उसके भीतर की बद्धता मे बदल कर उसका दम घोटने लगी थी । दरवाजा खोलते ही उसे जैसे कुछ साँस लेने योग्य हवा मिली—चाहे वह गंदी और बदबूदार हवा ही क्यों न हो।

अँधेरा होने लगा था, पर अभी सांध्य आभा किसी हद तक वर्तमान थी। बत्ती जलाने का समय अभी नहीं हुआ था । तथापि उसने मन की गाढ़ी अँधेरी निराशा के भूत को भगाने के लिये दोनों कमरो की बत्तियाँ जला दीं । उसके बाद फिर दरवाजे के चौखटे पर बैठ गयी। धीरे-धीरे सांध्य-प्रकाश विलीन हो गया और बाहर और भीतर अंधकार एकाकार हो गया । गली मे कहीं केरासीन की और कहीं बिजली की बत्तियाँ जल उठी। सुनंदा बैठी रही और गली मे फिरनेवाली छायामूर्तियो का आना-जाना देखती रही। पर प्रतिक्षण उसकी आँखें एक ही व्यक्ति को खोज रही थी और वह व्यक्ति जैसे न दिखायी देने की बाजी लगाये बैठा था । इतना अधैर्य, इतनी असहनशीलता और इतनी घबराहट का अनुभव सुनंदा ने अपने जीवन मे

पहले शायद ही कभी किया हो । इस घबराहट का कारण यह नही था कि वह उस नये स्थान मे, अपरिचितों के बीच में, रात के समय निपट अबला, असहाय और अकेली है । जीवन की साधारण परिस्थितियो मे रात-भर निर्भय होकर अकेले रह सकने का साहस उसमे पर्याप्त था, यह वह जानती थी । पर आज जिस घबराहट का अनुभव वह कर रही थी वह जीवन के अनिश्चित अंधकारमय और निराशापूर्ण भविष्य की आकस्मिक कल्पना के कारण उसके भीतर तीव्रता से जग उठी थी ।

दीर्घ प्रतीक्षा के बाद अंत में वह छायामूर्ति प्रकट हो गयी जिसके न रहने से उसके अतर की सारी विकलता इस हद तक बढ़ गयी थी । एक झलक उसकी ओर देखकर वह भीतर चली गयी । जैसे ही राजीव ने भीतर प्रवेश किया वैसे ही "इतनी देर कर दी तुमने ?" कहकर वह बरबस व्याकुल भाव से रो पड़ी । इतनी देर तक संचित सारा अभिमान एक क्षण के लिये भी अपने को सँभाल न सका और फटकर बरस पड़ा ।

"क्या हुआ सुनन्दा ?" घबरायी हुई आवाज़ में राजीव ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा ।

सुनन्दा की एक बार इच्छा हुई कि राजीव के दो सबल कंधो पर अपना सिर रख कर एक बार जी भर कर रो ले—इस हद तक कि फिर उसके आँसुओ के मूल स्रोत मे भविष्य के लिए एक भी बूँद शेष न रह जाय । पर उसने ऐसा किया नही, वरन् एक हलके झटके से राजीव के हाथ को अपने कंधे पर से हटा दिया और बोली—"कुछ नही हुआ । तुमने बहुत देर कर दी ।

जी घबरा उठा था।" और फिर वह अपने अंचल से आँसुओं को पोंछने लगी।

"तुम्हारी यह घबराहट स्वाभाविक है, सुनन्दा। पर अब चिंता की बात नहीं है, मैंने उसके निराकरण का उपाय सोच लिया है। आज दिन-भर काम करता हुआ मैं यही सोच रहा था। तुम तनिक बैठो, मैं खाना ले आता हूँ। न तुमने सुबह से कुछ खाया है न मैंने। खाना खाकर फिर इतमीनान से इस विषय पर बातें करेंगे।" कहकर राजीव फिर बाहर निकला। थोड़ी देर बाद जब वह कचौड़ियाँ लेकर लौटा तब तक सुनन्दा के मुख पर सहज प्रसन्नता का भाव आ चुका था।

नीचे बैठकर जब राजीव ने दोना सुनन्दा के आगे रखा तब वह बोली—"बाप रे! किसी भी कारण से मनुष्य की घबराहट इस सीमा तक पहुँच सकती है, इसका कोई भान मुझे नहीं था।"

"असल बात यह है," कचौड़ी का एक टुकड़ा मुँह में डालते हुए राजीव ने कहा, "कि लखनऊ का क्षेत्र न तुम्हारे अनुकूल है न मेरे। और अब चूँकि बँगले से बाहर निकल आयी हो, इसलिये यहाँ तुम्हारे विकास के लिए और भी भारी, रुकावटें खड़ी हो गयी है। इस गली के भीतर बंद रहकर न तुम कुछ कर पाओगी न मैं। खोंचे के व्यवसाय वाली तुम्हारी बात मुझे पसन्द आयी है। पर उससे भी तुम्हारे जीवन को मुक्त प्रवाह-पथ नहीं मिल सकेगा। इस पर मैंने विचार कर लिया है। इसलिये मेरा एक प्रस्ताव है।"

"क्या?" उत्सुक भाव से सुनन्दा ने पूछा।

"हम लोग यहाँ से किसी दूसरी जगह चलें, जहाँ हमें हमारे अनुकूल व्यापक कार्य-क्षेत्र प्राप्त हो सके।"

"कौन ऐसी जगह हो सकती है ?"

"बहुत सोचने पर फिलहाल मुझे स......जँचा है। मेरा एक घनिष्ठ मित्र—भूतपूर्व क्रांतिकारी—भी आजकल वहीं किसी काम पर है। जब तक हम लोग अपने लिए व्यापक कार्यक्षेत्र ढूँढ न लें तब तक कुछ दिनों के लिये उसके यहाँ ठहर सकते हैं।"

"तब चलो। कल ही हम लोग यहाँ से चल दें। सचमुच, एक तो लखनऊ का सारा वातावरण ही मेरी वर्तमान मानसिक स्थिति के लिए अनुरूप नहीं पड़ रहा है, उस पर यह गली और उसपर भी कोई काम हाथ मे नही।"

"इतनी जल्दी !" सस्नेह मुसकराता हुआ राजीव बोला।

"हाँ, यहाँ एक-एक क्षण काटना मेरे लिये दूभर हो रहा है।"

"अच्छी बात है। मै कोशिश करूँगा कि हम लोग जल्दी से जल्दी यहाँ से निकल पड़ें।"

खाना खा चुकने के बाद सुनन्दा के मन मे काफी स्थिरता आ गयी थी। निकट भविष्य में जीवन मे एक गति मिलने की आशा ने उसके हृदय में बहुत बड़े बल का संचार कर दिया था।

जो पुस्तकें आज उसने पढ़ी थीं उनमे व्यक्त किये गये विचारो के सम्बन्ध मे वह बहुत देर तक राजीव से वाद-विवाद करती रही। उस वाद-विवाद से किसी निश्चित निर्णय पर न पहुँच सकने पर भी उसे नयी-नयी प्रेरणाएँ मिल रही थीं।

× × ×

लखनऊ छोड़ने का निश्चय हो जाने के बाद भी किसी-न-किसी कारण से बात टलती रही। कभी सुनन्दा के विचारों मे परिवर्तन होता रहता था, कभी राजीव किसी निश्चित निर्णय पर नही पहुँच पाता था। सुनन्दा धीरे-धीरे 'नैष्कर्म्यपूर्ण' एकाकी जीवन बिताने की आदी-सी होने लगी थी। वह जानती थी कि वह जड़ता का लक्षण अंत मे घातक सिद्ध हो सकता है, पर बात पूर्णतः उसके वश की नहीं थी। फिर भी वह, जैसे नैष्कर्म्य की उस स्थिति पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से ही, राजीव के 'पुस्तकालय' की गिनी-चुनी पुस्तको मे से एक-न-एक पुस्तक उठाकर दिन-भर अत्यंत मननपूर्वक पढ़ती रहती थी। राजीव के पास अधिकतर प्रसिद्ध लेखकों द्वारा लिखी गयी सामाजिक, राजनीतिक, और आध्यात्मिक क्रान्तियों से संबंधित पुस्तकें ही थीं। कुछ पुस्तकें व्यापक विश्व-कल्याण सम्बन्धी योजनाओं पर भी थीं, जिनकी कल्पना विभिन्न लेखको ने विभिन्न दृष्टिकोणों से की थी। उन विविध पुस्तकों को मनोयोगपूर्वक पढ़ते रहने से सुनन्दा के उलझे हुए विचार धीरे-धीरे एक सुलझा हुआ रूप धारण करने लगे। उन विषयों पर स्वयं अपने दृष्टिकोण से विचार करने की प्रेरणा उसे मिलने लगी थी। इस प्रकार विचार-जगत् मे तद्‌गत रहने के कारण उसे उस नये पिंजरे की बद्धता विशेष खलती नही थी।

एक दिन जब वह दोपहर मे अपने दरवाजे के चौखटे पर बैठी हुई धूप खा रही थी तब सहसा उसने देखा कि प्रमीला तेज़ कदम रखती हुई, प्रायः हाँफती हुई सी, चली आ रही है।

"बुआ, तुम बाहर बैठी हो ! चलो, दो मिनट तुमसे बाते हो जायँ। मुझे जल्दी है। मैं अभी लौट जाऊँगी।"

"क्यो, क्या बात है ?" चौखटे पर से उठते हुए सुनन्दा ने पूछा। "कुशल तो है ?"

"हाँ, कुशल ही है," सुनन्दा के साथ भीतर प्रवेश करते हुए मरे मन से प्रमीला ने कहा । "तुम्हारे चले आने के बाद तो दो दिन तक बड़ा बावैला खड़ा हो गया था । माँ और बिलसिया बार-बार यही कहती थीं कि हमे तो पहले ही मालूम था। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ आकर सहानुभूति-प्रदर्शन के बहाने खूब खरी खोटी सुना जाती थी और ताने कसती थी । मुझसे खोद-खोद कर बातें पूछी जा रही थी । भला मेरे पेट से वे लोग कैसे कोई बात निकाल सकते थे ! पर मुझे चिंता माँ की, बिलसिया की और पास-पड़ोस की स्त्रियो की बातो से नहीं थी। मैं चिंतित कुछ दूसरे ही कारणो से हो उठी हूँ। बाबू जी के शांत स्वभाव से तुम परिचित हो। पर वह भी इस घटना से बहुत विचलित हो उठे है और पुलिस मे खबर देकर तुम दोनों की खोज करवाने और राजीव बाबू पर 'किडनेपिग' का अभियोग लगाकर पुलिस द्वारा उन्हे हर तरह से जलील कराके अदालत में पेश कराने की बात सोच रहे है। अभी तक मै किसी तरह उन्हे रोके रहने मे सफल रही, पर तुम्हारे न लौटने से वह दिन पर दिन और अधिक उत्तेजित होते चले जाते है, और आश्चर्य नहीं कि दो-एक दिन के भीतर ही मामला बहुत आगे बढ़ जाय। इसलिए मै सब की नजर बचाकर तुम लोगो को चेतावनी देने आयी हूँ।

तुम लोगो का यहाँ रहना अब किसी प्रकार भी खतरे से खाली नहीं है, बुआ !" प्रमीला की आँखो मे घबराहट का भाव सुस्पष्ट था।

सुनन्दा प्रमीला की बातो से अत्यन्त चिंतित हो उठी—अपने लिये उतना नहीं जितना राजीव के लिए। कही सचमुच उसे पुलिस तंग करे और हवालात मे न डाल दे। और यदि स्वयं उसे भी अदालत मे खड़े होने को विवश किया जायगा तो कैसी घोर लज्जा का विषय होगा! छी-छी! तब वह कहाँ अपना मुँह छिपायेगी? पृथ्वी के गर्भ में समाने के सिवा और चारा उसके लिये रह जायगा क्या? और पृथ्वी के गर्भ मे समाने की भी सुविधा तब उसे कहाँ मिलेगी! सोच-सोचकर वह इस कदर आतंकित हो उठी कि लगता था जैसे उसका हृदय अपने स्थान से गिर ही पड़ेगा। पर वह आतंक की भावना अधिक समय तक स्थिर न रही। एक दूसरी—सवल और स्वस्थ—विचार-तरङ्ग उसके भीतर उमड़ उठी। उसने सोचा—यदि उसे अदालत मे खड़े होने के लिये विवश किया ही गया तो उसमे कौन बुराई है? बल्कि यह अच्छा ही होगा कि वह तब खुले आम यह घोषित कर पायेगी कि किन घोर अनुदार, संकीर्ण और हीन सामाजिक संस्कारो की चहारदिवारी उसने जानबूझ कर तोड़ी है और स्वेच्छा से एक ऐसे व्यक्ति के साथ निकल पड़ी है जो नैतिक ऊँचाई मे समाजपतियो से कई गुना आगे बढ़ा हुआ है। पुलिस द्वारा पैदा की जानेवाली परेशानियो का राजीव वर्षों से आदी रहा है, यह वह जानती थी। इसलिये इस सम्बन्ध में भी वह आश्वस्त हो उठी।

"घबराने की कोई बात नही है, प्रमीला," अत्यन्त शांत और स्थिर भाव से सुनन्दा बोली। अगर मै किसी निश्चित आदर्श को सामने रखकर घर से बाहर निकली हूँ तो न मेरे लिये डरने का कोई कारण है न राजीव बाबू के लिये ही। मैं कोई नाबालिग लड़की नहीं हूँ। इस तरह के उपायो से मुझे काबू मे नही किया जा सकेगा। यह बात अपने बाबूजी को समझा देना। वैसे, यहाँ का वातावरण मुझे पहले ही से मन के अनुकूल नहीं लग रहा है और राजीव बाबू भी जल्दी ही लखनऊ छोड़कर चलने का विचार कर रहे है। पर अब तो मेरी इच्छा होती है कि यहीं जमी रहूँ और मामले को अदालत मे पेश होने दूँ।"

"ऐसा भूलकर भी न सोचना, बुआ," प्रमीला ने अत्यन्त घबरायी हुई आवाज मे कहा। 'यह ठीक है कि साधारण परिस्थितियो मे मैं भी ऐसा ही उचित समझती जैसा तुम सोच रही हो और तुम्हे कभी कायरों की तरह भाग निकलने की राय न देती। पर इस विशेष अवसर पर स्वय बाबूजी को अपनी गलती के कारण जलील और शर्मिन्दा होना पड़ेगा, और तुम जानती हो, बाबूजी के प्रति मेरे हृदय मे कैसी अगाध श्रद्धा और स्नेह-भावना है। इसलिये तुम लखनऊ छोड़कर व्यक्तिगत रूप से मेरे प्रति विशेष कृपा करोगी, बुआ! मेरी इतनी-सी प्रार्थना को न ठुकराना। राजीव बाबू को भी मेरी ओर से समझा देना। विजय बाबू को अमीनाबाद पार्क मे ठहराकर, उन्हे किसी सहेली से चद मिनटो के लिये मिलने की बात बताकर, गली पर गली पार करती हुई मै शार्ट-कट से प्रायः दौड़ती हुई तुम्हारे पास आयी

हूँ। अच्छा बुआ, नमस्ते। मेरी प्रार्थना याद रखना।" कहकर प्रमीला जाने लगी।

"सुनो एक मिनट!" सुनन्दा ने उसे टोका। "बैंक मे मेरे कुछ रुपये जमा है। पर पासबुक बॅगले ही में रह गयी है। उन रुपयो को मै किसी भी हालत में लेना नही चाहती, पर बैंक मे पड़े रहे यह भी अच्छा नहीं है। तुम जो रुपये मुझे दे गयी थीं उन्हे मैं पटा देना चाहती हूँ। इसलिये वह पासबुक "

"उसके लिये बहुत समय है, बुआ! तुम जहॉ भी जाओगी किसी सांकेतिक नाम से सांकेतिक शब्दो में ही मुझे अपनी कुशल भेजती रहना। अच्छा जाती हूँ।" कहकर प्रमीला बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये हवा की तरह चली गयी।

शाम को जब राजीव लौटा तब सुनन्दा ने सारी बातें उसे सुनाकर स्थिति समझा दी। राजीव पहले तो इसी निर्णय पर पहुॅचा कि ऐसी स्थिति मे कायरो की तरह भाग निकलना किसी भी हालत मे उचित नहीं है, पर जब प्रमीला की एकांत प्रार्थना से वह परिचित हुआ तब उसने अपना मत बदल दिया और यह निश्चय किया कि दूसरे ही दिन शाम की गाड़ी से वे लोग स' "चल देंगे।

तैंतीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन मकान का किराया चुकाकर, सामान बॉधकर गाड़ी पहुॅचने के प्रायः एक घंटा पूर्व ही दोनों स्टेशन पहुॅच गये। तीसरे दर्जे के दो टिकट लिये। राजीव सुनन्दा की परेशानी का

खयाल करके दूसरे दर्जे के टिकट खरीदने जा रहा था, पर सुनन्दा ने निश्चित शब्दो द्वारा उसे ऐसा करने से रोका।

सुनन्दा आज बड़े लंबे अर्से के बाद, रेल-यात्रा करने जा रही थी । इसके पहले उसने तब रेल-यात्रा की थी जब वह अपने मामा के साथ लखनऊ आयी थी । गाड़ी आने के बहुत देर पहले से ही प्लेटफार्म पर यात्रियो की बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। जब गाड़ी घहराती हुई प्लेटफार्म पर रुकी तब उतरने और चढ़ने वाले यात्रियो के शोर और धक्कमधक्के के फलस्वरूप सुनन्दा प्रारम्भ मे कुछ क्षणो के लिये बुरी तरह हौलदिल हो उठी। पर तत्काल ही इस भावना ने उसके मन मे जोर बाँधा कि अब से बराबर इसी प्रकार की व्यस्तता, शोर-गुल, सघर्ष और संग्राम के बीच मे ही उसे जीवन बिताना है; उसके दूरस्थ ध्येय का पथ ही इन हंगामो के बीच से होकर जाता है। ऐसी हालत मे उसको जीवन का एक स्वाभाविक अंग समझ कर चलना होगा। इस भावना से उसे बड़ा बल मिला और सहज शांत भाव से, धैर्य के साथ, तीसरे दर्जे के किसी एक डिब्बे में प्रवेश करने की सुविधा की प्रतीक्षा करती रही। राजीव उससे सामान देखते रहने के लिए कह गया था और स्वय किसी सुविधाजनक डिब्बे की तलाश मे था। थोड़ी देर बाद वह आया और कुछ सामान सिर पर और कुछ अपनी बगल मे दबाकर, सुनन्दा से पीछे चल आने को कहकर आगे बढ़ा। जिस डिब्बे मे दोनो ने प्रवेश किया उसमे इतनी गनीमत थी कि किसी तरह सामान रखने और दो व्यक्तियो के बैठने भर को जगह मिल गई। दूसरे डिब्बे में

तो तिनका रखने की भी जगह नहीं रह गई थी।

जब गाड़ी चल पड़ी तब सुनन्दा के भीतर एक हलकी सी टीस उठी। इतने वर्षो के जीवन-क्रम का अवशिष्ट चिह्न भी आज मिट गया था। टूटे हुए काँटे के अंतिम नुकीले भाग को उखाड़ फेंकने मे जो मीठा-सा दर्द होता है वैसी ही अनुभूति थी वह।

पटरियो के विस्तृत जाल को पार करके, स्टेशन की आखिरी निशानी को पीछे छोड़कर जब गाड़ी आगे बढ़ी तब मुक्त खेतो का निरन्तर गतिशील और पल-पल बदलनेवाला रूप देखकर सुनन्दा के हृदय के भी हृदय के भीतर बद्ध जड़ता भी जैसे गतिमय हो उठी। वह निर्निमेष नयनो से उस जीवन की तरह ही चल और वेगशील दृश्य को देखती चली जा रही थी। उसकी मुक्ति का पथ तीव्रता से अग्रसर होता जा रहा था। विचित्र-विचित्र आकारो वाले हरे-भरे पेड़, अर्द्धठूँठ और ठूँठ जैसे वनचारी मनुष्यो की तरह उसकी अगवानी करते हुए विविध भंगिमाओ से नृत्य करते चले जाते थे।

जब तक अँधेरे मे बाहर की प्रकृति एकदम विलीन न हो गयी, सुनन्दा आँखें फाड़-फाड़कर खिड़की के बाहर झाँकती रही। अँधेरा होने पर उसकी आँखें गाड़ी की थपकियो के फलस्वरूप बरबस मुँद आने लगी। वह बैठे-बैठे राजीव के कंधो के सहारे सो गई।

दूसरे दिन सुबह गाड़ी जब स० ··पहुँची तब सुनन्दा पहले ही से जगी हुई थी। बाहर बड़े कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। शाल को अच्छी तरह अपने शरीर से लपेटकर वह जाड़े से प्राय:

सिसकती हुई बाहर निकली। राजीव ने सब सामान बाहर निकाला। एक कुली ने बरबस सामान उठा लिया, राजीव के उठाने के पहले ही। बाहर आकर एक ताँगा किया। राजीव ने उस मुहल्ले का पता ताँगेवाले को बता दिया जहाँ उसके मित्र रहते थे। जब दोनों ताँगे पर बैठ गये और ताँगा चल पड़ा तब सुनन्दा को लगा जैसे अपने भविष्य की भाग्य-लिपि पर अंतिम और निश्चित रूप से हस्ताक्षर करने निकल पड़ी हो।

नियत मुहल्ले के पास जब ताँगा खड़ा हुआ तब राजीव ने अपने मित्र का नाम ले-लेकर कई आदमियों से पूछा। पर एक भी उनसे परिचित न निकला। जब वह बहुत परेशान हो गया और हार मानकर लौटना ही चाहता था कि इत्तफाक से वह एक गली के नुक्कड़ पर एक पानवाले से पूछ बैठा। पानवाले ने पास ही कोनेवाले मकान की ओर उँगली उठाते हुए बताया कि वहीं बनर्जी बाबू रहते हैं।

मकान के पास जाकर राजीव ने दरवाजा खटखटाया और "बनर्जी!" कहकर चिल्लाना शुरू किया। "कौन?" भीतर से किसी ने तीखे स्वर में कहा।

"जरा खोलना!" राजीव बोला।

कुछ देर तक न कोई आवाज़ आई न किसी ने दरवाजा खोला। अंत में, जैसे अनिच्छा से, किसी ने धीरे से किवाड़ खोला। एक साँवले रंग का दुबला पतला सा व्यक्ति एक मट-मैले रंग का अलवान ओढ़े खड़ा था। राजीव पहले क्षण उसे पहचान न पाया, पर तत्काल पहचानते हुए बोला—"अरे बनर्जी,

तुम्हें यह क्या हो गया ? बीमार हो गये थे क्या ?"

"हाँ, बीमार ही समझो ! तुम आज अचानक कैसे ? और आप·· ?" सुनन्दा की ओर सकेत करते हुए बनर्जी बाबू ने मंद, प्रायः करुण, मुसकान के साथ कहा।

"यह सुनन्दा है, मेरी साथिनी।"

"ओह, आइये, भीतर बैठिये। कब आये तुम ?" क्षीण स्वर मे बनर्जी बाबू बोले।

"अभी स्टेशन से आ ही रहा हूँ, भाई। सामान ताँगे पर रखा है।"

"ओह, तब ले आओ सामान।" धीमे से बनर्जी बाबू ने कहा।

राजीव को लगा कि बनर्जी किसी कारण से परेशान है और उन लोगो के आने से बड़े पेसोपेश में पड़ गया है। पर वहाँ तक आकर लौट चलना भी उचित नही था। इसलिये ताँगे पर से सामान उठाकर उसने भीतर रख ही दिया। सुनन्दा अभी तक बाहर ही खड़ी थी और अपने को लाख रोकने का प्रयत्न करने पर भी ठंढ से काँप रही थी। बनर्जी बाबू का दुबला-पतला उदास चेहरा देखकर उसे भी लग रहा था कि वे लोग ठीक जगह पर नही आये है।

"चली आओ, सुनन्दा," राजीव बोला, "हाँ, तो बनर्जी, सामान किस कमरे में रखना होगा ?"

"बस, यही एक ही तो कमरा है मेरे पास," बनर्जी बाबू ने अत्यन्त दयनीय स्वर में कहा।

"बस, केवल एक ही ? बाकी हिस्से में कौन रहता है ?"

राजीव के मुख पर खिन्नता स्पष्ट झलक रही थी।

"मकान मालिक स्वयं। कहीं मकान मिल ही नही रहा था। सौ सिफारिशो और उतनी ही खुशामदों के बाद किसी तरह यह कमरा मिल पाया है। पर तुम संकोच न करो। तुम दोनों का गुजारा इस कमरे मे हो जायगा। मै एक दूसरे मित्र के यहॉ ठहर जाऊँगा, तुम चिंता न करो। बैठो, आराम करो। मैं चाय का प्रबन्ध करता हूँ।"

"चाय की कोई जल्दी नही है, अपना हाल तो बताओ। आजकल क्या करते हो? सुनन्दा, बैठ जाओ।"

कमरे में केवल एक ही कुर्सी थी—लकड़ी की। उसकी एक बॉह टूट गयी थी। सुनन्दा धीरे से उस पर बैठी। उसके बैठते ही कुर्सी की पीछेवाली कोई एक टॉग ऊपर को उठ आई।

बनर्जी बाबू खटिया की ओर ऍगली उठाते हुए राजीव से बोले—"बैठ जाओ।"

राजीव बिना तकल्लुफ के बैठ गया और बनर्जी का हाथ पकड़कर उसने उसे भी, जैसे बलपूर्वक, अपने पास बिठाया। खटिया चरमरा उठी।

"दो आदमियों के बैठने से इसके टूटने का डर है," बनर्जी बाबू ने करुण हास के साथ कहा। "मै नीचे बैठ जाता हूँ।" कहकर वह उठे और एक बक्स के ऊपर बैठ गये।

"क्या करते हो आजकल?"

"राशनिंग के दफ्तर मे काम करता हूँ।"

"कितना पाते हो?"

"यही, पैंसठ के करीब मिल जाता है।"

"बस ? तब इतने के लिये नौकरी की क्या जरूरत थी ? इतना तो तुम्हे मजदूरी करके भी मिल जाता।"

"पर मजदूरी कर सकने लायक मेरा स्वास्थ्य कहाँ रह गया है!"

"आखिर बूर्जवा के बूर्जवा ही रहे तुम! बीच मे न मालूम किस चक्कर में आ फँसे थे। खैर, मित्र, तुम्हे अधिक कष्ट नही दूँगा। आज दिन भर चक्कर लगाकर मुझे कहीं-न-कहीं अपना ठिकाना लगाना होगा। अब तुम यह बताओ, नहाने-बहाने का कोई प्रबंध अलग से है कि नही ?"

"दस-पाँच मिनट ठहरो, मैं सब प्रबंध किये देता हूँ" कह-कर बनर्जी बाबू भीतर चले गये।

सुनन्दा राजीव की ओर इस तरह से देख रही थी जैसे कुछ समझ ही न पा रही हो कि कहाँ आ पहुँची है और क्यो।

राजीव उसका भाव समझकर मुसकराता हुआ बोला—"घबराओ नहीं। शाम तक सब ठीक हो जायगा।"

इस 'ठीक' शब्द के भीतर असंख्य किन्तु अनिश्चित संभावनाएँ भरी थी। सुनन्दा केवल म्लान मुख से मुसकराती हुई चुप हो रही।

थोड़ी देर बाद बनर्जी बाबू दो प्यालो में चाय लिये हुए आ पहुँचे। "लीजिये!" सुनन्दा की ओर दाहिने हाथ वाला प्याला बढ़ाते हुए उन्होने कहा। और बायें हाथ वाला प्याला उन्होने राजीव की ओर बढ़ाया।

"तुम पी चुके क्या ?" राजीव ने पूछा।

"अपने लिये भी लाता हूँ," कहकर बनर्जी बाबू फिर भीतर गये और कुछ ही देर बाद एक प्याला हाथ में लिये लौट भी आये, बक्स के ऊपर बैठकर पीने भी लगे।

"अच्छा यह बताओ मित्र," राजीव ने कहा, "यहाँ से रेफ्यूजी कैम्प कितनी दूर है ?"

"करीब पाँच मील होगा। क्यों ?"

"वहाँ एक आदमी से मुझे मिलना है। देशराज को तो तुम जानते होगे, जो बरेली में हम लोगों के साथ था ?"

"हाँ, हाँ, कहाँ है आजकल वह ?"

"वह अलीपुर से हम लोगों के पहले ही छूटकर आ गया था। पार्टीशन के बाद वह लाहौर में था। उसके बाद इधर-उधर भटकता रहा। अब सुना है कि वह यहीं रेफ्यूजी कैम्प में है आजकल। उसीसे मुझे मिलना है। सुनन्दा यहीं रहेगी। मैं अभी नहा धोकर चल दूँगा। उसका पता लगाकर तब लौटूँगा।"

"कब तक लौटोगे ?" सुनन्दा ने तनिक चिन्तित भाव से पूछा।

"कोशिश तो जल्दी ही लौटने की करूँगा।"

बनर्जी बाबू चाय समाप्त करके फिर भीतर गये। राजीव को लगा कि वह किसी महिला से बात कर रहे हैं। थोड़ी देर बाद लौटकर बोले—"भीतर सब प्रबन्ध ठीक है। अभी नहाना चाहो तो नहा सकते हो।"

"सुनन्दा के लिये भी प्रबन्ध होगा ही ?"

"क्यों नहीं। एक-एक करके आप लोग नहा लीजिए," सुनन्दा की ओर देखते हुए बनर्जी बाबू बोले। "अपना ही घर

समझिये। संकोच का कोई काम यहाँ नहीं है। मकान मालिक अपने ही आदमी हैं।"

"तुम हो आओ, सुनन्दा, तब तक मैं बनर्जी से गपशप करता रहूँगा।"

पर सुनन्दा को नये स्थान मे सचमुच संकोच हो रहा था।

"तकल्लुफ एकदम बेकार है। तुम चली जाओ अकेली!" राजीव प्रायः रूखे स्वर में बोला।

इसके बाद फिर किसी प्रकार का संकोच करना सुनन्दा ने उचित नहीं समझा। वह सीधे भीतर चली गई।

"आइये, आइये!" भीतर किसी महिला को कहते सुना गया।

"मकान मालिक कौन है?" राजीव ने बनर्जी से पूछा।

"एक बंगाली ही हैं; सद्गृहस्थ है।"

'सद्गृहस्थ' शब्द पर राजीव को हँसी आने लगी। पर बाहर से वह अपेक्षाकृत गंभीर ही बना रहा।

"उनकी गृहिणी सचमुच लक्ष्मी हैं। उनकी वजह से मुझे यहाँ किसी बात का कष्ट नहीं है। नहीं तो ....."

"तुम भी अब 'सद्गृहस्थ' 'लक्ष्मी' आदि शब्दों की माया-जाली भावुकता के फेर में पड़ने लगे हो, मित्र! तुम पूरे बंगाली बाबू बनते चले जा रहे हो। स्वयं भी किसी गृहलक्ष्मी को जुटा पाये या नहीं?"

बनर्जी बाबू केवल "हे-हे!" करके रह गये। वास्तव में उनके मुख के भाव से यह विश्वास ही नहीं होता था कि वह भी किसी जमाने में क्रांतिकारी रहे होंगे। राजीव को यह सोच

कर आश्चर्य हो रहा था कि जीवन की परिस्थितियाँ मनुष्य को क्या से क्या बना देती है।

"इसी बनर्जी को देखो", राजीव मन-ही-मन कहने लगा, "समस्त जीवन उसने जिस उद्देश्य को सामने रखकर कठोर साधना मे बिताया था, आज उसके सामने से वह उद्देश्य कपूर की तरह न जाने कहाँ विलीन हो गया, पता नहीं। अब वह साठ-पैसठ रुपये पर राशनिंग के दफ्तर मे क्लार्की करके संतुष्ट है और जीवन के शेष दिन इसी तरह खपा देने की तैयारियाँ कर रहा है।"

जब सुनंदा चली आयी तब राजीव ने बनर्जी बाबू से पूछा—"मैं जाऊँ? भीतर कुछ पर्दे-वर्दे की बात तो नहीं है?"

"ठहरो, मैं जाकर देखता हूँ।" कहकर बनर्जी बाबू भीतर गये। कुछ देर बाद लौटकर बोले—"चले आओ!"

नहा-धोकर जब राजीव लौटा तब वह अपने भीतर ताजगी और स्फूर्ति का अनुभव करने लगा।

"मैं जाता हूँ सुनन्दा, देशराज का पता लगाने। तुम आराम से बैठी रहना। और बनर्जी, अगर मुझे लौटने मे देर हो जाय तो सुनन्दा को अच्छी तरह खिला-पिला देना! मेरा इंतजार न करना। मैं कहीं खा लूँगा।"

"तुम निश्चित रहो," बनर्जी बाबू बोले।

राजीव चला गया।

सुनन्दा मौन बैठी रही। उसके मुख के भाव से लगता था कि वह सब कुछ सहन करने, परिस्थितियो की प्रत्येक नये मोड़ को बिना किसी शिकायत के स्वीकार करने के लिये तैयार हो चुकी है।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

राजीव जब लौटा तब दो बज चुके थे। सुनन्दा ने उत्सुकता से उसकी ओर देखा, यह जानने के लिये कि वह क्या नया प्रबन्ध करके आया है।

"देशराज मिल गया। वहाँ हम लोगों के लिये बहुत अच्छी जगह मिल गयी है, सुनन्दा", अत्यन्त उल्लसित भाव से राजीव ने कहा। "कैंप से कुछ दूर एक शेडनुमाँ जगह खाली पड़ी है। लड़ाई के जमाने में फौजियों के लिये जो अस्थायी कार्टर्स बने थे उन्हीं मे से यह एक टुकड़ा अलग न जाने कैसे खाली रह गया है, यह आश्चर्य ही है। देशराज आजकल शरणार्थियो की सेवा मे लगा है। उसने कहा है कि वह उस खँडहरनुमाँ 'शेड' को दो कमरों में परिणत करने मे मेरी सहायता करेगा। लकड़ी और भोजन का प्रबध वह कर देगा। उसके बाद मै अपने हाथ से सब ठीक कर लूँगा। तुमने खाना खाया था ?"

सुनन्दा ने सिर हिला कर बताया कि वह खा चुकी है। उसके बाद बोली—"तब कब चल रहे हो वहाँ ?" उसे राजीव का प्रस्ताव काफी दिलचस्प लग रहा था। क्यो, यह वह नही जानती थी।

"बस, अभी चलते हैं। मैं ताँगा ले आया हूँ, सामान रखता हूँ।" कहकर वह अपने दोनों हाथों में सामान उठाकर बाहर ले गया। उसके बाद दूसरी खेप मे शेष सामान भी उठाता हुआ बोला—"चलो!"

सुनन्दा शाल लपेटकर उठी और चलने लगी। फिर सहसा

दरवाजे पर ठहर गयी और बोली—"बनर्जी बाबू से बिना मिले ही चले जा रहे हो?"

"पर वह तो दफ्तर चला गया होगा।"

"तो कम-से-कम घर में किसी को सूचित तो करना ही होगा। मुझे भीतर मिलना भी है।"

"किससे?" आश्चर्य के साथ राजीव ने पूछा।

"सद्‌गृहस्थ की गृहिणी से।" कहकर सुनन्दा विनोदपूर्वक मुसकरायी।

राजीव ठठाकर हँस पड़ा। हँसते ही अपने अट्टहास की अशोभनता को महसूस करके वह सँभल गया। "जाओ, अवश्य मिल आओ, और कह देना कि बनर्जी को सूचित कर दें और उससे मेरा नमस्ते कह दें।" कहकर राजीव सामान ताँगे पर रखने के लिये चला गया, सुनन्दा भीतर चली गयी।

जब सुनन्दा लौटकर आयी तब उसके मुँह पर विनोद की मुसकान स्पष्ट झलक रही थी। जब दोनो ताँगे पर बैठ गये और ताँगा चल दिया तब राजीव ने पूछा—"क्या-क्या बातें हुई सद्‌गृहिणी जी के साथ तुम्हारी?"

सुनन्दा खिलखिला उठी। बोली—'जब मैंने उन्हे सूचित किया कि हम लोगों के दूसरी जगह रहने का प्रबन्ध हो चुका है, तब वह बड़े प्रेम से बोलीं—अच्छा हुआ, अच्छा हुआ। प्रबन्ध होना ही अच्छा है। मुझे बड़ी खुशी हुई।' मैंने कहा—'सब आपकी कृपा है।" बोलीं—'सब भगवान की कृपा है बेटी, हम लोग कौन होते है। सब हरि-इच्छा है! हरि-इच्छा है!' मैं न

चाहने पर भी मुँह फेरकर हँस पड़ी।"

राजीव ने भी खुलकर ठहाका लगाया।

भाग्य से ताँगा अच्छा मिल गया था। घोड़ा सरपट चला जा रहा था। जब शहर की सीमा पार करके ताँगा खुले मैदान के बीच से होकर जाने लगा तब उसी की गति के साथ ही सुनन्दा का उल्लास भी, जैसे अकारण ही, बढ़ता चला गया। पिछले दिन रेल की यात्रा मे भागते हुए खेतों का दृश्य देख-देख कर मुक्ति का जो बोध उसे हो रहा था उसी निर्बधता की अनुभूति आज भी उसके मन को बढ़ावा दे रही थी। भविष्य की स्थिति कुछ भी निश्चित न होने पर भी उसे लग रहा था कि सब कुछ ठीक होता चला जा रहा है।

ताँगा ज्यों-ज्यों अग्रसर होता जाता था राजीव के मुख का भाव त्यों-त्यों गंभीर से गंभीरतर होता जा रहा था। सुनन्दा को लग रहा था कि वह किसी गहन समस्या के समाधान मे लग्न है। दोनो काफी देर तक मौन बैठे रहे। सुनन्दा राजीव की विचारमग्नता मे विघ्न नहीं डालना चाहती थी।

सहसा राजीव बोल उठा—"मैने सोच लिया है।"

"क्या ?" उत्सुकता से सुनन्दा ने पूछा।

"हम लोगों का भावी कार्यक्रम। शेड को रहने योग्य बनाने में प्रायः एक हफ्ता लग जायगा। उसके बाद उसी के आस-पास की जो जमीन बंजर पड़ी हुई और किसी के भी उपयोग मे नही आ रही है, उसे खोदकर, उसमे हल चलाकर अच्छे-अच्छे उत्पादक तत्त्वो और वैज्ञानिक विधि से डाली गयी खाद द्वारा उस

सत्त्वहीन मिट्टी को उपजाऊ बनाऊँगा फिर उसमे खेती करूँगा...”

सुनन्दा को उसकी बात एकदम खयाली और अव्यावहारिक लगी। बोली—“पहले तो उस जमीन को जोतने की अनुमति ही तुम्हें नही मिलेगी। जमीन चाहे बंजर पड़ी रहे, पर तुम यदि उस पर कब्जा करना चाहोगे तो केवल सरकार ही को नही, आस-पास मे रहने वाले सभी व्यक्तियो को आपत्ति होगी ...”

“क्यो ? दूसरो को क्या आपत्ति हो सकती है ?”

“आपत्ति होनी नही चाहिये। उसके लिये कोई कारण नही है। पर यह मानव-स्वभाव है...”

राजीव को सुनन्दा की बात मे तथ्य दिखाई दिया। “मैं मानता हूँ,” उसने कहा। “पर इसके लिये मै चिंतित नहीं हूँ। जहाँ तक सरकारी एतराज का प्रश्न है, पहले तो कई महीनो तक सरकार का ध्यान ही इस ओर नही जायगा। उसके बाद आपत्ति सम्बन्धी कार्रवाइयाँ करते-करते साल-दो साल का समय लग जायगा। लाल फीते की गति के क्रम का पता मुझे है। इस बीच मैं जब फसल खड़ी कर लूँगा तब फिर चाहे कोई भी उसका उपयोग करे, मेरा कर्तव्य पूरा हो जायगा और मेरा श्रम सार्थक हो जायगा। मैं केवल दो प्राणियो की पेट-पूजा के लिये इतना आडंबर रचना भी नहीं चाहता हूँ। शरणार्थी लोग मेरे श्रम से लाभ उठाये और स्वय भी उस आदर्श का अनुसरण करें, मैं यही चाहता हूँ।”

“पर तुम क्या यह सोचते हो कि सरकार तुमसे उस जमीन को छीन कर सीधे-सीधे शरणार्थियो को सौप देगी ? जाने

कितनी पखें लगायी जायेंगी, जाने कितनी शर्तें रखी जायेंगी। असंख्य झंझट खड़े किये जाने के बाद अन्त में कुल निचोड़ यह होगा कि वह जमीन किसी की भी नहीं रहेगी।"

"सरकारी कारनामो से तुम भी कम परिचित नहीं हो," कहकर राजीव मुसकराया। फिर तत्काल गंभीर होकर बोला— "पर मै यह सब कुछ होने नहीं दूँगा। इसके अलावा बात कुछ दूसरी ही है। वह जमीन न सरकार की है न किसी खास आदमी की। बहुत पहले किसी की रही होगी। उसके बाद वहाँ, आस-पास के गाँवो मे प्रचलित किवदंती के अनुसार, एक दिन एक दुर्घटना हो गयी। एक आदमी ने किसी कारण से क्रुद्ध होकर उसी जमीन पर, एक, बावली के पास, अपनी पत्नी का खून कर डाला। देशराज ने मुझे यह किस्सा बताया और वह बावली भी दिखायी। वह बावली आज सूख गयी है। तब से जिन-जिन लोगो ने उस जमीन को जोता और कमाया उनका कुनबे का कुनबा नष्ट हो गया। यदि कोई आदमी उस कुनबे का बच भी गया तो उसकी संतान पर विपत्ति छाने लगी। धीरे-धीरे इस विश्वास ने जोर पकड़ लिया कि उस खेत मे, और एक विशेष हद तक उसके आस-पास की जमीन मे, भूत का निवास हो गया है। तब से पुश्त-दर-पुश्त वह जमीन बिना जुती हुई पड़ी रहती है। इसलिये उम्मीद तो यही है कि यदि मै उसमे जुताई और बुवाई शुरू कर दूँ तो आपत्ति करने वाला कोई होगा नही।"

शरणार्थी शिविर के पास पहुँचकर राजीव ने ताँगा रुकवा

दिया । सामान नीचे जमीन पर ही उतार कर उसने ताँगे वाले को किराया दे दिया । उसके बाद सुनन्दा को वहीं पर छोड़कर वह शिविर के भीतर गया । थोड़ी देर मे अपनी ही उम्र के एक प्रौढ़ युवक के साथ वह वापस आया । युवक के मुख पर गेहुँएँ रंग की आभा चमक रही थी । वह पेशावरियो का-सा कुल्लेदार साफा, बंद गले का लंबा गरम कोट और सलवार पहने था । बड़े-बड़े गलमुच्छे और बड़ी-बड़ी मूछें रखे था । सुनन्दा को लगा कि वह कोई पठान है । वह कुतूहल के साथ उसकी ओर देख रही थी ।

जब दोनों निकट आये तब राजीव ने परिचय कराते हुए कहा—"यही है देशराज, सुनन्दा, जिसका जिक्र मैंने तुमसे किया था । देशराज, यह सुनन्दा है, मेरी साथिन ।"

दोनो ने परस्पर हाथ जोड़े । देशराज बड़ी ही शालीनता और शिष्टता-भरी मंद-मंद स्निग्ध मुसकान मुख पर झलकाता हुआ सुनन्दा की ओर देख रहा था । दूर से देखने पर सुनन्दा को लगा था कि वह कोई बड़ा ही जालिम और दुर्धर्ष प्रकृति का व्यक्ति होगा, पर उसकी मुसकान देखकर उसके मन मे तत्काल यह दृढ़ विश्वास जम गया कि उसके समान सहृदय व्यक्ति अधिक नही मिल सकते ।

देशराज ने आधा सामान अपने हाथो मे ले लिया और आधा राजीव के हाथो मे दे दिया । उसके बाद सुनन्दा से बोला—"चलिये ।"

शरणार्थी शिविर मे बीच वाली एक पंक्ति मे एकदम कोने

पर जो तंबू था उसके भीतर देशराज इन लोगो को ले गया। भीतर दो खटियाँ पड़ी थीं और उन दो खटियो के बीच में एक छोटी सी दरी बिछी थी, जो दो स्थानो पर फट चुकी थी। तबू को दो भागो में विभक्त कर दिया गया था। बाहर का हिस्सा, जहाँ खटिया पड़ी थी, कुछ बड़ा और चौड़ा था। बीच में कनवास का ही एक पर्दा था। पर्दे के पीछे का हिस्सा छोटा था। वहाँ रसोई होती थी।

सामान नीचे रखकर देशराज ने उसी स्निग्ध मुसकान के साथ—जो उसके गलमुच्छो और बड़ी-बड़ी मूछो से मेल नहीं खाती थी—बड़े ही कोमल स्वर में सुनंदा से कहा—"आप इस खटिया पर आराम से बैठ जाइये। इसे अपना ही घर समझिये। जब तक आप चाहे बिना तनिक भी संकोच के रहे। मेरा एक आदमी है, वह आपको किसी बात की तकलीफ नहीं होने देगा। काका!"

भीतर से किसी ने कहा—'हाँ जी!"

"बाहर आना!" देशराज बोला।

एक मटमैले रंग की कमीज और प्रायः उसी रंग से मिलते हुए कपड़े की लुंगी पहने एक सोलह-सत्रह बरस का लड़का बाहर आया। उसके मुख पर एक सहज भोलापन टपकता था। सुनन्दा को लगा कि वह उससे न जाने कब से परिचित है। उसे देखते ही उसके भीतर एक सहज स्नेह उमड़ आया।

"काका, देखो," देशराज ने कहा, "आप दोनों आज ही बाहर से आये हैं और आज से यहीं रहेंगे। आप लोगों को किसी भी

बात की कोई तकलीफ न होने पाये, इसका ध्यान रखना। मैं यहाँ रहूँ या न रहूँ, तुम सब समय आप लोगों की खिदमत मे रहना।"

"अच्छा जी!" लड़के ने कहा।

"दो प्याला चाय बना सकते हो जल्दी से?" देशराज ने पूछा।

"हाँ जी!"

"तब जाओ जल्दी तैयार करो।"

"चंगा जी!" कहकर लड़का भीतर चला गया।

सुनन्दा सुनकर स्नेहपूर्वक मुसकराने लगी।

"आप लोग बैठिये जी!" देशराज ने सुनंदा की ओर देखकर कहा।

सुनन्दा धीरे से खटिया पर बैठ गई। राजीव भी दूसरी खटिया पर बैठ गया और देशराज का हाथ खीचकर उसने उसे अपनी बगल में बिठा लिया।

"और सुनाओ, भाई, गल की है!" याराना ढंग से देशराज की पीठ थपथपाते हुए राजीव ने कहा।

"सब चंगी है जी!" कहकर देशराज मुसकराया। "अपना हाल सुनाओ।"

"वह जमीन हमें दिलाओ, दोस्त।"

"वह तो खाली पड़ी है जी! जब चाहो इस्तेमाल में ला सकते हो। कोई चीं-चपड़ करने वाला नही।"

"सुनन्दा ने तो मुझे डरा दिया," राजीव इंगित से सुनन्दा की ओर देखकर मुसकराता हुआ बोला। "यह तो कहती है कि पहले तो आस-पास के गाँवों के लोग एतराज करेंगे, और अगर

वे नहीं भी करेंगे तो सरकार दस्तन्दाजी किये बिना न रहेगी।"

"कोई कुछ नहीं करेगा जी!" सांत्वना के स्वर में देशराज बोला। "सरकार को तो इस बात से खुशी ही होनी चाहिये। देश मे जब अनाज की इतनी कमी है तब कोई आदमी अगर मुद्दत से वीरान पड़ी हुई किसी जमीन में अन्न उपजाता है तो वह सरकार की मदद ही करता है। रही गॉव वालो की बात। सो वे लोग इस हद तक अंधविश्वासी हैं कि उस जमीन को छूना भी पाप समझते है। इसलिए उन लोगों की कोई दिलचस्पी उसमें नहीं है।"

राजीव देशराज से पहले ही यह सुन चुका था, पर उसकी पुनरुक्ति सुनकर उसका उत्साह दुगना बढ़ गया। उसी उत्साह से उसने कहा—"अच्छा दोस्त, तुम सबसे पहला काम कल यह करो कि सब औजार जुटाकर मुझे दे जाओ। मै कल ही से उस शेड को ठीक करने के काम मे जुट जाता हूॅ।"

"अभी लो जी, कल की क्या बात है।" देशराज मुसकराता हुआ बोला।

"तब ठीक है। अच्छा, यह बताओ, कुछ मजदूर मिल सकते है जमीन खोदने के लिए? मैं भरसक अच्छी मजूरी उन्हे दूॅगा।"

"मजदूर तो जी, तुम्हे एक भी नही मिलेगा। कौन अपने प्राणो को खतरे मे डालने के लिये तैयार होगा?"

"खतरा कैसा?"

"जैसा कि उन लोगों का विश्वास है, जो व्यक्ति उस जमीन को खोदेगा या उसमे हल चलावेगा उसकी मृत्यु तो होगी ही, साथ ही उसके कुनबे वालो को भी बड़ी दुर्गति से होकर गुजरना

पड़ेगा। पर खुदवाई की कोई खास जरूरत है भी नहीं। जमीन बहुत अच्छी है। केवल ऊपर की परत की मिट्टी कुछ थोड़ी सी कड़ी है। अगर दो-बार अच्छी तरह हल चल जाय तो सारी जमीन सोने की तरह निखर जाय और सचमुच सोना ही फलाने लगे।"

"पर हल का प्रबन्ध कैसे होगा?"

"वह मैं कर दूँगा जी। पर हल चलाना होगा तुम्हीं को।"

"यह काम तो मैं आसानी से कर सकता हूँ," अत्यन्त उत्साहित होकर राजीव बोला।

"तब फिर चिन्ता की क्या बात है।" देशराज ने कहा।

'काका' दो बड़े-बड़े पंजाबी गिलासों मे भरकर चाय लाया। एक गिलास मे तीन पाव से कम चाय न आती होगी। सुनन्दा देखकर घबरा गई। जब लड़के ने एक गिलास सुनन्दा की ओर बढ़ाया तब उसकी समझ में न आया कि क्या करे। उस शरणार्थी शिविर मे, जहाँ के लोग असंख्य विवशताओ में अपना जीवन बिता रहे थे, यह माँग पेश करना कि चाय प्यालो मे लायी जाय गिलास में नहीं, अत्यन्त अशिष्टता ही नहीं, बर्बरता भी होती। यह सुनन्दा जानती थी। वह यह भी जानती थी कि प्याले देशराज के यहाँ होगे नही, यदि होते तो लड़का पहले ही ले आता। क्षणिक झिझक के बाद उसने गिलास ले ही लिया। पर लेते ही हाथ जलने लगा। गिलास भरा हुआ था और चाय गरम थी। उसने धीरे से उसे नीचे ठंढा होने के लिए रख दिया। राजीव ने मुसकराकर अपना जलता हुआ गिलास तत्काल मुँह

से लगा लिया। एक गिलास लड़का देशराज के लिये भी ले आया। वह अपने रूमाल से पकड़कर चाय पीने लगा। सुनन्दा ने दो तीन बार हाथ लगाया। आठ-दस मिनट बाद उसका गिलास इस योग्य हुआ कि वह पी सके।

चाय पी चुकने के बाद राजीव ने कहा—"सुनन्दा, चलो तुम्हें वह शेड और जमीन दिखा लायें।"

तीनों चले। चलते-चलते वे लोग काफी दूर निकल गये। सुनन्दा इतनी दूर तक पैदल चलने की आदी कभी नहीं रही। उसके पाँव चप्पलों से उलझने लगे। अंत मे वे लोग एक 'शेड' के पास पहुँचे जिसकी टीन की चादरें प्रायः उखड़ गई थी। देशराज और राजीव ठहर गये और उनके पीछे सुनन्दा भी।

"यही है वह शेड, सुनन्दा," राजीव ने कहा। उसके बाद देशराज की ओर मुँह करके बोला—"लकड़ी के कुछ टूटे फूटे टुकड़े भी मिल जायँ तो बीच मे 'पार्टीशन' करके रसोई वगैरह के लिए एक कमरा अलग निकल सकता है।"

"मैं देखूँगा, कहीं मिल जाय तो।"

उसके बाद वे लोग शेड के पिछवाड़े की तरफ गये। उसके सामने की खाली पड़ी हुई जमीन को दिखाते हुए राजीव ने कहा—'यही जमीन है, सुनन्दा। इसके चारों ओर ईंट और मिट्टी का घेरा सा बना हुआ देख रही हो? इतने हिस्से में खेती करना अंधशास्त्रानुसार मना है।"

सुनन्दा ने कहा—"खेत तो काफी बड़ा है! इतने सारे का उपयोग तुम कर सकोगे?"

"तुम देखती चली जाना, मैं क्या-क्या करिश्मे दिखाता हूँ", पूर्ण आत्मविश्वास के साथ राजीव बोला।

सुनन्दा उसकी ओर देखकर स्निग्ध, मधुर भाव से मुसकराने लगी।

जब वे लोग शिविर मे लौटे तब शाम हो चुकी थी। सुनन्दा बुरी तरह थक गई थी। उसके पाँवो मे भी दर्द होने लगा था।

\+ + +

दूसरे दिन सबेरे ही देशराज ने बहुत-से औजार, बोल्ट, कील-काँटे आदि लाकर राजीव को दे दिये। सुनन्दा को शिविर में ही छोड़कर राजीव एक बोरे मे सब सामान भरकर 'शेड' की मरम्मत के लिये चला गया। अपने साथ वह कुछ सत्तू, भुँजा हुआ चना और नमक लेता गया था। दिन भर वह वहाँ ठोक-पीट का काम करता रहा। शाम को जब लौटा तब सुनन्दा ने उसके मुख पर क्लांति की एक हलकी सी छाया देखी, यद्यपि वह मुसकरा रहा था। सुनन्दा के भीतर एक टीस-सी उठी। उसके मन मे एक बार यह कहने की इच्छा जगी कि "तुम बहुत थक गये हो। यह काम तुम्हारे बूते का नहीं, किसी और को सौप दो।" पर तत्काल वह सँभल गयी। पहले ही दिन राजीव के उत्साह पर पानी फेर देना कितना अनुचित होगा, यह वह समझ गयी।

बरबस मुख पर प्रसन्नता का भाव झलकाती हुई बोली—"आज तुम लगते हो ठीक राजमिस्त्री—मिस्त्रीराज नहीं!" कह कर अपने विनोद पर स्वयं हँसने लगी। "तमाम दाढ़ी तक धूल से भर गयी है।"

"काम बहुत है, पर मैं जल्दी ही सब ठीक कर लूँगा, तुम देख लेना। मै कुछ दूसरे ही कैंड़े का आदमी हूँ, सुनन्दा। अडमान मे मैने यह योजना बनायी थी कि कैदियो मे विद्रोह की आग सुलगा कर उलटे जेल के अधिकारियों को पकड़ कर कैद कर लिया जाय और गोरो के हाथ से सारे द्वीप की शासन-सत्ता छीन कर उसे नये ढंग से बसाया जाय। जंगलो को काट कर अधिक से अधिक भाग मे अन्न उपजाकर पुश्त-दर-पुश्त के लिये वहीं बसा जाय। खास कर ऐसे अपराधियो और राज-नीतिक कैदियो को वहाँ बसाया जाय, जो अविवाहित हो और जिनके ऊपर घर का कोई उत्तरदायित्व न हो। बर्बर लड़कियो से उनकी शादियाँ करके एक नयी मानवता की सृष्टि और विकास की योजना मैंने बनायी थी, जो सभ्यता से दूर रहने पर भी एक नये ढंग की शिक्षा और संस्कृति के वातावरण में पले, जो मानव-जीवन की साधना और विश्व-शांति का एक नया ही आदर्श, एक नया ही लक्ष्य आज के युग के आर्थिक व राजनीतिक चक्रो के पाटों में बुरी तरह पिसी हुई, सर्वध्वंसी सामरिकता से उत्पीड़ित सभ्य मानवता के आगे रख सके किन्हीं कारणो से मेरी वह योजना सफल न हो सकी। हम लोगों के बीच मे ही कैदियो के रूप मे कुछ गुप्तचर रहते थे। उन्हे अपने ही आदमी समझ कर एक दिन असावधानी से मैंने उनके आगे अपनी गुप्त योजना प्रकट कर दी। फल यह हुआ कि अधिकारियो ने मुझे और मेरे दो-एक घनिष्ठ साथियो को अंडमान से अलीपुर जेल में भेज दिया। उस रूप में न सही तो मै दूसरे रूप मे,

उसी से मिलती-जुलती एक दूसरे ढंग की योजना को कार्यान्वित करके छोड़ूँगा। तुम देख लेना! केवल धैर्य—लोहे की चट्टान की तरह अडिग धैर्य—की आवश्यकता है।" कहकर राजीव ने अपनी बँधी हुई मुट्ठी को ऊपर की ओर बढ़ाया, जैसे स्वयं अपने-आपको धैर्य का मंत्र पढ़ा रहा हो। उसकी अनमनी आँखों मे किसी दूर-स्थित लोक की सी स्वप्न-छाया घिर आयी थी।

सुनदा एकनिष्ठ भाव से उसकी बातें सुन रही थी। राजीव की आँखो की वह स्वप्नमयी छाया उसे अत्यन्त मोहक लग रही थी और उसके भीतर भी, अतल के भी अतल से, उसी तरह के स्वप्न की तरंग को हिलकोर रही थी।

भावुकता का आवेग शान्त होने पर राजीव ने कहा—"तुम अपना हाल बताओ। तुमने दिन कैसे बिताया? जी तो नही घबराया?"

सुनदा तत्काल जाग्रत और यथार्थ लोक मे आ पहुँची। मुसकराती हुई बोली—"मैं दिन भर शरणार्थिनियो के साथ थी। बड़े कष्ट मे अपने दिन बिता रही हैं बेचारियाँ। बड़ी परेशानी के बाद वे और उनके घरवाले दो जून का भोजन जुटा पाते हैं। पर सब है बड़े साहसी और परिश्रमी। अगर उन्हें सुविधाएँ दी जायँ तो वे अपने जीवन को सुव्यवस्थित बना सकती है। जिस पिछले जीवन से उनका सम्बन्ध एकदम टूट चुका है उसे प्रबल मनःशक्ति द्वारा भूलने का प्रयत्न कर रही है, और यथार्थता को स्वीकार करके उसके अनुरूप अपने जीवन को बनाने की इच्छा उनमे जोर पकड़ती जाती है। मुझे भी उन्होने अपनी

ही तरह शरणार्थिनी समझा। मैं कहाँ से और किन-किन चक्करों के बाद यहाँ आई हूँ, यह जानने के लिये प्रायः सभी ने उत्सुकता जताई। मैंने बताया कि एक अर्थ मे मै भी अवश्य ही शरणार्थिनी हूँ, पर उन चक्करो का कोई अनुभव मुझे नहीं है जिनसे होकर उन्हें गुजरना पड़ा है। बच्चे भी मेरा परिचय जानने के लिये बड़े उत्सुक दिखाई दिये। एक बच्ची ठीक जानकी की तरह दिखाई देती थी। मैंने उसे खूब प्यार किया और गोद मे लेकर उसका नाम पूछा। वह बड़े उत्साह से बोली—'उमित्ता' मालूम हुआ कि उसका नाम सुमित्रा है। फिर उसने पंजाबी में मुझसे पूछा कि 'तुम कौन हो?' मैंने कहा—'मैं तुम्हारी बुआ हूँ!' बुआ का अर्थ वह कुछ समझी हो या न समझी हो, पर परम प्रसन्न होकर 'बुआ! बुआ!' करने लगी।"

"मुझे बड़ी खुशी हुई यह जानकर कि तुमने इन लोगो से हेलमेल बढ़ा लिया है और 'बुआ' कहलाने के सुख का साधन भी जुटा लिया है!" कहकर राजीव विनोदपूर्वक मुसकराया। फिर सहसा गंभीर होकर बोला—"पर एक बात तुम्हें याद रखनी होगी, सुनन्दा। आज से तुम केवल सुमित्रा की ही नहीं, जितने बच्चे यहाँ है उन सब की बुआ हो!"

पैंतीसवाँ परिच्छेद

सुनन्दा ने अधिक से अधिक शरणार्थी परिवारों से हेलमेल बढ़ाना अपना प्रतिदिन का कार्यक्रम बना लिया। वह उनकी रात-दिन की छोटी-मोटी समस्याओं को सुलझाने मे भरसक उनकी

सहायता करती। कम से कम खर्च से अधिक से अधिक लाभ कैसे उठाया जा सकता है, इसका निर्देशन करती रहती। उनके कामों में हाथ बटाती रहती। जो बच्चे अपनी माताओं को विविध प्रकार की असम्भव माँगों से परेशान किये रहते उन्हें मनाती और खेलाती। अपेक्षाकृत बड़े बच्चो को पढ़ाती-लिखाती। अक्सर एक-दूसरे की बगल में रहने वाले परिवारो के बीच छोटे छोटे स्वार्थो को लेकर झगड़ा होता रहता। सुनन्दा बीच मे मध्यस्थ बनकर ऐसा फैसला कर देती जिससे दोनों को सन्तोष हो जाता। उसकी सुयोग्य मध्यस्थता का ऐसा प्रभाव शरणार्थी समाज पर—विशेषकर महिलाओ पर—पड़ गया कि अक्सर वे अपने आपसी झगड़ों के निबटारे के लिए स्वयं उसके पास पहुँचतीं। और सुनंदा के प्रेमपूर्ण व्यवहार, सहृदयता, सहायता करने की आंतरिक प्रवृत्ति, निःस्वार्थ भाव, समझदारी और बुद्धिमत्ता सबका सम्मिलित जादू आश्चर्यजनक रूप से काम करने लगा। फल यह हुआ कि धीरे-धीरे सुनंदा के अस्तित्व ने उन लोगो के लिए अनिवार्य आवश्यकता का रूप धारण कर लिया। उसके प्रति सबके मन में अगाध श्रद्धा और संभ्रम का भाव भर गया। सबकी यह इच्छा रहने लगी कि पलटे मे सुनन्दा को भी उसकी छोटी-मोटी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में सहायता पहुँचाते रहे। पर सुनंदा भरसक किसी की भी सहायता की मुहताज अपने को न रखती थी और सभी के सेवा-संबंधी आग्रह को प्रेम के साथ टाल देती थी।

प्रारंभ में सुनंदा सारे शरणार्थी शिविर मे 'बहनजी' के नाम से ख्यात हो गई। सबके आपसी वार्तालाप मे केवल 'बहनजी'

शब्द से यह समझ लिया जाता था कि यह सुनदा का बोधक है। बाद में यह बहनजी 'देवीजी' मे बदल गया। "देवीजी आई थीं, देवीजी ने यह कहा, देवीजी ने वह कहा, देवीजी ऐसी है, देवीजी वैसी हैं।" जब किसी संदिग्ध बात पर दो पत्तों या दो व्यक्तियों मे बहस होने लगती, तब यदि कोई अपनी बात को यथार्थता के प्रमाण-स्वरूप यह कह देता कि "देवीजी भी ऐसा ही मानती हैं," तब फिर उसकी यथार्थता के संबंध में किसी को कोई संदेह न रह जाता क्योंकि देवी जी किसी भी विषय पर कोई गलत मत दे सकती हैं, यह विश्वास कोई नही कर सकता था। केवल इतना ही नही, शिविर में प्रायः सभी लोगो के मन मे यह निश्चित धारणा जम गई थी कि संसार मे शायद ही कोई ऐसा विषय बचा होगा जिसकी जानकारी देवी जी को न हो।

सभी बच्चे उसे 'बुआजी' कहा करते थे। प्रारंभ में कुछ बच्चे 'गुरुजी' कहने लगे थे, पर सुनन्दा ने स्वयं उन्हें 'बुआ जी' कहने के लिये प्रेरित किया। कैसा ही उपद्रवी बच्चा क्यो न हो बुआजी के आगे भीगी बिल्ली बन जाता था। सुनन्दा किसी बच्चे को उसकी शरारत के लिये न तो डाँटती थी न धमकाती थी। केवल आँखों की गंभीर दृष्टि द्वारा इशारे से उसके मन पर जादू का-सा यह प्रभाव डाल देती थी कि वह जो काम कर रहा है वह अत्यंत अनुचित है और स्वयं उसी के लिये हानिकारक है। बच्चा तत्काल सँभल कर बैठ जाता और पूर्ण मनोयोग से पढ़ने लगता। सुनन्दा का छी-छी कह देना ही किसी बच्चे के भीतर उत्कट आत्मग्लानि जगाने के लिये पर्याप्त था। जब कोई बच्चा अपनी

माँ को इस हद तक परेशान कर देता कि किसी भी धमकी या पुचकार से शांत न होता तब माता ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करती—"मैं अभी बुआजी के पास जाकर उन्हें बुला लाती हूँ।" तत्काल बच्चा ऐसा शांत हो जाता जैसे किसी ने मंत्र फूँक दिया हो।

सुनन्दा बच्चों को उनकी उम्र और योग्यता के अनुसार दस-दस, पंद्रह-पंद्रह की टोलियों में बाँट कर अलग-अलग घंटों मे, एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार पढ़ाया करती थी और नियत कार्यक्रम के अनुसार ही वह अलग-अलग दिनो मे शरणार्थी शिविर की अलग-अलग पंक्तियो मे बारी-बारी से चक्कर लगाया करती थी। प्रत्येक परिवार की नयी-नयी समस्याओ की उलझनों को ऐसी आसानी से सुलझा जाती कि परिवार के परेशान सदस्य आश्चर्य से देखते रह जाते। नोन, तेल, लकड़ी चीनी, चावल, आटा, दाल, तरकारी, मसाला, चाय, साबुन, तेल आदि किसी भी चीज को अनिवार्य रूप से आवश्यक समझकर उनमे से किसी के निपट अभाव से यदि किसी परिवार के प्राणी हताश बैठे होते तो सुनन्दा एक ऐसा उपाय बता देती जिसके द्वारा बिना उस विशेष वस्तु के भी बड़े सुन्दर ढंग से काम चल जाता और उसका अभाव न खटकता।

देहाती शरणार्थिनियो को वह काढ़ने-बुनने और बिना मशीन की सहायता के हाथ से कपड़े सीने का काम भी बीच-बीच में सिखाती रहती थी जिससे वे घर बैठे-बैठे कुछ कमा भी सकें। वह स्वयं भी नित्य कुछ-न-कुछ बुनती रहती थी।

इन सब कार्यक्रमो से सुनन्दा इतनी जल्दी अभ्यस्त हो गयी

कि उसे स्वयं आश्चर्य होने लगा। उसे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे वह युगो से उसी कार्यक्रम के अनुसार चलती आ रही हो। उन सब कामो से उसे आंतरिक सुख और उल्लास का अनुभव होता। लगता कि जिस खोये हुए कर्तव्य-पथ की खोज मे वह इतने दिनो से भटकती फिरती थी वह फिर नये और विस्तृत रूप में उसे मिल गया है। राजीव ने जिस 'बृहत् परिवार' की बात उससे कही थी, वह शरणार्थी शिविर उसी का एक महत्त्व-पूर्ण अंग उसे लगा।

मन के अनुकूल कार्य के लिये उपयुक्त वातावरण मिल जाने से उसका स्वास्थ्य और सौंदर्य भी दिन पर दिन निखरने लगा। रक्त और मांस मे कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई, पर एक अपूर्व आध्यात्मिक तेज के परिस्फुटन के कारण उसका मुख जैसे रेडियम के-से धातु तत्त्व से सब समय दीप्त रहने लगा।

राजीव ने जिस तरह के परिश्रम का काम अपने ऊपर ले लिया था उससे सुनन्दा के नारी-हृदय मे कभी-कभी एक करुणा-भरी दुर्बलता उमड़ पड़ती और वह सोचने लगती कि उस परि-श्रम की क्या आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप एक क्षण के लिये भी दम लेने का अवकाश वह नहीं पाता—दिन-रात खटना, केवल खटना! जीवन की परिपूर्णता क्या केवल इसी प्रकार खटते रहने मे समाहित है? मानवीय चेतना की रागमयी प्रवृत्तियाँ, मानव-जीवन के रंग-भरे पहलू—ये सब क्या एकदम निरर्थक है? अपने एकांत क्षणों मे कभी-कभी जब इस प्रकार के भाव उसके भीतर उमड़ने लगते तब एक निराली कसक से उसका वक्ष फूल-

फूल उठता। पर फिर तत्काल वह इस प्रकार की दुर्बलता-भरी भावनाओं को पूरे प्रयत्नों से झाड़ फेंकती।

राजीव को 'शेड' की मरम्मत करने मे प्रायः दो हफ्ते लग गये। उसके बाद दोनो वहीं जाकर रहने लगे। अल्पतम आवश्यकता की चीजें किसी तरह से उसने जुटा लीं। प्रारंभ मे कुछ दिनो तक दोनो सीमेंट के फर्श पर ही सोते रहे। उसके बाद देशराज कहीं से एक खटिया जुटाकर 'देवीजी' के लिये ले आया। पर सुनन्दा किसी भी हालत मे खटिया पर सोने को राजी न हुई और उस पर उसने राजीव का बिस्तर बिछा दिया।

'शेड' शिविर से प्रायः एक मील की दूरी पर था। सुनन्दा जिस दिन शिविर छोड़कर गयी उस दिन एक मौन हाहाकार सा सारे शिविर मे छा गया। पर सुनन्दा ने सबको यह आश्वासन दिया कि वह अपने इतने दिनो के कार्यक्रम मे इंच भर भी अंतर नही आने देगी, और वह अपनी बात पर पक्की रही। राजीव को खिला-पिलाकर वह शिविर के लिये चल देती थी। और शाम तक वही रहती। धीरे-धीरे वह उतनी दूर तक पैदल चलने की आदी हो गयी और उसके चप्पल भी अभ्यस्त हो गये।

राजीव भी धीरे-धीरे अपनी योजना के अनुसार इंच-इंच आगे बढ़ता चला जा रहा था। सुनन्दा ने उसकी योजना से शरणार्थियो को परिचित कराया तब उनमें से कुछ लोग अत्यन्त उत्साहित हो उठे। यह बात इन लोगो के आगे स्पष्ट हो गयी कि राजीव अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये कुछ नहीं कर रहा है, शरणार्थियो के सामूहिक हित के लिए ही करना चाहता है। पर

वे लोग प्रारंभ मे वर्जित भूमि को गोड़ने और जोतने के काम में सहायता देने के लिये तैयार नहीं हुए।

देशराज ने कहीं से बैलों की एक खासी अच्छी जोड़ी और हल का प्रबन्ध कर दिया था। उनकी सहायता से राजीव ने अकेले ही हल से जुताई का काम शुरू कर दिया। दिन-भर वह एक सिरे से दूसरे सिरे तक बैलों को घुमाता रहता था। बीच मे घंटे आध घंटे के लिए विश्राम ले लेता, अपने लिये नहीं बैलों के लिये। बैलों के खाद्य का पूरा ध्यान रखता था। सानी-पानी का प्रबन्ध वह अपने ही हाथ से करता था। खेत को उसने अंदाजिया कुछ हिस्सों में बाँट लिया था। दो दिन एक हिस्से मे हल चलाता, उसके बाद दूसरे हिस्से मे, उसके बाद तीसरे मे।

पर बहुत दिनो से परती पड़ी हुई जमीन के लिये वह इतना ही पर्याप्त नहीं समझता था कि केवल एक आध बार साधारण हल से जुताई करने से काम चल जायगा। उसने देशराज को स्थिति समझायी। देशराज ने बहुत कोशिशों के बाद दो-चार जोड़े बैलों और नये ढंग के हलों का प्रबंध कर दिया। शरणार्थियों मे प्रारंभ मे उत्साह अवश्य उमड़ा था, पर उनमें ऐसे लोगों की संख्या नहीं के बराबर थी जो हल चलाने का परिश्रम (और वह भी परती जमीन मे) करने के लिये खुशी से तत्पर होते। राजीव ने देखा बिना उन लोगों मे प्रबल इच्छा जगाये काम न चलेगा। अकेला आदमी आदर्श की प्रारंभिक सीढ़ी भले ही तैयार कर ले, उसे पूर्णतया कार्यान्वित नहीं कर सकता। इसलिये उसने शरणार्थियों के बीच मे जाकर प्रतिदिन एक घंटा भाषण देने का

नियम बना लिया। उन्हे वह यह निर्देशित करना चाहता था कि मूलतः उखड़े हुए और निरर्थक बिखरे हुए जीवन को संगठित करने और उसमे नया प्राण भरने के लिये नियमित कर्म और कठोर से कठोर परिश्रम का कितना बड़ा महत्त्व है। उसने ओजस्वी शब्दों मे यह प्रमाणित किया कि कर्म ही जीवन है और कर्महीनता ही मृत्यु है। इसके अतिरिक्त जीवन और मृत्यु की प्रत्येक परिभाषा झूठी कविता के रंगीन मायाजाल के अतिरिक्त और कुछ नही है। उसने बताया कि कविता के रंगीन माया-जाल की भी आवश्यकता जीवन को सुन्दर बनाने के लिये ही है और वह सारी रंगीनी कर्मचक्र के ही माध्यम से आनी चाहिये। कर्म! कर्म! केवल कर्म! कठिन कर्म, कठिन से कठिनतर कर्म! यदि वास्तविक अर्थ मे जीना है तो केवल इसी को जीवन का मूलमंत्र बनाना होगा, और सब कार्यों की मूल प्रेरिका शक्ति है धरती माता। वही शक्ति का भी मूल उत्स है और जीवन का भी, वही महासिद्धि की मूल साधना है। इस तत्त्व को सरल से सरल, किंतु जोशीली से जोशीली भाषा मे अर्द्ध शिक्षित तथा अशिक्षित शरणार्थियो के मस्तिष्क के भीतर प्रवेश कराने का निरंतर प्रयत्न वह करता रहा। साथ ही अपनी सहकारिता की योजना और उस योजना के आगे एक दूसरी योजना की अस्पष्ट झाँकी (जिसे वे भोले भाले शरणार्थी ठीक से समझ पाने मे असमर्थ थे) देने का प्रयास करता रहता।

फल यह हुआ कि पन्द्रह-बीस शरणार्थियो ने शपथ ली कि वे हर काम मे सुबह से शाम तक उसका साथ देते रहेगे और

किसी भी काम से नहीं मुकरेंगे।

देशराज ने जिन बैलों और हलों का प्रबंध किया था उन्हें राजीव ने अपने साथियों के सिपुर्द कर दिया और एक निश्चित विधि के अनुसार उसने उनसे भी सारी जमीन खुदवायी और स्वयं भी खोदता चला गया। पूरी जमीन कई बार खोद डाली गई।

उसके बाद प्रश्न उठा सिंचाई का। यह प्रश्न कुछ टेढ़ा जरूर था और राजीव की दो चार रातें इसके समाधान में जागरण में बीतीं। एक दिन इसी चिंता में वह खेत से पूरब की ओर टहलता हुआ निकल गया। उस समय टहलने का कोई प्रकट उद्देश्य उसके मन में नहीं था, पर संभवतः उसके भीतरी मन में रहा हो। टहलते-टहलते वह प्रायः आधे मील तक आगे बढ़ गया। उतनी सारी जमीन भी बंजर पड़ी हुई थी जिसमें यत्र-तत्र जंगली पौदे और जंगली घास उगी हुई थी। कुछ आगे बढ़ने पर कुछ ताड़ के पेड़ उसे दिखायी दिये। सहसा उसे प्रत्यूष के प्रकाश में एक झलक चमकते हुए पानी की दिखायी दी। वह उत्सुकता से आगे बढ़ा। उसके सामने एक ताल पड़ा हुआ था जिसके ऊपर चारों ओर काई की एक अच्छी खासी परत जम गई थी। वह मारे प्रसन्नता के उछल पड़ा। लौटकर उसने अपने साथियों को फिर एक कठोर कर्म का पाठ—भूमिका के रूप में—पढ़ाया, और तब बताया कि गोड़ी हुई जमीन को अधिक से अधिक उर्वरा बनाने के लिये उसकी सिंचाई की कितनी बड़ी आवश्यकता है, और इस आवश्यकता की पूर्ति किस उपाय से हो सकती है—पौन मील दूर से तालाब का पानी लाया जा सकता है।

बड़ी परेशानियो के बाद एक दिन यह काम भी आरम्भ हुआ। चूँकि तालाब के पानी को नयी जमीन तक लाने में समय लगना अनिवार्य था, इसलिये इस बीच राजीव ने खेत के आस-पास के दो पुराने कुओ को—जो प्रायः सूख गये थे—इस योग्य बनवाया कि वे कामचलाऊ सिचाई के योग्य हो सकें। इस खुदाई के काम मे वह स्वयं भी अपने हाथ से परिश्रम करता रहा। उन कुओ के पानी से जितनी जमीन सींची जा सकी उतनी मे उसने साग-सब्जियाँ बुवाईं।

इस तरह उसकी योजना धीरे-धीरे अग्रसर होती चली गई। यदि योजना एक इञ्च अग्रसर होती तो राजीव का उत्साह एक योजन की दूरी तक बढ़ जाता। शरणार्थी अधिकाधिक संख्या मे सहयोग देने के लिये आने लगे। हलो की संख्या और अधिक बढ़ाई गयी। आस-पास की जितनी भी और भूमि बंजर पड़ी हुई थी धीरे-धीरे उस सबको भी जोतने का काम आरम्भ कर दिया गया। और उसके बाद अनवरत संगठित श्रम से योजना को बड़ी तीव्र गति से बढ़ाया जाने लगा।

\+ \+ \+

छत्तीसवाँ परिच्छेद

ढाई वर्ष बाद।

शहर से सात मील की दूरी 'जीप' से तय करती हुई एक महिला रास्ते भर की धूल से धूसरित होकर बारिकनुमाँ मकानों की लंबी कतार के पास रुकी। वह स्वयं 'जीप' को चला रही थी और अकेली थी। जब वह बाहर निकली तब उसके धूलि-धूसरित

चेहरे और सफेद फ्रेम के भीतर गाढ़े नीले रंग के चश्मे से ढकी हुई आँखों से इस बात का पता लगा सकना कठिन था कि उसकी उम्र क्या होगी और वह सुन्दरी है या साधारण। अपने बालों और पैंट से धूल झाड़कर उसने चारों ओर से बारिकनुमा मकानों से घिरे अहाते के भीतर प्रवेश किया। एक व्यक्ति को सामने पाकर उसने प्रश्न किया—"क्या श्रीमती सुनंदा देवी यहीं रहती हैं ?"

"ओह, परिचालिका जी को आप पूछ रही हैं ? आप कहाँ से पधारी हैं ?" व्यक्ति ने पूछा।

"मैं दिल्ली से आ रही हूँ। उनसे मिलना चाहती हूँ। बहुत आवश्यक काम से आई हूँ। कृपया तनिक सूचित कर दें।"

"आपका शुभ नाम ?"

"मेरे नाम से शायद वह पहचानेंगी नहीं। फिर भी आप बता दीजिये, मुझे रमला गिडवानी कहते हैं।"

"अच्छी बात है। मैं अभी जाता हूँ," कहकर व्यक्ति चला गया।

महिला—रमला गिडवानी—पैंट की जेब में हाथ डाले वहीं पर खड़ी रही और सामने वाले बोर्ड की ओर देखने लगी। बोर्ड पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"मुक्ति-निवेश।"

कुछ ही देर बाद प्रायः सोलह-सत्रह वर्ष की एक लड़की आई और रमला गिडवानी से बोली—"चलिए, आपको अन्दर बुलाया है।"

रमला गिडवानी उस लड़की का अनुसरण करती हुई पश्चिम वाले खंड की ओर गई। भीतर वाले गलियारे में कुछ दूर तक

चलने पर एक कमरे के बाहर एक छोटी-सी तख्ती पर लिखा हुआ दिखाई दिया—"सुनंदा देवी।"

चिक उठाकर पहले लड़की ने भीतर प्रवेश किया और उसी तरह चिक उठाये हुए उसने रमला गिडवानी से भीतर चले आने के लिए कहा।

भीतर एक टेबिल पर फैलाये हुए कुछ कागजों को देखती हुई सुनन्दा बैठी थी। आगंतुक महिला के स्वागत के लिये हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और बोली—"आइए, पधारिए।"

रमला गिडवानी, जो जीप चलाते और जीप से उतरते समय बड़ी धृष्ट और साहसी मालूम होती थी, इस समय सरलता की मूर्ति बनी हुई थी। सहमी और सकुचाई सी वह सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई।

जब दोनों बैठ गयीं तब सुनंदा ने पूछा—"कहिये, आप कैसे पधारी हैं?"

"मैं इंडियन वीम्यन्स लिबर्टी लीग की तरफ से आपके पास आयी हूँ।" आँखों से हरा चश्मा उतारती हुई रमला गिडवानी बोली। (चश्मा उतारने पर यह स्पष्ट हो गया कि उनकी उम्र बीस-बाईस वर्ष से अधिक नहीं है) "अगले महीने उसका वार्षिक अधिवेशन है। हमारी सेक्रेटरी साहब ने आपसे उसमें प्रीसाइड करने के लिये अनुरोध किया है। आपके पास आफीशल पत्र तो पहुँचा ही होगा। पर उसका कोई उत्तर अभी तक हमें नहीं मिला।"

"अगले महीने तो मुझे दक्षिण की तरफ दौरे पर जाना है।

अधिवेशन किस तारीख को है ? एक पत्र आया था, मुझे याद आ रहा है, पर तारीख की याद नहीं रह गयी।"

"तीसरी और चौथी तारीख को।"

"तब ठीक है, मुझे दूसरे हफ्ते जाना है । पर मुझे यह तो कुछ भी मालूम नही कि आपकी संस्था किन उद्देश्यो से स्थापित हुई है, उन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये उसने आज तक क्या क्या काम किये हैं और भविष्य की योजनाएँ उसकी क्या हैं।"

"उसके उद्देश्यों का पता तो आपको उसके नाम से ही लग गया होगा । हमारी जो बहनें गुलामी की जंजीरो मे जकड़ी हुई हैं उन्हें मुक्ति का पाठ पढ़ाना ही हमारी सस्था का उद्देश्य है। रही उस उद्देश्य की पूर्ति की बात । सो यह काम उन लोगों का है जिन्हें वह पाठ पढ़ाया जाता है । हमारी संस्था प्रतिवर्ष प्रस्ताव पास करती रहती है। सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्रों में जो अन्याय हमारे स्त्री-समाज पर होते रहते हैं उन्ही के विरोध मे भाषण देना, विरोध-सूचक या खेद-प्रकाशक प्रस्ताव पास करना और उन प्रस्तावों की सूचना अधिक से अधिक पत्रो में छपवाना ही हमारा काम है।"

सुनन्दा इस तरह से, विचित्र आँखो से उसकी ओर देख रही थी जैसे वह कुछ समझ ही न पा रही हो । विस्मय के धक्के से जब वह सँभली तब उसने कहा—"पर इन कोरे प्रस्तावों से क्या आपको किसी लाभ की संभावना दिखाई देती है ? जब तक उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने का प्रयत्न आपकी संस्था की तरफ से न हो तब तक उनकी क्या सार्थकता है, यह बात

मेरी समझ में नहीं आ पाती !"

"देखिये जी," सरला गिडवानी ने समझाने के उद्देश्य से कहा, "बात यह है कि किसी अन्याय के शाब्दिक विरोध का भी इस प्रदर्शन के युग मे बड़ा महत्त्व है । आज के युग में सभी क्षेत्रों मे शब्दो का जाल बिछाने और कागजी घोड़े दौड़ाने से ही काम निकलता है, वास्तविक प्रयोगो से नहीं । वास्तविक प्रयोग तो केवल एक विशेष स्थान तक सीमित रह जाते हैं, पर शब्दो द्वारा बिछाया गया जाल अखबारो के जरिये से सारे देश मे फैल जाता है । और सबसे बड़ी बात यह है जी, कि सरकारी क्षेत्रो पर तभी प्रभाव पड़ता है जब किसी बात को खूब चिल्ला-चिल्लाकर कहा जाय और अधिक से अधिक पत्रो मे उसे छपाया जाय । आप तो सब जानती ही हैं ।"

"पर मुझे क्षमा करें, बहन," सुनंदा ने शांत भाव से कहा, "मेरा क्षेत्र तो वास्तविक प्रयोगो तक ही सीमित है । मैं मानती हूँ कि आपकी बात में बहुत कुछ तथ्य है । आज के युग में किसी भी काम को बिना बड़े-बड़े भोपुओं की सहायता के आगे नही बढ़ाया जा सकता । पर केवल भोपुओ का ही शोर रहे और काम कुछ भी न हो, यह बात मेरी समझ मे नहीं आती । इसलिये आप मुझे क्षमा करें, इस काम के लिये किसी दूसरी योग्य महिला की खोज करें ।"

रमला गिडवानी के मुख पर म्लान छाया घिर आयी । करुण विनय के स्वर में बोली—"देखये जी, मैं इतनी दूर से बड़ी आशा लेकर आपके पास आयी हूँ । इस काम के लिए आप से अधिक

योग्य महिला कौन मिल सकेगी ! मै हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ, बहन जी, आप स्वीकार कर लें। हमारी लीग की मेम्बरों ने आप ही को इस पद के लिये बहुमत से चुना है। आप स्त्रियों की उन्नति के लिये जो कार्य यहाँ कर रही हैं उसकी शोहरत चारो ओर है। आपने विभिन्न अवसरों पर विभिन्न संस्थाओं के उद्घाटन या वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर जो भाषण दिये हैं, वे अच्छे-अच्छे पत्रो मे बराबर छपते रहे हैं। उन्हे पढ़कर न जाने कितनी नारियों के मन मे स्वजातीय बहनो की पतित दशा को सुधारने का आजीवन व्रत लेने की प्रेरणा मिली है। उन भाषणों से आपकी सच्ची लगन, और अपने महान ध्येय को पूरा करने के दृढ़व्रत का पता चलता है। मै स्वयं आपका भाषण सुन चुकी हूँ। पिछली गर्मियों मे मसूरी मे आर्य महिला मंडल के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर आप जब बोल रही थी तब मैं भी वहाँ उपस्थित थी। ऐसे जोश के साथ आप धारा-प्रवाह भाषण दे रही थीं कि आपका मुख एकदम तमतमा उठा था। नारी की दयनीय दशा के लिये जो अंध सामाजिक परम्पराएँ और उन परम्पराओ के जो धनीधोरी उत्तरदायी है उनके विरुद्ध आपके अन्तर से ऐसे विस्फोट भरे शब्द निकल रहे थे जो मेरे हृदय पर गरम गरम हथौड़े की तरह चोट कर रहे थे। आपकी आँखो से चिनगारियाँ निकल रही थीं। देखकर लगता था कि सारी सभा में ज्वालाएँ धधक उठेंगी। उस दिन मेरी आँखो के आगे दिन भर आपकी वह ज्वालामयी मूर्ति नाचती रही और रात मे भी मैं नींद में उसी को देखती रही। तब से मेरे जीवन का यह स्वप्न

बन गया है, देवी जी, कि मैं भी एक दिन खड़े होकर आप ही की तरह ओजस्वी भाषण दे सकूँ और सुननेवालों के हृदयों को हिला सकूँ। हमारी सेक्रेटरी किसी दूसरे को आपके पास संदेश ले जाने को भेज रही थीं, पर मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे जाने दें। इस बहाने मैं एक बार अत्यन्त निकट से आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहती थी। अब अगर आप अस्वीकार करेंगी तो एक तो मुझे सेक्रेटरी के आगे हँसी का पात्र बनना पड़ेगा और दूसरे मुझे और मेरी ही तरह जो स्त्रियाँ आपकी भक्त बन चुकी हैं उनको कैसी निराशा होगी इसकी कल्पना आप नहीं कर सकतीं···"

सुनन्दा ने देखा, सचमुच लड़की के मुख पर निराशा की कालिमा सी पुत गयी। उसे दया आ गयी। बोली—"अच्छी बात है। जब आप इतना आग्रह करती हैं तब मैं आ ही जाऊँगी।" कहकर स्नेहपूर्वक मन्द-मन्द मुसकराने लगी।

लड़की का मुँह तत्काल अकृत्रिम प्रसन्नता से खिल उठा। "मैं आपकी इस कृपा के लिये बड़ी ही कृतज्ञ हूँ, देवी जी", उसने हाथ जोड़ते हुए कहा। "अब केवल एक कृपा आपको और करनी होगी। अपना भाषण लिखकर आप अगर अधिवेशन से दो-एक हफ्ता पहले ही हमारे आफिस मे भेज दें तो समय से उसे हम लोग छपा पायेंगे।"

"इसके लिये मैं आपको वचन नहीं दे सकती।" सुनन्दा ने कहा। "अगर मैं समय पर लिख पायी तो भेज भी दूँगी। नहीं तो मुझे जो कुछ कहना होगा, मुँह जबानी ही कहूँगी। आज तक

बराबर मेरा यही नियम रहा है।"

"तब अच्छी बात है जो, आपकी उपस्थिति ही हम लोगों के लिये काफी होगी।" कहकर रमला उठने लगी। उठते ही बोली—"एक प्रार्थना और है। मै आपके निवेश की कार्य-विधि जानने और देखने के लिये बहुत उत्सुक हूँ। क्या ऐसी सुविधा हो सकेगी?"

"क्यों नहीं, चलिये।" कहकर सुनन्दा स्वयं भी उठ खड़ी हुई। लड़की को साथ लेकर जब वह कमरे के बाहर गलियारे में आयी तब बायीं ओर को मुड़कर वह पहले वाले कमरे में उसे ले गयी। वहाॅ कुछ लड़कियाँ देशी करघो पर रंग-बिरंगे कपड़े बुन रही थीं। उसके बाद दोनो दूसरे कमरे में गयीं। वहाॅ कुछ लड़कियाॅ चरखा कात रही थीं। तीसरे कमरे में हाथ से कपड़ों की सिलाई हो रही थी। पाॅचवें में देशी कागज तैयार हो रहा था। छठे में दस्तकारी और बिनावट का काम हो रहा था। सातवें मे साबुन बनाने का काम सिखाया जा रहा था। आठवें में चित्रकारी की शिक्षा दी जा रही थी। नवें मे संगीत-चर्चा चल रही थी। उसके बाद दाहिनी ओर को मुड़कर वे लोग दूसरे खंड मे पहुॅच गयी। वहाॅ एक कमरे मे विविध व्यंजनो को बनाने की विधि बतायी जा रही थी। दूसरे में तरह तरह के अचार डालने व मुरब्बे बनाने के व्यावहारिक प्रयोग चल रहे थे। तीसरे मे बेंत व बाॅस की कुर्सियाँ, डलियाॅ और टोकरियाॅ तैयार की जा रही थीं। इसी तरह और भी कई कमरो मे सुनन्दा उस लड़की को स्वयं ले गयी जहाॅ तरह-तरह के काम सिखाये जा

रहे थे। उसके बाद वह बाहर पिछवाड़े की तरफ उसे ले गयी। वहाँ लड़कियों को बागबानी सिखायी जा रही थी। एक काफी बड़े जमीन के टुकड़े को अलग अलग चौकोर हिस्सो में बॉट दिया गया था। प्रत्येक भाग मे अलग-अलग किस्म की तरकारियॉ लगायी गयी थीं। सुनन्दा ने बताया कि "लड़कियॉ स्वयं अपने हाथ से तरकारियाँ बोती है, पौदों को सींचती है और वैज्ञानिक विधि से खाद डालकर उन्हे सारवान बनाती है। केवल इतना ही नही, बीजो के सम्बन्ध मे भी वे तरह-तरह के प्रयोग करती है। जब फल या साग पक कर बीज के उपयुक्त हो जाते है तब जिस पेड़ या पौदे की उपज अधिक परिपक्व और पुष्ट होती है, केवल उसी मे से बीज निकाले जाते हैं और उन बीजो को अलग बोया जाता है। उन परिपुष्ट बीजो से जो फल उत्पन्न होते हैं उनमे से भी सब से अधिक परिपुष्ट उपज को बीज के लिए चुना जाता है। इस प्रकार अधिक से अधिक विकसित फल-फूल और साग सब्जियाँ उत्पन्न करना हमारे बागबानी विभाग की लड़कियों को सिखाया जाता है।"

सुनंदा ने गोभी, टमाटर, मटर, लौकी, आलू आदि के ऐसे नमूने रमला को दिखाये कि वह दंग रह गई। बड़े शहरों की मार्केटो मे भी उस तरह के फल-फूल और साग-भाजियॉ सुलभ नही थीं।

कुछ ही दूर पर विलायती और देशी फूलो की क्यारियॉ लगी हुई थीं जिनमें बढ़िया से बढ़िया किस्म के मौसमी फूल खिले हुए थे।

उसके बाद बायी ओर मुड़कर वह एक मैदान में रमला को

ले गई, जहाँ लड़कियाँ व्यायाम कर रही थीं और विविध प्रकार के खेल-कूदों मे भाग ले रही थीं। वहाँ से वे दोनो दाईं ओर को मुड़ीं और एक ऐसी इमारत मे पहुँचीं जहाँ छोटे-छोटे बच्चो की कक्षा से लेकर उच्च कक्षाओं तक की स्कूली पढ़ाई नियमित रूप से हो रही थी। छोटे-छोटे बच्चे और बच्चियाँ एक कक्षा में एक-साथ पढ़ रहे थे। सुनन्दा को देखते ही वे "बुआजी! बुआजी!" कह कर उसका अंचल पकड़ने को दौड़े। "बैठो! बैठो! मैं अभी आती हूँ!" कहकर सुनंदा मुसकराती हुई बाहर निकल आई। उसी विद्या-भवन के एक बड़े कक्ष में उच्चतम कक्षा की लड़कियाँ किसी गंभीर विषय पर वादविवाद कर रही थीं और भाषण दे रही थीं।

"हम लोग प्रयत्न यह करती है कि जीवन के विकास के किसी भी अंग से लड़कियाँ वंचित न रहें और हर तरह से स्वावलंबी होना सीखें। जीवन पथ पर अग्रसर होती हुई किसी पर आश्रित रहने को बाध्य न हों। हम लोग यहाँ संघबद्ध जीवन बिताती हैं। पुरुष-संघ और नारी-संघ एक-दूसरे का साथ देते हुए संपूर्ण उपनिवेश के कामो को आपस मे बाँट लेते हैं। खेती का काम अधिकतर पुरुष करते है और बागवानी का स्त्रियाँ।"

उसके बाद सुनंदा रमला को दूसरे बाड़े मे ले गयी जहाँ लड़को की बस्ती थी। उसने बताया कि वहाँ का सारा कार्य-चक्र भी बहुत-कुछ उन्हीं रेखाओं पर आधारित है जिसका परिचय रमला लड़कियों की बस्ती मे पा चुकी थी। एक चक्कर बाहर से ही उस बाड़े मे घुमाकर सुनन्दा उसे उन हरे-भरे और विस्तृत खेतो मे ले गई जहाँ पूरी बस्ती के पुरुषो के ही संगठित और

संघबद्ध श्रम द्वारा सारा कृषि-कर्म होता था।

सब कुछ देखकर रमला अत्यन्त प्रभावित हुई। केवल एक प्रश्न उसने किया—"लड़को और लड़कियो की सहशिक्षा और स्त्रियो और पुरुषों के साहचर्य की कोई सुविधा क्या आपके यहाँ नही रहती ?"

"क्यो नहीं," सुनन्दा ने उत्तर दिया। "बहुत-से काम, जैसे बागबानी, लड़के लड़कियाँ मिलकर साथ-साथ भी करते है। उच्च-तम शिक्षा भी दोनो साथ-साथ पाते है। महत्त्वपूर्ण, सार्वजनिक विषयो पर वाद-विवाद और विचार-विनमय भी दोनो मे चलता रहता है। भोजन बनाने मे भी दोनो एक-दूसरे की सहायता करते रहते है। पर कुछ विषय अवश्य ऐसे है जो केवल लड़कियो के लिये ही उपयोगी है, जैसे शिशु-पालन और मातृत्व-विकास और कुछ ऐसे है जो केवल लड़को के लिये ही उपयोगी है, जैसे शस्त्रास्त्रो का संचालन…"

"तो क्या आपके यहाँ युद्ध-विद्या भी सिखायी जाती है ?" आश्चर्य से रमला ने पूछा। "क्या आप हिंसात्मक विषयों की शिक्षा देना भी अपने आदर्श के अन्तर्गत मानती है ?"

"क्यो नही," लड़की के आश्चर्य पर स्नेहपूर्वक मुसकराती हुई सुनन्दा बोली। "युद्ध की प्रवृत्ति लाखो वर्षो के मानवीय विकास और ह्रास के बावजूद अभी तक उसी ताजगी के साथ मानवात्मा के भीतर पायी जाती है, जिस रूप मे वह आदिम काल के बर्बरतम मनुष्यों मे वर्तमान थी। उसका निराकरण अहिंसा सम्बन्धी आदर्श को ऊपर से सोचने से नही हो सकता।

जब तक संसार के समस्त आर्थिक और राजनीतिक सिद्धान्तो के पुनर्मूयांकन द्वारा एक ऐसो विश्वव्यापी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना समस्त राष्ट्रों के संगठित प्रयत्नों द्वारा नहीं होती जो समता और व्यापक मानवीय सहयोग के आधार पर प्रतिष्ठित हो, तब तक संपूर्ण सृष्टिचक्र की कोई भी शक्ति युद्ध की प्रवृत्ति को मनुष्य की अवचेतना से निकालने में समर्थ नहीं हो सकती। इसलिये संसार मे जब तक यह अव्यवस्था है, और जब तक बड़े बड़े राष्ट्र सामूहिक विनाश की योजनाओं मे तत्पर हैं, तब तक दुर्बल राष्ट्रों के आने वाले कर्णधारो को अहिंसा के नाम पर शस्त्रास्त्रो की शिक्षा से वंचित रखना उन्हे धोखा देना और पुरुषार्थहीनता की ओर ढकेलना है। युद्ध-विद्या सिखाते हुए हम उन्हे अहिसा का महत्त्व भी समझाते रहते हैं। हिसा वृत्ति के अत्यधिक विकास द्वारा उत्पन्न होने वाले अनर्थों के प्रति भी उन्हे सचेत करते है। उन्हे यह समझाया जाता है कि मनुष्य के कल्याण का चरम रूप तब सामने आयेगा जब सुदूर भविष्य मे वह बुद्धि और मन दोनो के जरिये से हिसा की निरर्थकता और हीनता से भली भाँति परिचित होकर अहिंसामय बन जायगा। पर यह स्थिति तब तक नहीं आ सकती जब तक सामूहिक विश्व-व्यवस्था में अन्तर नहीं आता। और जब तक अंतर नहीं आता तब तक हिसात्मक चक्रो की पूरी जानकारी रखना हम आवश्यक समझते है...”

“हम, कौन-कौन ?” एक रहस्य-भरी अर्द्धव्यक्त मुसकान के साथ रमला पूछ बैठी।

"इस उपनिवेश के नियंतागण (जिनमे एक लघु स्थान मेरा भी है) और जो हम सब के मूल प्रेरक है वह भी।"

"कौन है आप लोगो के मूल प्रेरक, क्या मै जान सकती हूँ ?" प्रायः दबी हुई आवाज मे रमला ने पूछा।

"क्या आप उन्हे नहीं जानती ? उनका नाम कभी नही सुना ?"

"नहीं। इस उपनिवेश के सम्बन्ध मे बीच-बीच मे जो समाचार या लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे छपते हैं उनमे तो आप ही का नाम परिचालिका के रूप मे रहता है। बल्कि यहाँ के लोग भी आपको ही परिचालिका मानते है। यहाँ पहुँचने पर एक आदमी से मैंने आपका नाम लेकर पूछा था, उसने कहा—'आप परिचालिका जी को पूछ रही है ?' इससे मेरी इसी धारणा की पुष्टि हुई कि इस संपूर्ण उपनिवेश की मूल परिचालिका आप ही है। बाहर के प्रायः सभी लोगो की धारणा भी, जहाँ तक मै जानती हूँ, यही है।"

दोनो धीरे धीरे खेतो मे टहल रही थीं। रमला की अन्तिम बात सुनकर सहसा सुनन्दा रुक गयी और उसके मुख पर एक हलकी सी वेदना की छाया घिर आयी। कुछ क्षणो तक वह अनमनी सी खड़ी रही और शून्य दृष्टि से रमला की ओर देखती रही। उसके बाद अत्यन्त मन्द, मृदु—प्रायः करुण—स्वर में बोली—"यह इस देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ वास्तविक तथ्य को जानने, ईमानदारी से सचाई का पता लगाने की प्रवृत्ति का निपट अभाव पाया जाता है। इतने महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान के मूल नायक और सूत्रधार के संबंध मे कोई जानकारी ही किसी को

नहीं है, इससे बड़े आश्चर्य और दुःख की बात और क्या हो सकती है ? कितने बड़े झूठे प्रचार का मायाजाल पत्रकारों ने देश-भर में फैला रखा है ! इस संस्था की मूल परिचालिका मैं हूँ। इससे बड़ा झूठ और क्या हो सकता है ! रमला गिडवानी जी, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप इस झूठे प्रचार का खंडन करके विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपायें। मैं आपको सही-सही बातें बता दूँगी ..."

रमला कुतूहल और प्रश्न-भरी दृष्टि से सुनंदा की ओर देख रही थी। "कृपया अवश्य बताइये," उसने प्रार्थना के स्वर में कहा।

"रमला गिडवानी जी, आज मैं आपको एक ऐसे महापुरुष के दर्शन कराऊंगी, जिसके जीवन का विकास यद्यपि सभी साधारण मनुष्यों की तरह ही अनेक भूलों और भ्रांतियों के बीच से हुआ है, तथापि जिसके भीतर महाप्राणत्व के बीज निश्चित रूप से वर्तमान रहे हैं। उन बीजों के विकास के लिये वह महापुरुष जीवन की घोर विवशतापूर्ण और निराशा-भरी परिस्थितियों में भी सदा, सब समय सचेष्ट और सजग रहा है। उसकी उसी सचेष्टता और सजगता का ही यह फल है कि उसने मूलतः केवल अपनी दो भुजाओं के बल से उपनिवेश की नींव डाली है, अकेले अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति द्वारा उसने अपने चारों ओर की जड़ और उदासीन जनता को जगाकर उसका सहयोग प्राप्त किया है। सहस्रों विघ्नों और बाधाओं को पार करते हुए एक दस वर्षीय योजना के अनुसार जो महान् कार्य उसने शुरू किया था उसी के प्रारंभिक ढाई वर्षों का फल तुम्हारे आगे

है। उसकी यह महायोजना केवल दस वर्ष में ही समाप्त नहीं हो जायगी। दस वर्षीय काल तो उसका पहला कदम होगा। उस पहले कदम को अग्रसर करने के लिये और अधिक विस्तृत योजनाएँ निश्चित अवधियों के अनुसार क्रम से बढ़ती रहेंगी। जब तक योजना प्रसारित होते-होते एक दिन समग्र संसार को छा न लेगी, तब तक वह महापुरुष विश्राम नहीं लेगा। उसकी मृत्यु यदि पूरी योजना के कार्यान्वित होने के पहले ही हो जाय तो उसकी आत्मा उसके बाद उस महाकार्य-भार को ग्रहण करके उसका परिचालन करती रहेगी ..."

भावावेश से सुनन्दा के मुख पर एक अलौकिक, अतीन्द्रिय आभा झलक उठी थी। रमला स्तब्ध दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। जिस विराट योजना की बात सुनन्दा उसे बता रही थी उसको न तो वह एक भावुक आत्मा का अवास्तविक स्वप्न ही मान रही थी, न उसे परिपूर्ण विश्वास के साथ संभव मानने को ही तैयार थी। पर उसके सम्बन्ध मे उपेक्षा या परिहास की भावना उसके मन मे तनिक भी नहीं उठती थी। वह अत्यन्त गंभीर भाव से, पूर्ण मनोयोग से उसकी बात सुन रही थी।

कुछ क्षणों के लिये मौन रहने के बाद सुनन्दा कहने लगी—"उस महापुरुष ने उस आदर्श के पीछे अपने अहम् को मिटा दिया है। अपना कहने को जैसे उसके पास अब कुछ भी नहीं रह गया। यही कारण है कि आत्म-प्रचार से वह योजनों दूर पहुँच चुका है। यही कारण है कि इस महत्त्वपूर्ण औपनिवेशिक संस्था की चर्चा करते हुए सवाददातागण उसके नाम तक को

भूल जाते है। यही कारण है, रमला गिडवानी जी, कि आपने मेरा नाम सुना है, पर उनका नहीं। पर आज से आप निश्चित रूप से जाने रहिये कि इस उपनिवेश की मिट्टी के एक-एक कण के विकास के पीछे उसी महापुरुष का हाथ है, सारी योजना उन्ही की है और मैंने विश्व-आदर्श के सम्बन्ध में अपना जो मत आपके आगे रखा है उसका एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर, उन्हीं का है, मेरा नहीं। जहाँ कहीं भी जो कोई भी भाषण मैं देती हूँ वह सब उन्हीं का सिखाया-पढ़ाया है ''चलिये जब यहाँ तक आप आयी है तब अवश्य उनके दर्शन कर लीजिये।'' कहकर सुनन्दा उत्तर की ओर मुड़ी। रमला चुपचाप उसका अनुसरण करती हुई चलने लगी। रास्ते में रमला ने कहा—''देवी जी, केवल एक प्रश्न आपसे करना चाहती हूँ। क्या आप स्त्रियो को युद्ध की शिक्षा के योग्य नहीं समझतीं ?''

''क्यो नहीं। स्त्रियो की आत्मरक्षा के लिये यह आवश्यक है कि वे शस्त्रास्त्र चलाना जानें। हम उन्हे भी सिखाते है, पर एक सीमा तक। केवल उस सीमा तक जहाँ तक हम पुरुषो को शिशु-पालन की शिक्षा देते है।''

सैंतीसवाँ परिच्छेद

कुछ दूर आगे बढ़कर टीन से छायी हुई एक 'शेडनुमॉ' कुटिया में सुनन्दा ने प्रवेश करते हुए रमला से कहा—''भीतर चली आइये।''

रमला ने धड़कने हुए हृदय और काँपते हुए पॉवों से भीतर

प्रवेश किया। जिस महापुरुष का वर्णन सुनन्दा ने किया था उसे बिना देखे ही उसके प्रति संभ्रम-भार से वह इस कदर दब गयी थी कि उसे भीतर पाँव रखने का साहस ही नहीं होता था। प्रवेश करते ही वह जिस पुरुष के आगे खड़ी हुई उसके दर्शन-मात्र ही से उसके भीतर की सारी भय-भावना पल मे, जैसे किसी यंत्र से, तिरोहित हो गयी। उसने सोचा था कि वह कम-से-कम एक साठ-पैंसठ वर्ष के वृद्ध महात्मा के दर्शन करेगी। पर उसने देखा कि वह एक ऐसे सुन्दर, सबल और स्वस्थ पुरुष के आगे खड़ी है जो घनी दाढ़ी और प्रौढ़ वयस्कता के बावजूद युवा लगता है, जिसके मुख पर गंभीरता की अँधेरी छाया के बजाय एक प्रफुल्ल और प्रशांत तेज झलक रहा है।

महापुरुष ने "नमस्ते!" कहकर रमला के प्रति अपने मिट्टी सने हाथ जोड़ दिये। शायद वह हाथ धोने के लिए पानी खोज रहे थे। "आइये, विराजिये।" कहकर उन्होंने एक मोढ़ा रमला के लिये बढ़ा दिया। उसके बाद सुनन्दा की ओर देखकर बोले—"सुनन्दा, तब तक तुम इनसे बातें करो, मैं हाथ धो लेता हूँ। अभी खाद डालकर आ रहा हूँ।" कहकर पीछे के दरवाजे से गायब हो गये।

कुछ देर बाद जब लौटे तब पहले से अधिक प्रसन्न दिखायी देते थे। एक मोढ़े पर बैठकर रमला की ओर देखकर बोले—"कहिये, क्या आज्ञा है?"

आज्ञा! कोई महापुरुष एक साधारण नारी से आज्ञा के लिये कहता है! रमला के आश्चर्य का ठिकाना नहीं था।

"यों ही आपके दर्शनों के लिये..." दबी हुई आवाज में, अत्यन्त संकोचपूर्वक रमला ने कहा।

"यह रमला गिडवानी है—श्रीमती या कुमारी यह मैंने अभी तक नहीं पूछा..." कहकर सुनन्दा लड़की की ओर देखकर प्रश्न के तौर पर सस्नेह मुसकरायी।

"मैं अभी तक कुमारी हूँ जी", लड़की ने तनिक संकोच की मुसकान से कहा।

'हाँ, तो कुमारी गिडवानी दिल्ली से आयी है—वीम्यन्स लिबर्टी लीग का संदेश लेकर।" महापुरुष की ओर देखकर सुनंदा ने कहा।

"यह लीग कहाँ है?"

"दिल्ली मे।"

"संदेश क्या है?"

"मुझे उसके वार्षिक अधिवेशन मे अध्यक्ष पद के लिए चुना गया है।"

"ओह! अच्छा तो कुमारी गिडवानी जी, आपने बताया नही कि मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है? कोई संदेश मेरे लिये भी लायी हैं क्या?"

"यह तो अभी तक तुम्हारा नाम भी नहीं जानतीं, तुम्हारे अस्तित्व तक से यह परिचित नही थीं। इसलिये संदेश की आशा व्यर्थ है।" कहकर सुनन्दा दुष्टतापूर्वक मुसकरायी।

"मेरा नाम राजीव वर्मा है।" महापुरुष ने सुनन्दा की बात पर तनिक भी आश्चर्य प्रकट न करते हुए लड़की की ओर

देखकर कहा।

रमला ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उसकी ओर दोनो हाथ जोड़े। "बड़ी प्रसन्न हुई आपका परिचय पाकर," उसने अकृत्रिम भाव से कहा। "पर मुझे इस बात से बड़ा ही आश्चर्य हुआ जी, और दुःख भी, कि आपका नाम आज तक कही भी मेरे सुनने मे न आया, हालाँकि आपकी बस्ती की चर्चा पत्रो मे अकसर छपती रहती है।"

"बस्ती का ही महत्त्व है, मेरे नाम का नही, बहन! जिस दिन बस्ती के महत्त्व को भूलकर लोग मेरे नाम को अधिक महत्त्व देने लगेंगे उस दिन इस संस्था का सारा उद्देश्य ही भ्रष्ट हो जायगा और वह ताश की इमारत की तरह गिर पड़ेगी।" बड़े ही मीठे स्वर मे राजीव ने कहा।

"एक बात की शंका मेरे मन मे बनी हुई है भाई···महा···त्मा जी," (रमला पहले भाई साहब और फिर 'महापुरुषजी' कहने जा रही थी) कृपया उसका समाधान करे। देवीजी ने जितना कुछ समाधान किया उससे मेरी उलझन उतनी नहीं सुलझ पाई है जितना कि आवश्यक है। देवी जी ने बताया कि आपके यहाँ लड़को और लड़कियों को युद्ध की शिक्षा दी जाती है।"

"उसे ठीक युद्ध की शिक्षा तो नहीं, साधारण शस्त्रास्त्र चलाने की शिक्षा मैं कहूँगा। हालाँकि यदि कभी सुविधा हुई तो संभवतः हमे युद्ध की नियमित शिक्षा देने को भी बाध्य होना पड़े।···एक बात और। मैं महात्मा नही हूँ, परिहास के तौर पर भले ही कोई चाहे 'महा स्वप्नात्मा' मुझसे कह सकता है।" कह कर राजीव

मन्द मन्द मुसकराने लगा।

"अच्छी बात है। शस्त्रास्त्र चलाने की शिक्षा ही उसे कह लीजिए। पर मैं जानना यह चाहती हूँ कि आप जैसे आदर्श पुरुष हिंसा सम्बन्धी शिक्षा का विरोध करने के बजाय उसे प्रोत्साहित क्यों करते हैं?"

"तुम्हारी शंका बहुत उचित है, बहन," अत्यन्त सहज भाव से रमला को 'तुम' कहकर संबोधित करता हुआ राजीव बोला। "पर शायद, जैसा कि तुम्हींने अभी संकेत किया, सुनंदा हमारे दृष्टिकोण से तुम्हें परिचित करा चुकी होगी। जब तक वर्तमान विश्व-व्यवस्था में मूलगत सुधार नहीं होते तब तक कोरे किताबी उपदेशों द्वारा अहिंसा को जन-मन के भीतर प्रविष्ट नहीं किया जा सकेगा। जब केवल शस्त्रास्त्रों पर ही आज की अंतर-राष्ट्रीय व्यवस्था आधारित है तब उनके प्रयोग सम्बन्धी ज्ञान से हम अपने नवयुवकों और नवयुवतियों को वंचित क्यो रखें? अहिंसा के नाम पर उनकी सारी शक्तिमत्ता सोख कर छीन क्यो लें? क्यों उनको अरक्षित अवस्था में पौरुषहीन अवस्था में, दिन बिताने को बाध्य करें? अहिंसा का मन्त्र उनके प्राणो मे घर किये रहेगा और हिंसा का आयुध उनकी मुट्ठी मे, आततायियों द्वारा निर्बलो की रक्षा के लिए, बँधा रहेगा। एक दिन आयेगा जब यह विचित्र विरोधाभास (जैसा कि यह स्वयं मुझे भी लगता है) निश्चित रूप से परिपूर्ण अहिंसक शक्ति में बदल जायगा। शस्त्रास्त्र संबंधी शिक्षा की आवश्यकता इसलिये भी है कि जिस अहिंसा का मंत्र हम अपने नवयुवको और नवयुवतियों के भीतर फूंक रहे हैं वह

कहीं धीरे-धीरे, समय के अदृश्य प्रभाव से, कायरता में न बदल जाय। हमारे आयुध केवल इसलिये हैं कि वे परिपूर्ण कायरता और पुरुषत्व-हीनता के खतरे से हमें प्रतिक्षण सचेत करने के लिए सजग प्रहरी की तरह खड़े रहे...''

रमला भ्रान्त दृष्टि से राजीव की ओर देख रही थी, जैसे किसी गोरखधंधे से बाहर न निकल पाती हो। उसकी परेशानी राजीव से छिपी नहीं रही। मुक्ति-निवेश के निरीक्षण के लिये आनेवाले अधिकांश व्यक्तियों के आगे उसे हिंसा के उस समन्वयात्मक विरोधाभास का स्पष्टीकरण करना होता था, और अंत तक न समझा पाने पर हार मानकर चुप रह जाना पड़ता था।

"मैं पहले ही कह चुका हूँ, बहन, कि एक दिन यह विरोधाभास आपकी—और दूसरों की भी—समझ में आ जायगा।"

"बड़ी प्रसन्नता हुई महा...भाई साहब, आप से मिलकर। फिर एक बार कभी फुर्सत से आपके दर्शन कर पाऊँगी ऐसी आशा रखती हूँ। इस समय आज्ञा दीजिये..." कहकर रमला उठी। "अच्छा नमस्ते!" कहकर उसने फिर एक बार आंतरिक श्रद्धा से राजीव को प्रणाम किया।

"नमस्ते!" कहकर राजीव भी हाथ जोड़ता हुआ, और सस्नेह मुसकराता हुआ खड़ा हुआ।

सुनंदा रमला को पहुँचाने के लिये उसके साथ वहाँ तक गयी जहाँ 'जीप' खड़ी थी। जीप पर बैठने के पूर्व रमला ने आग्रह भरे स्वर मे कहा—"मेरी आंतरिक इच्छा है कि मैं भी आपके मुक्ति-दल में सम्मिलित होकर जीवन की साध पूरी करूँ।

आज पहली बार जीवन का एक ऐसा स्वरूप मैंने देखा, जो मेरे इतने दिनों से भटकते हुए मन को एक स्थिति प्रदान कर सकेगा, ऐसा विश्वास मेरे मन मे जगने लगा है । मैं आपको धन्यवाद देती हूँ, देवीजी । मै जल्दी ही लौटकर आऊँगी । अच्छा नमस्ते ।" कहकर, हाथ जोड़कर रमला जीप के भीतर जा बैठी । गाड़ी स्टार्ट करने पर फिर उसने एकबार हाथ जोड़े । उसके बाद जीप धूल उड़ाती हुई चल दी ।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

सुनंदा जब लौटकर राजीव के पास पहुँची तब वह बाहर निकलने की तैयारी कर रहा था । सुनंदा को देखते ही उसने कहा—"नंदा, मुझे शहर जाना है । आज ही शाम को पहुँचना है । नव-निर्माण-महासंघ का उद्घाटन करने के लिये मुझे बुलाया गया है ।"

"कुछ देर आराम नहीं करोगे क्या ?" चिंतित भाव से सुनन्दा ने कहा ।

"आराम की आवश्यकता उसे पड़ती है जो श्रम-भार से थकित हो और कर्मचक्र में पिसा हुआ हो । मैं चौबीसों घंटे जिस प्रकार के काम करता हूँ वे या तो मेरे मनोविनोद के साधन होते हैं, या चित्त के सुख और संतोष के, या आत्मा की शांति के । इसलिये 'आराम' की आवश्यकता का कोई प्रश्न ही कहाँ उठता है ।"

"पर दिन-रात केवल कर्म में लिप्त रहना, यह क्या 'अति'

की भी सीमा को पार करना नहीं है ? क्या तुमने कभी यह सोचा है कि तुम्हारी यह अत्यधिक कर्म-लिप्सा एक व्यसन का रूप धारण करती जा रही है ?"

"व्यसन ? हो सकता है नंदा ! तुमने आज एक ऐसी बात की ओर मेरा ध्यान खींचा है जिस पर मुझे गंभीर भाव से एकांत में विचार करना होगा। हाँ, संभवतः व्यसन ही है यह। तुम्हारे सुझाने से मुझे भी कुछ ऐसा ही मालूम होने लगा है। पर बड़ा ही सुखकर, बड़ा ही तृप्तिकर व्यसन है यह ! सबसे बड़ी बात इसमे यह है कि दूसरे व्यसनो की तरह इसकी प्रतिक्रिया किसी प्रकार की ग्लानि मन में उत्पन्न नहीं करती, बल्कि वह प्रतिक्रिया भी ऐसी उन्मादक, ऐसी आत्मोल्लासकारी होती है कि तुम्हे कैसे समझाऊँ, नन्दा। वैसे इसका थोड़ा-बहुत अनुभव तुम्हे स्वयं भी बीच-बीच मे होता ही होगा। क्योंकि स्वयं तुम्हारा भी कर्म के प्रति कुछ कम खिचाव नहीं है। तुम भी आलस्य को कभी प्रश्रय नहीं देती हो !..."

"नहीं, नहीं, मुझे तनिक भी इस प्रकार की प्रतिक्रिया का अनुभव नही है। यह ठीक है कि साधारण कार्य मे मै आलसी नही हूँ, बल्कि आलस्य से भूत की तरह भागती हूँ। पर जब कभी काम कुछ अधिक हो जाता है तब मुझे विश्राम करने की तीव्र इच्छा होती है। तब जी चाहता है कि मै कुछ समय के लिये अपने सारे उत्तरदायित्वो को भूल जाऊँ, समस्त कार्यभार से चिंता-मुक्त हो जाऊँ, और अपने अंतर के निगूढ़स्थान में प्रवेश करके केवल अपने व्यक्तिगत सुख-दुख की भावनाओं मे मग्न हो

जाऊँ। क्या तुम्हारे मन में किसी भी क्षण ऐसी भावना नहीं जगती ?"

"नहीं नंदा," स्नेहपूर्ण मुसकान झलकाते हुए राजीव ने कहा, मेरे मन में इस तरह की इच्छा कभी क्षण-भर के लिये भी नहीं जगती। यदि मेरे मन मे ऐसी इच्छा जोर मारने लगे और मैं उस इच्छा के प्रति आत्म-समर्पण करके उन सब कार्य-भारों को कुछ समय के लिये भूल जाऊँ जिन्हे मैंने स्वेच्छा से ग्रहण किया है तब उन क्षणों को मैं विश्राम न मानकर यातना की घड़ियाँ ही मानूँगा।"

"तुम मनुष्य नहीं हो, या तो यक्ष हो या देवता!"

सुनन्दा के इस कथन के भीतर एक अव्यक्त खीझ का भाव —और शायद तिरस्कार का भी—वर्तमान था, जो राजीव की पैनी अंतर्दृष्टि से शायद छिपा न रहा। पर उसने ऐसा भाव जताया जैसे वह सुनन्दा की बात सीधे ही अर्थ में ले रहा हो।

"देवता तो मै अपने को किसी भी हालत मे नही कहूँगा," संकेत भरी अर्द्धव्यक्त मुसकान के साथ राजीव बोला। "पर यक्ष संभवतः हो सकता हूँ। मैं यक्ष की ही तरह प्रतिक्षण सजग और जाग्रत रहता हूँ—किसी गुप्त निधि पर सब समय पहरा देता हुआ! पर हटाओ इस समय इस चर्चा को। तुम जाकर इस बात का पता लगा आओ कि 'ट्रक' खाली मिल सकेगा या नहीं। नही तो ताँगे से ही काम निकालना होगा।"

"मै भी चलूँगी!" सहसा बच्चों की तरह मचलती हुई सुनन्दा बोल उठी।

"तुम क्या करोगी वहाँ ? तुम्हे बुलानेवालो की कमी नहीं है। तुम तो अकसर जाती ही रहती हो। पर मुझे कौन बुलाता है ! जैसा कि उस सिंधी लड़की ने बताया, इस बस्ती के बाहर मेरा नाम तक कोई नहीं जानता। केवल कुछ ही संस्थाएँ—उँगली पर गिनी जाने योग्य—ऐसी है जो कभी-कभी मुझ पर कृपा कर दिया करती है। चूँकि इतने कम अवसर मुझे मिलते हैं, इसलिये मैं जाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। शहर से जो दो छात्र अकसर मुझसे मिलने आते रहते हैं उन्हीं की प्रेरणा से यह अनुष्ठान हुआ है। बल्कि यह कहना चाहिये कि मेरी प्रेरणा से ही उन्होंने यह काम अपने हाथों मे लिया है। इसी लिये मैं जा रहा हूँ। हम दोनों में से एक का यहाँ रहना आवश्यक है। न मालूम निवेश मे कब किसके आगे कौन अड़चन आ पड़े..."

"असल बात यह है कि तुम मुझे साथ ले जाने—मेरे साथ रहने—मे अड़चन का अनुभव किया करते हो," सुनन्दा ने विरस भाव से, शिकायत के स्वर मे कहा। "दिन-भर कभी तुम खेतों में, कभी बागों मे काम करते हो, कभी विभिन्न कक्षाओं का निरीक्षण करते रहते हो, और रात मे जब लौटते हो तब भी विश्राम का नाम नहीं लेते। दो-तीन बजे रात तक संस्था सम्बन्धी कागजो को उलटते-पलटते रहते हो, या कुछ लिखने बैठ जाते हो। कोई अवकाश का क्षण ऐसा नहीं होता कि तुम्हारे साथ सुख-दुःख की दो-चार बातें की जा सकें। मुझसे इस तरह कतराते हो, जैसे मै महाविघ्नस्वरूप होऊँ। आखिर यह वज्र-कठोर भाव कब तक बना रहेगा तुम्हारा ?" कहते हुए सुनन्दा का

गला भर आया। किसी तरह अपने को सँभाल कर वह राजीव के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बाहर निकल गयी।

राजीव कुछ देर तक स्थिर, मौन दृष्टि से उसी ओर देखता रह गया जिस ओर सुनन्दा गयी थी। उसके बाद एक लंबी साँस लेकर वह अपने शरीर के मैले कपड़े बदलने लगा।

प्रायः दस मिनट बाद सुनन्दा लौटकर आयी। सहज-स्वाभाविक भाव से बोली—'ट्रक घंटे-भर मे खाली हो जायगा। उद्घाटन के समय से पहले ही तुम्हे पहुँचा देगा।" कहकर वह चली गयी।

कपड़े बदल कर राजीव वहाँ चला गया जहाँ लड़को—और कुछ लड़कियो को भी—शस्त्रास्त्र चलाने की शिक्षा दी जा रही थी। घंटे भर तक राजीव विभिन्न विभागो का निरीक्षण करता रहा। उसके बाद ट्रक पर बैठ कर शहर की ओर रवाना हो गया।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

जिस स्थान पर नव-निर्माण-संघ का उद्घाटन समारोह होने जा रहा था वह शहर की उत्तरी सीमा पर था। सारा अहाता रंगीन कागजों की झंडियो, फूलो और पत्तियो से सजाया गया था। फाटक पर केले के दो खभो के ऊपर ताड़ के पत्तो का मेहराब बना हुआ था। उसके ऊपर लाल कपड़े के एक बड़े से टुकड़े पर रुई के अक्षरों मे संस्था का नाम अंकित किया गया था और 'स्वागत' भी।

जब राजीव के ट्रक ने फाटक के भीतर प्रवेश किया तब

बहुत से छात्रों ने सम्मिलित स्वर से "नव-निर्माण-संघ की जय।" का नारा लगाया। एक हालनुमाँ सुसज्जित कक्ष के भीतर राजीव ने प्रवेश किया। हाल ठसाठस भरा हुआ था। उसके प्रवेश करते ही तालियों के शब्द से सारा कक्ष गूँज उठा। सबके प्रति विनम्रता से हाथ जोड़ता हुआ राजीव दो छात्रो के साथ मञ्च पर जा बैठा।

प्रायः पन्द्रह मिनट बाद वातावरण शांत और स्थिर हुआ और सभा की कार्रवाई आरम्भ हुई। एक अधेड़ सज्जन, जो संभवतः प्रोफेसर थे, सभापति के पद पर आसीन हुए। उन्होने सबसे पहले राजीव से भाषण देने की प्रार्थना की।

राजीव गंभीरता की प्रतिमूर्ति बनकर खड़ा हुआ। उसने धीर और शांत स्वर मे कहना आरम्भ किया :—

"सभापति महोदय, बहनो और भाइयो! आप लोगो ने ऐसे युग मे अपने संघ की स्थापना का बीड़ा उठाया है जो मानवीय विकास के इतिहास मे एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। इस युग मे पिछले युगो की रूढ़िगत परम्पराएँ एक-एक करके ध्वस्त होती चली जा रही हैं और समस्त संसार के विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रो से एक नयी संस्कृति, एक नये आदर्श और एक नयी विश्व-व्यवस्था की पुकार मची हुई है। वर्तमान आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति सर्वत्र असंतोष की लहरें उमड़ उठी हैं। सर्वत्र मानवता के चिन्तनशील प्रतिनिधि यह महसूस करने लगे है कि मानव-समाज के भीतर जो असमता, असामञ्जस्य और असंतुलन वर्तमान है वह अस्वा-

भाविक है और विश्व की वास्तविक प्रगति में एक विराट बाधा, एक प्रचंड अवरोध खड़ा कर रहा है। पर उसका निराकरण कैसे सम्भव है जब यह प्रश्न उठता है तब सबकी विचार-गाड़ी जैसे रुक जाती है और विवेचन की गति अवरुद्ध हो उठती है। ऐसे ऐसे जटिल आर्थिक और राजनीतिक-जालो के चक्रव्यूह मे आज के विचारक उलझे हुए हैं कि उस उलझन से मुक्ति पाने के प्रयत्नो से और अधिक उलझ जाते है। फिर भी (उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल से लेकर आज तक बहुत-से ऐसे मनीषी और क्रांतिदर्शी हो गये है जिन्होंने विश्व-व्यवस्था से सम्बन्धित बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण सुझाव संसार को दिये है और बड़ी-बड़ी योजनाएँ भटकी हुई मानवता के आगे रखी हैं। उनमें कुछ योजनाएँ ऐसी हैं जो विभिन्न भूभागो मे व्यापक रूप से कार्यान्वित भी हो चुकी है। पर उन योजनाओं के कार्यरूप में परिणत होने के बाद भी पथभ्रष्ट मानवता कोई निश्चित प्रकाश नही पा सकी है और आज भी उसी तरह अँधेरे में भटक रही है जिस तरह वह युगो से भटकती आ रही थी। बल्कि आज का अँधेरा उसे और अधिक घना मालूम होता है—इसलिये कि बीच-बीच मे विश्व के कुछ कोनों से सर्चलाइट के-से तीव्र प्रकाश की क्षणिक चमक उसकी आँखों मे चकाचौंध लगा गयी है।")

अपनी बात की तरङ्ग मे स्वयं बहता हुआ राजीव धीरे-धीरे अपने स्वर को चढ़ाता चला गया। जनता स्तब्ध भाव से सुन रही थी। वह कहता गया:—

"पर यह सब होने पर भी इस युग मे ऐसे झूठे नबियो और

मूर्ख डान क्विकजोटों की कमी नहीं है जो इस महान् समस्या के मूल केन्द्र को पकड़े बिना ही, उसकी युग-युगव्यापी दीर्घता, विश्वव्यापी विराटता और अतलव्यापी गहनता का तनिक भी अनुमान लगाये बिना ही, केवल उसकी ऊपरी सतह का छिटफुट आभास पाकर उसके समाधान का पथ सुझाने से नहीं चूकते। सामूहिक मानवीय विकास के मूल लक्ष्य से आज की मानवता ऐसी बुरी तरह भटक गई है कि केवल अपने खड स्वार्थों मे ही उलझकर रह गयी है। वे अन्तर-राष्ट्रीय महादल छोटे दलो मे और छोटे दल भी उपदलो मे विभाजित होकर बिखर गये है। फल यह देखने मे आता है कि केवल राजनीतिक कूटचक्रो और हिसा-प्रतिहिसा के अत्यन्त तुच्छ और हीन प्रयोगो मे युग-युग से विकास प्राप्त समस्त ज्ञान-विज्ञान की सारी शक्तियाँ समाप्त हुई चली जा रही है। आशा यह की जानी चाहिए थी कि भौतिक और आध्यात्मिक दोनो विज्ञान स्वाभाविक रूप से उन्नति प्राप्त करके अँधेरे मे भटकते हुए सामूहिक मानव को भीतरी और बाहरी उलझनों को सुलझाकर एक नये व्यापक और कल्याण-कारी निर्माण का पथ सुझायेंगे। पर फल यह देखने मे आता है कि भौतिक विज्ञान का विकास केवल अंतरराष्ट्रीय विद्वेष की उत्तरोत्तर भड़कती हुई आग को विश्व-विध्वंस में परिणत करने के प्रयत्नो में सहायक हो रहा है और आध्यात्मिक विज्ञान मानव को अधिकाधिक जड़ता, पुरुषार्थहीनता और नैष्कर्म्य की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है। एक ओर पूँजी और दूसरी ओर श्रम के संगठन से मनुष्य ने जिन दो विराट और परस्पर-

विरोधी सामाजिक शक्तियो को स्वयं जन्म दिया और विकसित किया है वे आज दोनों ओर से, दो विरुद्ध दिशाओं की ओर मानवता को खींचकर उसे अत्यन्त निर्ममता से चीर रहे है। इन घोर अहम्मन्यता से भरे हुए निपट मूर्खतापूर्ण अंतरराष्ट्रीय प्रयासो के बीच मे बुरी तरह पिसी हुई साधारण मानवता कराहती है, पर उसे कराहने की भी सुविधा नहीं दी जा रही है, उसका मुँह बंद किया जा रहा है और दम घोंटा जा रहा है। इस सामूहिक अव्यवस्था और विश्वव्यापी अंधकार के बीच में पथ खोज निकालना है, यदि मानवता को आधा इंच भी आगे बढ़ना है तो! यदि वर्तमान महाविनाशी उलझनो की स्थिति के प्रति उदासीन रहकर उसे अधिक समय तक कायम रहने दिया जायगा तो सच्ची प्रगति के संबंध मे इतने युगो के समस्त मानवीय प्रयत्न नींव सहित ढह जायेंगे, यह निश्चित है।

'इसलिए मेरे तरुण बंधुओ! मै आप लोगो का ध्यान इस महान् कर्तव्य-पथ की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। आप लोगो को यह सोचकर निश्चेष्ट नहीं होना होगा कि जब बड़े-बड़े अंतर-राष्ट्रीय महानेतागण मानवता की आज की बिगड़ी हुई परिस्थिति को सुलझाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे है, तब एक अत्यन्त लघु सीमा के भीतर आप लोगों के क्षीण प्रयत्नो का क्या फल हो सकता है। लघुतम सीमा के भीतर किये गये क्षीण प्रयोगो को यदि महाकल्याण के विराट उद्देश्य को सामने रखकर पूरी लगन से आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय तो वे अपने भीतर ऐसी महाबीज-शक्ति उत्पन्न कर सकते है जो अपने व्यापक विस्फोटो से

विश्व की वर्तमान मोहाच्छन्नता को छिन्न-भिन्न कर सकती है।

"इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि आप लोग अपने उद्देश्य की विराटता को समझें। उसे संकीर्ण दलगत उद्देश्यो की धूल या राख से ढकें नहीं। उसके बाद बिखरे हुए अंतर-राष्ट्रीय कुचक्रो का यथार्थ विश्लेषण करके उनकी वास्तविकता को समझें, क्योंकि आज की सामूहिक व्यवस्था के मूल सूत्रसंचालक वे ही हैं। उन कूटचक्रो की पोल से परिचित होकर समस्त खंड-खंड समस्याओ को समग्रता की पृष्ठभूमि पर रखकर, उन्हे अखंडता के सूत्र मे पिरोकर उन पर विचार करें। युग की समस्याओं के प्रति तनिक भी उदासीन न होते हुए, युग युग की समस्याओ के साथ उनका सामजस्य स्थापित करने के महालक्ष्य को सामने रखें। इस दृष्टिकोण से देखने पर सारी विश्व-स्थिति आप लोगो के आगे एक दूसरे ही रूप मे प्रकट होगी। तब यह सरल और सुस्पष्ट तथ्य—जो आज के युग की आर्थिक और राजनीतिक उलझनो के कारण अत्यन्त जटिल और अस्पष्ट बना हुआ है—आप लोगों के लिये प्रत्यक्ष हो जायगा कि न पूँजी-संचयन ही मानवीय विकास का स्वाभाविक रूप है न श्रम-संगठन की शक्तियो का विद्रोहात्मक और विध्वंसक प्रस्फुटन ही। दोनो आत्मघाती, परस्परघाती और विश्वघाती हैं। मानवीय विकास का स्वाभाविक रूप है सबकी सम-चेतना, सब के सम-योग, सबके सम-उद्योग, सबके सम-अधिकार और सबकी सम-शक्तियों के सम-सामूहिक विकास द्वारा सम-कल्याण की चरमतम परिस्थिति की ओर सबकी सम-प्रगति। यह मोटी सी बात, यह

स्वयंसिद्धि आज के दलगत स्वार्थों को छीना-झपटी के युग में अत्यन्त उपेक्षणीय बनी हुई है और विश्व के महानेताओं की चेतना में नहीं आ रही है, यही आश्चर्य है। व्यापक विकास का यह आदर्श जब मानवता के आगे रहेगा तब आप देखेंगे कि जो अणु-शक्ति इस समय महाकाल का सर्वध्वंसी साधन बनकर मानवता के सिर के ऊपर महाबम के रूप मे लटक रही है वह रोग-शोक, दुःख-दारिद्रय से पीड़ित जन-साधारण को भौतिक दृष्टि से सम-उन्नति के शिखर पर पहुँचा कर, उसे समस्त पार्थिव अभावो से मुक्त करके, अति-चेतना के विकास-स्तर पर पहुँचाने मे समर्थ होगी।

"इसके पहले कि मानवता आध्यात्मिक और अति-चेतनात्मक अनुभूति के विकास के उच्च से उच्चतर स्तरो पर आगे बढ़े, इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि वह समस्त पार्थिव अभावो से मुक्त हो। जब तक जीवन के किसी भी क्षेत्र मे, संसार के किसी भी कोने मे, मानव-समाज के किसी भी वर्ग मे यह अभाव-तनिक भी मात्रा मे वर्तमान रहेगा तब तक आध्यात्मिक उन्नति की बात चलाने के बराबर किसी मूर्खता की कल्पना मैं नहीं कर सकता। "दैवी जीवन'—के विकास की चर्चा ही तब तक आज की रोग-जर्जर, क्षुधा-कातर यंत्र-पेषित, युद्ध-पीड़ित, सामूहिक अत्याचारों से विकल मानवता के प्रति एक मार्मिक व्यंग्यात्मक परिहास, एक निर्मम विद्रूप की तरह लगती है। यह ठीक है कि अंततः दैवी जीवन ही मानवीय चेतना के विकास का चरम लक्ष्य है। पर उसकी सबसे पहली

और सबसे आवश्यक सीढ़ी है भौतिक शक्तियों के चरम विकास द्वारा प्राप्त पार्थिव विभूतियो के सम-विभाजन की परिस्थिति को मानव-जीवन के बीच में लाना। जीवन की उस कठोर यथार्थता को, जो तिल-तिल करके पल-पल में संघर्ष-पीड़ित मानवता को कचोट रही है, उस दैवी जीवन की दिव्य कल्पना द्वारा भुलाना अपने-आपको भी धोखा देना है और विश्व-मानव को भी। वह दिव्य कल्पना आसान है। आँखें मूँद लीजिये, सर्वत्र दिव्य ही दिव्य नज़र आयेगा। सर्वत्र निखिलव्यापी अतिचेतना-जनित ब्रह्मानंद ही ब्रह्मानंद अनुभूत होगा। आँखें खोलिये। फिर आप जहाँ के तहाँ, उसी कठोर मिट्टी पर खड़े है, जिस पर खड़े होने के लिये भी आपको 'परमिट' माँगना पड़ता है, जिस पर सिद्धान्त से सबका अधिकार होने पर भी आपका अधिकार नही है, जो आपके जीवन-धारण के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक होने पर भी आपके लिये सहज-सुलभ नही है, जिस पर या तो जमीदार का कब्जा है, या सरकार का या म्युनिसिपैलिटी का। यह है आज के जीवन की यथार्थता। इसीलिये मैं कह रहा था कि जब तक इस पृथ्वी पर की समग्र मिट्टी पर समस्त मनुष्यों का सम अधिकार स्थापित नहीं होता और जब तक सम-श्रम द्वारा सम-कल्याण के लिये उनका सम-उपयोग नही होता, तब तक जीवन के संघर्ष की विषमयी विषमताएँ मानवीय जीवन को गलित और मानवीय चेतना को विकृत बनाती चली जावेंगी, और उस परिस्थिति मे 'दैवी-जीवन' की दिव्य कल्पना एक आत्म-भ्रामक झूठा जाल फैलाने के सिवा

किसी काम न आ सकेगी। उस स्थिति में वह शून्य पर खड़े हो कर शून्य में ही विचरण करने के समान असंभावित और साथ ही निरर्थक होगी।

"इसलिए पार्थिव जीवन की भौतिक परिस्थितियों का सम-विकास ही आप लोगों के लिये—उन तरुण आत्माओं के लिए जो आज के विकृत, विगलित और विषम जीवन के उद्धार और नव-निर्माण को अपना ध्येय बनाना चाहते है—सबसे पहले आवश्यक है। व्यापक भौतिक चेतना की चरम सम-उन्नति के बाद चेतना का जो दूसरा स्तर आयेगा वह अपने-आप विश्व-मानव को दैवी जीवन की ओर खीच लेगा। पहले हमें जड़ को पुष्ट करना होगा, उसे सारवान खाद देनी होगी, पानी से सींचते रहना होगा, जीवन-सत्त्वशोषी कीड़ों से उसकी रक्षा करनी होगी, तभी उसकी सुन्दर पुष्पमयी सृष्टि और परिपक्व फलमयी परिणति की आशा हम कर सकते हैं। चेतना का विकास भी प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही हो सकता है, किसी भी क्षण आँख मूँद लेने से उत्पन्न होने वाली दिव्य आनुभूतिक कल्पना द्वारा नहीं।

"पर भौतिक परिस्थितियों के सम-विकास की योजना भी कोई खेल नहीं है। उसे विश्व-व्यापी रूप से कार्यान्वित करने की कल्पना दैवी जीवन की कल्पना की तरह ही आसान है, पर उस कल्पना को यथार्थ का रूप देने के लिये कैसी प्रचंड, सङ्गठित इच्छा-शक्ति की आवश्यकता है, कैसी दुर्दमनीय लगन की जरूरत है, इसे वे समझ सकते है जिन्होंने अति-स्वल्प क्षेत्र में भी इस प्रयोग को अपनाया हो। इसके लिये संसार की समग्र

श्रमशक्ति का सङ्गठन करना होगा—विध्वंसात्मक विद्रोह के लिये नहीं, बल्कि निर्माणमूलक सहयोग और सम-उद्योग के लिये। पर श्रम-सङ्गठन का यह आदर्श केवल कोरे सैद्धांतिक प्रवचनों द्वारा सहज मे सफल नहीं हो सकेगा। क्योंकि यह निश्चित है कि इस प्रकार के सङ्गठन का विरोध संसार की वे यंत्र-नियामक शक्तियाँ करेंगी जिनके संकीर्ण स्वार्थ जीवन-साधनो के सम-विभाजन के विपरीत पड़ते है। इसलिये 'विद्रोह' के समूल निराकरण की बात गलत सिद्ध होगी। पर, जैसा कि मैं बता चुका हूँ, इस को हिंसात्मक और विध्वंसात्मक रूप धारण करने से बचाना होगा। इस प्रयत्न में सफलता न मिलने से सारी योजना ही चौपट हो जायगी।

"तब प्रश्न यह उठता है कि यदि यह योजना विध्वंसात्मक और हिंसात्मक न हो तो उसका दूसरा रूप क्या हो सकता है। इस सम्बन्ध मे मेरा यह मत है कि महात्मा गांधी अहिंसात्मक असहयोग का जो अस्त्र हमे दे गये है उसको व्यापक और विकसित रूप देने की आवश्यकता है। श्रम-संगठन के विरोधी जिस बल पर अपनी विश्वव्यापी सत्ता कायम रखे हुए है वह है सैन्य-बल। इस सैन्य-बल के मूल में भी श्रम-संगठन ही काम कर रहा है। यदि संसार के समस्त सैन्य-दलो मे संगठित रूप से, सफलतापूर्वक यह प्रचार किया जा सके कि हिंसात्मक कार्रवाइयों मे भाग लेकर वे मानवता के विरुद्ध महा-अपराध कर रहे है, उनकी आत्मा की गहराई मे यह महासत्य प्रविष्ट कराया जा सके कि मनुष्य द्वारा मनुष्य की हिंसा किसी भी धर्म, नीति या

आदर्श की दृष्टि से उचित नहीं है और वह निरा पैशाचिक कुकृत्य है, तो उन्हे शस्त्रास्त्र-संचालन की बाध्यता के विरुद्ध अहिंसात्मक असहयोग करने के लिये राजी किया जा सकता है । इस अहिंसात्मक प्रचार में सफलता मिलने से दो महालाभ मानवता को होंगे । एक तो संसार से युद्ध की संभावना सदा के लिये चली जायगी, युद्ध का दानव फिर कभी सिर उठा नहीं सकेगा, दूसरे सम-श्रम-संगठन की नीति विजयी होकर समस्त मानवता को एक नये आदर्श-पथ पर लाकर खड़ा करेगी ।

"इस महान् आदर्श को सफल बनाने के लिये सबसे पहली आवश्यकता है योग्यतम प्रचारकों की, जो इस आदर्श का महत्त्व भली भाँति समझकर, उसके रस में पूर्णतया डूबकर, अपने अन्तःकरण से, संपूर्ण आत्मा से उसके विश्वव्यापी प्रचार को अपने जीवन का एकमात्र व्रत, एकमात्र ध्येय और एकमात्र धर्म मानें । मैं आप ही लोगों मे से, तरुणतम प्राणो से, इस प्रकार के वज्र-दृढ़-व्रतियों की माँग करता हूँ । मुझे अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं है । यदि केवल पाँच भी ऐसे व्यक्ति मुझे मिल जायँ, जिनकी परिपूर्ण आस्था इस आदर्श पर हो, जिनका ध्यान और जप केवल यही हो, जो उसकी महत्ता पर अपनी आत्मा के अन्तरतम कोने से विश्वास करते हुए उसके प्रचार के लिए अपना सारा जीवन, अपने जीवन का एक-एक पल, अर्पित करने को सच्चे मन से तैयार हों, और बड़े से बड़े विरोध और विकट से विकटतम बाधा से भी जिनके उत्साह मे तनिक भी कमी आने की सम्भावना न हो तो मैं आप लोगो

को विश्वास दिलाता हूँ कि मै सारे संसार में, विश्व के कण-कण में परिपूर्ण अहिंसा का महामंत्र फूँक सकता हूँ और अपनी व्यापक योजना के लिये उपयुक्ततम वातावरण तैयार कर सकता हूँ। वे सच्ची लगन वाले पाँच महाव्रती वैसे ही पाँच महाव्रतियों को अपनी ओर खींच सकते है और वे पाँच दूसरे पाँच को। इस प्रकार उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती हुई संसार भर मे, फैल सकती है, और इस प्रकार का एक-एक प्रचारक मनुष्य तो मनुष्य, एक-एक पत्थर मे अहिंसात्मक चेतना जगा सकता है। ईसाई धर्म का प्रचार कैसे विकट युग मे, कैसी विकट परिस्थितियो मे, किस प्रकार के निपट विजातीय वातावरण के बीच में, कैसी व्यापक सफलता के साथ हुआ इसके ऐतिहासिक उदाहरण हमारे सामने है। और प्रारम्भ मे उसके मूल प्रचारक कितने आदमी थे ? मुश्किल से दो या तीन। बौद्ध धर्म के विश्वव्यापी प्रचार के मूल में भी कुछ मुट्ठी भर लोग ही थे। आप लोग कहेंगे कि उन युगो की परिस्थितियाँ कुछ दूसरी थीं; तब विश्व-जनता सरल विश्वास-परायण थी, बौद्धिक नहीं थी और ऐसे अनुभवो से गुजर रही थी जो अत्यन्त निराशाजनक थे। इसके उत्तर मे मैं कहूँगा कि आज भी जनता थोड़े बहुत अन्तर के बावजूद उसी तरह विश्वास-परायण है, आज भी वह वास्तविक अर्थ मे बौद्धिक नहीं है, केवल बौद्धिकता का झोल अपने भीतर छिपी हुई विश्वास-परायणता के ऊपर डाले हुए है; आज भी वह ऐसे कटु अनुभवों से होकर गुजर रही है जो निराशा की चरमावस्था की ओर उसे ढकेले लिये जा रहे है। युग-विवर्तनो के

साथ-साथ जनता के केवल बाह्य आवरणों मे ही परिवर्तन होते रहे है, भीतरी चेतना आज भी मूलतः वैसी ही है। इसलिये यदि आज भी कोई ऐसा महासंदेश हो जो जनता को निश्चित रूप से वास्तविक शांति और कल्याण का मार्ग सुझाता हो तो उपयुक्त प्रचार विधि द्वारा उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा। इतनी बात अवश्य ध्यान मे रखनी होगी कि आज के बदले हुए युग के लिये प्रचार के ढंग भी बदलने होगे। इस बार का प्रचार ऐसा अन्तःप्रवेशी होना चाहिए कि जनता के मन के भीतर और उस भीतर के भी भीतर पैठ जाय, जो उसकी चेतना मे भी मूलगत परिवर्तन लाने मे समर्थ हो, और जो केवल उसकी सरल विश्वास-परायणता का लाभ न उठाकर उसे अपनी बुद्धि द्वारा भी उस महासत्य को ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त कर सके। यह प्रयत्न करना होगा कि संसार के कोने-कोने से ऐसी बहु-संख्यक पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें प्रकाशित हो जो अहिंसा को केवल अहिंसा के लिये महत्त्व प्रदान करती रहें और साथ ही उस विश्वकल्याणकारी महाध्येय की पूर्ति का भी पथ सुझाती रहें जिसका उल्लेख मैं कर चुका हूँ।

"बहनो और भाइयो, जिस नव-निर्माण-संघ की स्थापना आज हम लोग कर रहे है उसके सम्बन्ध मे मै क्या यह आशा करूँ कि वह इस महालक्ष्य के प्रति सर्वदा, सब क्षण सचेत रहेगा? क्या मै यह विश्वास करूँ कि उसमे ऐसे नव-व्रती सम्मिलित होगे जो अपने जीवन को तिल-तिल करके इसी विराट उद्देश्य के लिये खपा देंगे? यदि इसकी तनिक भी सम्भावना है

तब तो मेरा यहाँ आना और आप लोगों के आगे अपने योजनात्मक स्वप्न का उद्घाटन करना सार्थक हो जायगा।

"मै अपनी सीमित शक्तियो से परिचित हूँ और इस बात से भी कि इस योजना को वास्तविकता का रूप देने के प्रयत्नों मे कैसे-कैसे चट्टानी अवरोधो का सामना करना होगा। पर मेरे भीतर ऐसा अगाध विश्वास और ऐसी प्रचंड आशावादिता वर्तमान है जो मुझे अपनी शक्ति की सीमा को निरन्तर तोड़ते रहने में मेरी सहायता करती रहेगी। उस सीमा की पिरामिड से भी विराट दीवारों को तोड़ने में चाहे युग बीत जायें मैं अविरत उन्हें तोड़ता चला जाऊँगा। इस कार्य मे मुझे अगर कुछ लगन के पक्के तरुण वीरों की सहायता मिल जाय तो अच्छा है, अन्यथा मै अकेला ही इसकी पूर्ति के लिये अपनी आत्मा का दीप जलाकर उन दीवारो पर हथौड़ा चलता रहूँगा"।

जब राजीव श्रोताओ की ओर हाथ जोड़ कर अपनी जगह पर बैठ गया तब अविराम करतल-ध्वनि से सारा हाल गूँज उठा। "हम आपके साथ है, आजीवन आपका साथ देते रहेंगे" की आवाजें एक-दूसरे से टकराती हुई एक विचित्र कलरोल उत्पन्न करने लगी। आवाजे आती जाती थी और राजीव बराबर हाथ जोड़ता चला जाता था। उसका तमतमाया हुआ मुख एक अलौकिक स्वप्न की-सी दीप्ति से विभासित हो रहा था। अपने अंतरतम चेतना-लोक से वह अनुभव कर रहा था कि उसकी योजना स्तर-प्रति-स्तर, सीढ़ी-दर-सीढ़ी सफल होती चली जारही है, सारे संसार का नवयुवक-समाज अपने तन, मन और आत्मा

की संपूर्ण शक्ति से, एकनिष्ठ भाव से उस महाकर्तव्य के पालन मे जुटा है और सफलता के चरम शिखर की ओर बढ़ा चला जा रहा है, कोई रुकावट उस महाप्रगति मे बाधा नहीं पहुँचा पा रही है, विश्व में सर्वत्र शांति, अहिसा और सौहार्द की धाराएँ सूक्ष्म वायुमंडल मे प्रवाहित हो रही हैं, कहीं न तो किसी प्रकार का आर्थिक संघर्ष वर्तमान है, न राजनीतिक कूटचक्र, न युद्धोन्माद, न कहीं संकीर्ण राष्ट्रीयता शेष है न अन्तर-राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता, न सांप्रदायिक और धार्मिक कट्टरता, सर्वत्र सम-श्रम, सम-व्यवस्था और सम-उपभोग का क्रम सहज-स्वाभाविक नियम से चला जा रहा है। समग्र मानवता एक सूत्र मे बँधकर एक महदुद्देश्य से प्रेरित होकर, समस्त भौतिक साधनो के नियन्त्रण द्वारा उन पर आत्मिक विजय प्राप्त करके भौतिकता से अभौतिकता की ओर बढ़ी चली जा रही है; सर्वत्र समभाव से निःस्पृह कर्मोद्यम चल रहा है और उस संसक्ति-रहित सम कर्मोद्यम के भीतर से परिपूर्ण शांति और शम्-अनुभूति का संचरण हो रहा है। कुछ ही क्षणों के भीतर युग-युगो के विकास की वह चरम परिणति प्रत्यक्षवत् उसकी आँखो के आगे झलक गयी। जब वह जगा तब मन-ही-मन कहने लगा—"क्या यह स्वप्न एक दिन सत्य मे परिणत नहीं होगा? होगा! अवश्य होगा! अन्यथा समग्र मानवीय सृष्टि के उस विरामहीन क्रमिक विकास का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता जो असंख्य असफलताओं और ह्रास-जनित परिस्थितियों के युग-युग-व्यापी अवरोधो के बावजूद अपने को निरंतर अग्रसर करती चली जा रही है।"

चालीसवाँ परिच्छेद

अपने भक्तों के श्रद्धा भार से अवनत होकर, उस नति के भीतर उन्नति का अनुभव करता हुआ विजयोल्लास से प्रदीप्त राजीव जब लौटकर अपने उपनिवेश में पहुँचा तब सुनन्दा उसे देखकर दिन की सारी शिकायत भूल गयी। हर्ष-गद्गद होकर पुलकित आँखो से कुछ क्षणों तक उसी की ओर देखती रह गयी। उसके बाद बोली—"आज तुम्हारा चेहरा खिल गया है। आज तुम बहुत सुन्दर दिखायी देते हो। इतने सुन्दर तुम पहले कभी नहीं लगते थे।"

"आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, सुनन्दा," राजीव बोला। "सच-मुच इतनी प्रसन्नता का अनुभव इसके पहले मैंने कभी नहीं किया था!"

"आज क्या बहुत बड़ा स्वागत हुआ, तुम्हारा!" बच्चो का सा सरल प्रसन्न भाव मुख पर झलकाते हुए सुनन्दा ने कहा।

"स्वागत तो हुआ ही, पर मेरी प्रसन्नता का कारण स्वागत नहीं था, नंदा!..."

"तब क्या था?" अधीर उत्सुकता से सुनन्दा ने पूछा।

"आज जो भाषण मैंने दिया वह ऐसा सुन्दर था कि मैं स्वयं ही उस पर मुग्ध हो गया। इतने दिनो से मानवीय प्रगति की जो विराट योजना मेरे मन में थी उसे आज शब्दो द्वारा विस्तार के साथ प्रकट करके मैंने अपने मन का भार बहुत हलका कर दिया है।"

सुनन्दा केवल आँखो में परिपूर्ण प्रशंसा का भाव झलकाये

उसकी ओर मग्न-भाव से देखती रही।

राजीव अनमनी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। कुछ क्षणों तक मौन रहने के बाद उसने फिर कहा—"मै सोच रहा हूँ, नंदा, कि जिस योजना को शब्दो द्वारा प्रकट करने मे इतना सुख है वह यदि कभी मानव-जीवन मे किसी भी हद तक कार्यान्वित हो सके, उसका स्वप्न किसी भी अंश तक चरितार्थ हो सके तब कितना सुख नहीं होगा!"

"होगा! होगा!" सहसा सुनन्दा पूर्ण विश्वास के साथ बोल उठी, जैसे किसी टेलीपेथिक सूत्र से स्वयं राजीव के ही मन मे उठे हुए आश्वासन को दुहरा रही हो। "तुम्हारा स्वप्न अवश्य सफल होकर रहेगा! दिन-रात चौबीसों घंटे प्रतिपल, सोते, जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते तुम जब तन, मन और आत्मा से केवल उसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर निरन्तर परिश्रम कर रहे हो, तब एक दिन उस तक तुम निश्चय ही पहुँचोगे। वह चाहे सचमुच स्वप्न ही हो तो भी उसे प्रत्यक्ष सत्य मे परिणत होना ही होगा! मेरी अंतरात्मा ऐसा कह रही है!" कहते हुए सुनन्दा इस कदर भाव-गद्गद हो उठी थी कि उसकी आँखो से पुलक के आँसू निकल आये थे।

राजीव को यद्यपि इस हद तक भावुकतापूर्ण आश्वासन की आवश्यकता नहीं थी—आश्वासन वह स्वयं अपने भीतर से चाहता था बाहर से किसी व्यक्ति से नहीं—तथापि सुनन्दा ने उसके हृदय के जिस अत्यन्त कोमल स्थान को स्पर्श कर दिया था उससे वह भी विचलित हो उठा।

"तुम बहुत ही भली और भोली हो नंदा !" कहकर राजीव ने अत्यन्त स्नेह से उसके सिर पर हाथ रखा। सुनन्दा कुछ देर तक उसी भावमग्न अवस्था में खड़ी रही। उसके बाद सहसा उसका ध्यान भंग हुआ।

"तुम बैठो, मैं खाना ले आती हूँ", कहकर वह टिन के पार्टीशन के उस पार वाले कमरे मे चली गयी।

राजीव उसकी प्रतीक्षा मे खटिया पर अनमने भाव से बैठ गया। कुछ देर बाद एक बड़ी थाली मे परोसा लगाकर सुनन्दा लौट आयी। थाली को एक तिपाई पर रखकर फर्श पर दरी के ऊपर उसने एक धुला हुआ कपड़ा बिछा दिया और फिर उसी पर थाली रख दी। राजीव नीचे बैठ गया।

"तुम खा चुकीं क्या ? पर यह तो बहुत है!" राजीव ने कहा।

"दोनों का खाना इसी में है। मैं अपने लिए भी थाली ले आती हूँ।" कहकर सुनन्दा फिर भीतर चली गयी। जब लौटकर आई तब उसके हाथ मे एक थाली थी और थाली पर दो कटोरे और चार छोटी-छोटी तश्तरियाँ थी।

जो थाली सुनन्दा पहले लायी थी उसमे एक किनारे पर तंदूर की बनी बहुत सी रोटियाँ रखी हुई थीं। दो बड़े-बड़े कटोरो में तरकारी, एक मे दाल, एक तश्तरी में सलाद और एक मे दही रखा था। सुनन्दा ने सभी चीज़ों को दो हिस्सों मे बाँटा—अपने लिये कुछ कम, राजीव के लिए कुछ ज्यादा। उसके बाद दोनो खाने लगे।

जब दोनो खा रहे थे तब राजीव ने पूछा कि जितने घंटों तक वह बाहर रहा उतने समय के भीतर निवेश मे कहाँ क्या हुआ,

कहीं से कोई शिकायत तो नहीं आयी और सारी व्यवस्था ठीक तो रही आदि-आदि। सुनन्दा एक-एक करके, छोटी से छोटी बात से लेकर बड़ी से बड़ी बात तक का हाल विस्तार से बताती रही और कहीं-कहीं पर अपनी दिक्कतें भी उसने बतायीं। राजीव बड़ी दिलचस्पी से उसकी एक-एक बात सुनता रहा और उसकी दिक्कतो का हल भी बताता रहा।

जब वे लोग खा पी चुके तब राजीव अपने कमरे में चला गया। काठ के एक बक्स से कई फाइलें निकाल कर एक मेज के पास बैठ गया और एक कलम हाथ मे लेकर उन कागजो को खोलकर देखने लगा।

सुनंदा ने धीरे से उसके कमरे मे प्रवेश किया और उसके आगे खड़ी हो गयी। धीरे से अत्यन्त स्नेह-सरस स्वर मे बोली—"आज भी क्या रात मे कागज देखते रहोगे? कम से कम आज तो आराम कर लो। दिन-भर की मेहनत से थके हो और फिर वहाँ जाकर लंबा भाषण देने के बाद लौटे हो।"

"नहीं नंदा," कागज से बिना दृष्टि हटाये ही, राजीव बोला। "ऐसा नहीं हो सकता। आज तो बल्कि मुझे और अधिक काम करना चाहिये, क्योकि आज प्रायः पाँच घंटे मै निवेश के कामों से अलग रहा। उस क्षति की पूर्ति करनी होगी।"

"नहीं, आज ऐसा न करो।" बच्चो के-से मचलने के स्वर में सुनंदा ने कहा। "आज मेरा जी ठीक नहीं है। चलो, कुछ देर व्यक्तिगत सुख-दुख की बातें करो। आज अकेले मे मेरा जी घबरा रहा है।"

इस बार राजीव ने सिर उठाया । अत्यन्त गंभीर दृष्टि से सुनंदा की ओर देखता हुआ बोला—"ऐसा न कहो, नंदा ! कम से कम तुम्हे ऐसा कहना किसी भी हालत में नहीं सुहाता । अकेले मे जी घबराने की बात तुम्हारे मुँह से नही निकलनी चाहिये । हम लोग सब सहयोग के नियमो के अनुसार चल रहे है, सन्देह नही, पर साथ ही यह धारणा भी हम लोग प्रत्येक के मन पर जमाते आये है कि सब समय उसे अकेले अपनी शक्तियो पर निर्भर करके चलते रहने के लिये भी तैयार रहना होगा । यह तुम जानती हो।"

"पर जीवन के कुछ विशेष क्षणो में—अवसाद की एकांत घड़ियो में यदि यह निपट अकेलापन दुकेलेपन मे परिणत किया जा सके तो इसमें कौन ऐसा बड़ा अनौचित्य तुम्हे दिखायी देता है ? उससे क्या सचमुच जीवन की सारी साधना खडित हो जायगी ?" सुनंदा के स्वर में तनिक झुँझलाहट का-सा आभास था !

"ऐसा होने मे कुछ आश्चर्य नहीं, नंदा ! जिस साधना को लेकर हम लोग चल रहे हैं उसमें व्यक्तिगत सुख-दुख की कोई गुञ्जाइश कही नहीं है । अपने निपट अकेलेपन—या तुम्हारे कथनानुसार, दुकेलेपन—में भी हम लोग प्रतिक्षण सबके साथ है । इस वज्र-सत्य को एक क्षण के लिये भी भुला देने से वह नींव ही हिल सकती है जिस पर हम लोगो ने इतनी बड़ी इमारत खड़ी करने की योजना बनायी है।"

"तुम भ्रम मे हो, राजीव बाबू, और अपने इस भ्रम को एक दिन तुम स्वयं महसूस करोगे, यह भविष्यवाणी मै किये देती हूँ ।

जिस वज्र-पाषाण की सुदृढ़ इमारत के निर्माण की योजना के पीछे तुम पागल हो, उसके विरुद्ध मुझे कुछ नहीं कहना है, पर यदि तुम्हारी धारणा यह हो कि वह इमारत बिना स्नेहसिक्त गारे के या बिना अंतर्वेदना की नमी के जम जायगी तो इससे बड़ी भूल दूसरी कोई हो नहीं सकती! खैर! इस समय मैं अधिक कुछ नहीं कहूँगी। तुम अपना काम करो। तुम्हारे काम में दो-चार मिनट का विघ्न डालकर मैंने जो महान् अपराध किया है उसके लिये क्षमा माँगती हूँ।" कहकर सुनंदा भुनभुनाती हुई सी चली गयी।

उसके चले जाने के बाद राजीव कुछ क्षणों तक अनमने भाव से शून्य की ओर देखता रहा। सुनन्दा का आज का व्यवहार उसे एकदम नया और अप्रत्याशित लगा। उसे यह सोच सोचकर आश्चर्य होने लगा कि इतने दिनों तक साथ रहने पर भी सुनंदा के समान तीव्र बुद्धिमती नारी उसके दृष्टिकोण के महत्त्व को ठीक तरह से समझने मे क्यों असमर्थ सिद्ध हो रही है! जिस 'भ्रम' की बात सुनन्दा ने कही थी अपने दृष्टिकोण में उसका कहीं तनिक भी आभास उसे नहीं दिखाई दे रहा था। सुनन्दा के व्यवहार से आज पहली बार उसके भीतर एक हलकी सी खरोंच लगी। एक लंबी सी साँस लेकर वह फिर अपने काम मे तल्लीन हो गया।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

सुनंदा अपने कमरे मे जाकर बाण-बिद्ध सी खटिया पर लेट गई। बाण का वह आघात अवश्य प्राणांतकर नहीं था, पर निश्चय ही वह उसके मर्म को छू चुका था। जाड़े के दिन थे, और सर्दी

अधिक न होने पर भी कुछ कम भी नहीं थी। पर उसने ऊपर से कुछ ओढ़ा तक नहीं। जो साड़ी वह पहने थी केवल उसी को लपेटे रही। कई दिनो से जो एक अव्यक्त और अस्पष्ट वेदना रह-रहकर बीच-बीच मे हवा के हलके झोके की तरह उसके मन को हिलकोर जाती थी आज वह सहसा जैसे पूरे तूफानी वेग से उफन उठी थी। काफी देर तक वह उस तूफान और उफान को शांत होने देने की प्रतीक्षा मे अपने आपको पूरी ताकत से जैसे समेटे रही। उस समय उसके भीतर की परिस्थिति में एक विचित्र विरोधाभास चल रहा था। एक ओर वह अपने चित्त को यथा-स्थित रखने मे सफल हो रही थी, दूसरी ओर उसी अपेक्षाकृत स्थिर चित्त के भीतर और बाहर तूफानी झोके प्रलयंकर फुफकार मचा रहे थे। वह स्वयं जैसे निरपेक्ष भाव से आँधियो का वह गरजना सुन रही थी।

जब आँधियाँ कुछ शांत हुई तब सुनंदा अपेक्षाकृत शांत भाव से अपनी इतनी दिनो की स्थिति का लेखा-जोखा करने लगी। जब से वह लखनऊ से आयी थी तब से वह दिन-रात, बिना विश्राम के मुक्ति-निवेश के निर्माण कार्य में अपने तन का और मन का एकात्म सहयोग देती रही। प्रारभ मे शरणार्थी स्त्रियों, पुरुषो और बच्चो की प्रतिदिन की छोटी-छोटी समस्याओ और कठिनाइयो में सहायता देते रहने के बाद उनकी शिक्षा-दीक्षा और संगठन सम्बन्धी कामो मे अपने को परिपूर्ण रूप से, आत्मचिताहीन भाव से खपाती रही। ज्यों-ज्यो संगठन जमता चला गया, त्यो-त्यों योजना बढ़ती चली गयी और साथ ही काम

भी और कठिनाइयाँ भी बढ़ती चली गयीं। पर उस कार्याधिक्य से और किसी भी कठिनाई से तनिक भी न घबराकर वह दुगने उत्साह से आंतरिक लगन से कर्त्तव्य कर्मों में जुटी रही। निस्संदेह उसकी उस निरंतर बढ़ती हुई शक्ति का मूल प्रेरक था राजीव, जो अपने दुर्धर्ष,पौरुष से, दुर्निवार आत्मबल से अपनी अतिमानुषी शक्तियों के द्वारा, एक विराट संगठनात्मक योजना के पीछे पागल होकर, एक सुदूरवर्ती महाकाल को अपना ध्रुव-तारा बनाकर निरंतर मुक्तिपथ पर अग्रसर होता चला जा रहा था। पर उस प्रेरक शक्ति का अनुसरण उसी भावात्मकता से कर सकना भी तो कोई खेल नहीं था। प्रत्येक साधारण व्यक्ति के लिये क्या उस बीहड़ और दुर्गम पथ पर चल सकना संभव था! सुनन्दा को स्वयं इस बात का भान कभी नहीं रहा कि उसके भीतर वैसी सुकठिन दृढ़ता, वैसा अडिग विश्वास और अविचल आस्था किसी ध्येय के सम्बन्ध में वर्तमान रह सकती है, और अपने अंतर की गुप्त शक्तियों को वह उस सीमा तक जगा सकती है। राजीव जिस महासाधना में एकनिष्ठ भाव से रत था उसका महत्त्व उससे छिपा नहीं रह गया था और वह यह नहीं चाहती थी कि उस साधना में किसी भी कारण से क्षण भर के लिये भी तनिक भी भग्नता आये। इसलिये बीच-बीच में उसके एकांत साहचर्य द्वारा अपने और उसके अक्लांत कर्मोद्यम का तनिक विश्राम देने की क्षीण इच्छा मन में जगते रहने पर भी वह उस इच्छा के प्रदर्शन से अपने को बराबर विरत करती जा रही थी।

पर जब आयोजित संगठन को—प्रारम्भिक रूप से ही सही—

एक निश्चित और सुनियमित स्थिति प्रदान करने में राजीव सफल हो चुका है, तब भी क्या यह संभव नहीं है कि कभी-कभी, चाहे कुछ ही क्षणों के लिये क्यों न हो, ऐकांतिक विश्राम लेकर वे लोग क्षणिक साँस लेने का तनिक अवकाश पायें? सामूहिकता के प्रति अपना निःसंग, निर्लिप्त और निःस्वार्थ कर्त्तव्य निरतर पूरा करते हुए बीच मे कुछ क्षण व्यक्तिगत भाव-विनिमय के लिये निकाल पायें? अपने व्यक्ति को इस कदर मिटा देना कि उसकी जड़ों को खोद-खोदकर, उन जड़ो को जलाकर एकदम राख मे परिणत कर दिया जाय ताकि फिर कभी किसी भी हद तक उनके पनप उठने की कोई संभावना ही शेष न रहे, साधना का ऐसा निर्मम आदर्श क्या वास्तव मे इतना महान और विश्वकल्याणकारी है? इस अति की क्या कोई सीमा ही संभव नही है? यह न तो प्राकृतिक नियमो के ही अनुकूल है न कल्याणकारी। यह उस अहम् के नकारात्मक विकास की ही चरम परिणति है जो बाहर से अपने को पूर्णतया मिटाकर··· भीतर से महान् आदर्शात्मक स्वप्नों द्वारा अपनी तुष्टि करता है।

रह-रहकर उसे लगता था कि मुक्तिपथ का अनुसरण करने पर भी, अपने भीतर की मातृ-भावना को अधिक से अधिक व्यापक और विकसित रूप देने पर भी उसका नारीत्व कहों-न-कहीं खंडित ही रह जाता है। मानवता के सामूहिक हित के लिये वह अपना और सब कुछ अर्पित कर सकती है, पर उतने बड़े ध्येय के लिये भी वह नारीत्व की बलि देने को तैयार नहीं है। युग-युग के कुचले हुए नारीत्व को जगाकर उसमे पूरिपूर्ण चैतन्य

भरने मे जो मुक्तिपथ समर्थ नहीं है, जो साधना सामूहिक नारी के व्यक्तित्व को उभारकर उसके भीतर बीज रूप में निहित बहुमुखी सुप्त शक्तियो को जाग्रत करके, बृहत् मानव-परिवार के सुव्यवस्थित संचालन की बागडोर उसके हाथो मे सौंप सकने में अक्षम है उसकी क्या उपयोगिता उसके लिये हो सकती है? युग-युग से यही देखने में आता है कि बड़े-से-बड़े आदर्शों की स्थापना मे, महत् से महत्तर विश्व-व्यवस्था के संधान मे भी पुरुष का विराट अहम् हिमालय के दुर्लंघ्य शिखरो की तरह खड़ा होकर नारी की वास्तविक प्रगति का पथ अवरुद्ध करता आया है, उसके निपट दैन्य की काव्यात्मक स्तुति द्वारा उसे भुलावा देकर उसके स्वाभिमान को सिर उठाने से रोकता चला आ रहा है । यदि राजीव बाबू की महामानवता संबंधी विराट योजना भी नारीत्व के चरम विकास के प्रति उदासीन होकर नारी को केवल उस विशाल इमारत की नीव की ईट बनाकर छोड़ देना चाहे तब नारी के भविष्य के लिये इससे बड़ी निराशाजनक स्थिति दूसरी क्या हो सकती है ? नहीं, इस स्थिति मे वह अधिक समय तक अपने को उस योजना के पीछे नहीं खपा सकेगी । इस पर गंभीर विचार करना होगा और आगे का पथ निर्धारित करना होगा ।

बहुत देर तक वह इसी प्रकार के विचार-चक्रों में अपने को जान-बूझकर उलझाती रही । चाहने पर भी वह सो नहीं पा रही रही थी । तीसरे पहर तक वह एक अपरिस्फुट बेचैनी से छटपटाती हुई करवटें बदलती रही ।

दूसरे दिन वह देर तक सोई रही, एक बार जब आँखें खुलीं तब उसने देखा कि दिन काफी चढ़ चुका है, पर वह फिर भी नहीं उठी। शाल लपेट कर लेटी रही। राजीव भी प्रतिदिन की तरह देर से सोया था और प्रतिदिन की तरह ही तड़के उठकर खेतो मे काम करने चला गया था। बीच मे एक बार जब वह डेरे पर लौटा तब भी सुनंदा लेटी हुई थी।

"सुनंदा, तबीअत खराब है क्या ? आज अभी तक लेटी हो!" राजीव ने चिंतित भाव से कहा।

बहुत ही धीमे स्वर मे केवल "हाँ!" कहकर सुनंदा ने करवट बदली।

"डाक्टर को बुलाऊँ क्या ?"

"नहीं!"

"ज्वर तो नहीं है, जरा हाथ देखूँ!" कहकर राजीव शाल धीरे से हटाकर उसकी नब्ज देखने लगा। उसका नाड़ी-ज्ञान विशेष नहीं था, फिर भी उसे अनुभव हुआ कि सुनंदा की नाड़ी तेज़ चल रही है।

एक बार सुनन्दा की इच्छा हुई कि झटककर हाथ छुड़ा ले, पर फिर इस प्रकार का नाटकीय भाव-प्रदर्शन करने को उसका जी नहीं हुआ। जो गंभीर वेदना-जनित भाव-मथन उसके भीतर चल रहा था, उसमे उस प्रकार की छिछली भावुकता, तुच्छ मान-अभिमान का प्रदर्शन उसे लड़कपन लगा।

"तुम्हें ठंढ लग गयी है," राजीव ने रोग का निदान करते हुए कहा, "मैं तुम्हारे लिये तुलसी की पत्तियों की चाय तैयार

किये देता हूँ। तुम लेटी रहो।" कहकर राजीव जाने लगा।

एक कदम आगे बढ़ा ही होगा कि निवेश के एक लड़के ने आकर सूचित किया—"एक महिला बाहर से आयी हैं। आपसे मिलना चाहती हैं।"

"भीतर बुला लो," अनमने भाव से राजीव ने कहा।

थोड़ी देर बाद वह लड़का जिस महिला को साथ लेकर आया उसे देखकर राजीव ठिठक कर खड़ा हो गया। पंजाबी लड़कियों का-सा उसका पहनावा था। उसके मुरझाये हुए, कंकालावशेष, निःसत्त्व मुख पर एक मौन उदासी छायी हुई थी जिसने राजीव के मर्म में जाकर अपनी अँधेरी छाया डाल दी।

"प्रमीला, तुम!" अर्द्धस्फुट स्वर में राजीव ने कहा।

प्रमीला का नाम सुनते ही सुनन्दा हड़बड़ाती हुई खटिया पर उठ बैठी। प्रमीला ने पहले राजीव के चरण छूए, फिर जाकर सुनन्दा को प्रणाम किया।

"तुम्हारा यह क्या हाल देख रही हूँ, प्रमीला," आन्तरिक वेदना से काँपती हुई आवाज में सुनन्दा ने कहा। "और तुमने यहाँ आने की खबर पहले ही से हम लोगों को क्यों नहीं दी ?"

"अचानक मेरे मन में यहाँ चले आने का विचार उठा, बुआ! गाड़ी छूटने का समय हो गया था। सूचना देने का समय ही नहीं रह गया था।" अत्यन्त क्षीण और अस्पष्ट स्वर में प्रमीला ने कहा। लगता था, जैसे उसमें बोलने की भी शक्ति नही रह गयी है।

"ऐसी जल्दी का कारण क्या था ?" चिन्तित होकर सुनन्दा ने पूछा।

"सब बताऊँगी अभी। तनिक सुस्ताने दो! तुम इस तरह क्यों लेटी थीं अभी तक? तबीअत खराब है क्या?"

"मेरी तबीअत बिलकुल ठीक है, तुम अपना हाल बताओ, रानी! क्या हो गया तुम्हे? इस कदर दुबली हो गयी हो तुम, जैसे महीनों की बीमारी के बाद अभी उठकर आयी हो।"

"उन्होने आत्महत्या कर ली, बुआ, आज एक महीना हुआ। मेरे ही कारण यह हुआ। मैं घोर अपराधिनी हूँ, बुआ!" कह कर प्रमीला अपनी दोनो बाँहो को सुनन्दा के गले मे डालकर, उसके वक्ष में अपना मुँह छिपाकर सिसकने लगी।

राजीव और सुनन्दा प्रायः एक साथ चिल्ला उठे—"ऍं!..."

कुछ देर तक कमरे मे मौत का-सा सन्नाटा छाया रहा। उसके बाद प्रायः काँपते हुए स्वर में सुनन्दा ने पूछा—"बात क्या हो गयी, रानी?"

प्रमीला निरुत्तर भाव से उसी तरह सिसकती रही।

बयालीसवाँ परिच्छेद

उसकी पीठ पर धीरे से हाथ फेरते हुए सुनन्दा ने फिर कहा—"बोलो रानी, तनिक बताओ तो सही कि हुआ क्या? जो होना था सो तो हो चुका, अब उसके लिये रोने से कोई लाभ नही हो सकता। पर मै तनिक जानना चाहती हूँ कि आखिर क्या बात हुई?"

प्रमीला ने धीरे से अपना सिर उठाया। आँचल से आँसू पोंछती हुई अत्यन्त क्षीण स्वर में बोली—"विवाह होने के बाद

आरम्भ मे कुछ महीने सहज रूप मे बीते। बीच-बीच में हम दोनों के बीच छोटी-छोटी बातों पर कुछ कहा-सुनी हो जाती थी। पर उसका हम दोनो के पारस्परिक सम्बन्धो पर कोई विशेष अन्तर नही पड़ा। उनकी कुछ आदतो पर विवाह के पहले ही से मै व्यङ्ग कसा करती थी, यह तुम जानती हो। मुझे यह आदत सी पड़ गई थी, और उससे मेरा अच्छा विनोद होता था…”

प्रमीला आँसू पोछ चुकी थी और सहज भाव से सुनंदा की ओर देख रही थी। सुनंदा एकांत ध्यान से उसकी बातें सुन रही थी। राजीव खटिया के पास ही गंभीर मुद्रा मे खड़ा था। प्रमीला कहती चली गई—“वह मेरे व्यंगो से थोड़ा-बहुत खीझ अवश्य उठते थे, पर उस खीझ से मेरे प्रति उनके खिंचाव में कभी कोई कमी नही आई, बल्कि मुझे लगता था कि वह बढ़ता ही चला जाता है। अगर सच पूछो तो बुआ, मै इस विवाह के लिये राजी ही यह सोचकर हुई थी कि मुझे एक आदमी ऐसा मिल गया है जिसे मैं जी भर-कर चिढ़ा सकती हूँ, जिस पर तीखे व्यंग कस सकती हूँ, और जो मेरे उन व्यङ्गों को अन्त तक प्रेमपूर्वक सहन करने की समर्थता रखता है। तब मैं सोच ही न पायी कि अपनी इस बचकानी खामखयाली की पूर्ति के लिये मैं अपने सारे जीवन को ही दाँव पर लगाने जा रही हूँ। कुछ भी हो, प्रारंभ मे कुछ महीनो तक हम दोनों के बीच उस व्यङ्ग और खीझ का वैसा ही संबंध सहज रूप मे चलता रहा जैसा विवाह के पूर्व। मैं खुश थी। मुझे किसी बात की कोई गम्भीर शिकायत नहीं थी और छोटी-मोटी शिकायतों के जो कारण मेरे आगे आते थे उनके प्रति

विशेष ध्यान देना मेरे स्वभाव के अनुकूल नहीं था। पर धीरे-धीरे उनके स्वभाव के कुछ दूसरे ही रूप मेरे आगे प्रकट होने लगे। शायद मेरी अपेक्षाकृत खर्चीली आदतों को अधिक सहन कर सकने की समर्थता उनमें नहीं रह गयी थी। मैं अंधाधुंध खर्च करना पसंद करती होऊँ ऐसी बात नही थी। पर जिस तरह का खाना खाने, अतिथियों के साथ जिस हीनता से पेश आने, एक भी पैसा बचाने की खातिर आत्म-सम्मान को जिस तरह तिलांजलि देने के आदी वह थे, वैसा ही वह मुझे भी बनाना चाहते थे। मै एकदम हीनता की उस स्थिति को पहुँचने मे अपने को असमर्थ पाती थी। इसलिये पहले कुछ दिनो तक तो वह भीतर ही भीतर कुढ़ते रहे, पर बाद मे उन्होने अपनी कुढ़न को विविध उपायो से प्रकट करना आरम्भ कर दिया। जिस दिन कुछ विशेष अतिथि आये हुए होते और मै भले आदमियो की तरह उनका स्वागत कर पाती उस दिन वह तबीअत खराब होने का बहाना बनाकर अपने लिये रात खाना बनाने की मनाही कर देते। अतिथि-सत्कार के खर्चे की थोड़ी बहुत पूर्ति वह इस प्रकार करते। फलतः उस दिन मुझे रात मे अकेले ही खाने बैठना पड़ता। मुझे अकेले खाने की आदत कभी नहीं रही। इसलिये मै भी ठीक से न खा पाती।

"बँगले का आधा हिस्सा उन्होने जिस किरायेदार को दे रखा था उसके यहाँ जाने पर वह और उसकी पत्नी बिना बढ़िया नाश्ता कराये और चाय-काफी पिलाये हम लोगो को जाने न देते। वे जब हमारे यहाँ आते तब स्वभावतः मैं भी उन्हें अच्छी तरह खिलाने-पिलाने का आयोजन करती। यह उनसे देखा न

जाता। एक दिन उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मुझसे कह दिया कि 'मैंने बँगले का आधा भाग किराये पर इसलिये नहीं लगाया है कि जितना किराये मुझे मिले उससे ज्यादा मैं किरायेदार को खिला-पिला दूँ।' मैं रह न सकी और पलटे में मैंने भी खरी-खोटी सुनायी। उसके बाद एक दिन अवसर पाकर मैंने किरायेदार की पत्नी से संकेत द्वारा कह दिया कि वे लोग कोई दूसरा मकान ढूँढ लें। फलतः एक दिन वे लोग बोरिया-बँधना उठाकर चल दिये। उनके चले जाने के कुछ ही दिन बाद विजय ने बताया कि एक बहुत ही अच्छा किरायेदार उन्हें मिल रहा है जो पिछले किराये-दार से दुगना किराया देगा। मैंने कहा—"मैं नहीं चाहती कि अब कोई भी किरायेदार इस बँगले मे रहे।' पर वह हठ करते रहे। मैंने स्पष्ट शब्दों मे उन्हें बता दिया कि यदि वह मेरी बात नहीं मानेंगे तो मै सरकार मे सूचना दे दूँगी कि वह नाजायज तरीके से किसी किरायेदार को रखे हुए है। उस बार वह जी मसोसकर किसी तरह रह गये। पर कुछ दिनो बाद, मेरे विरोध के बावजूद, उन्होंने फिर एक किरायेदार को लाकर बिठा ही दिया। मुझे बड़ा क्रोध आया और एक बार इच्छा हुई कि सरकार मे जाकर इत्तला दे दूँ। पर फिर रह गयी। वह एक पंजाबी व्यवसायी था। उसका नाम शिवराम था। लाहौर से दिल्ली और दिल्ली से लखनऊ आया हुआ था। वह अकेला था। अपने संबंधियों को दिल्ली मे छोड़ आया था, और लखनऊ मे कोई नया व्यवसाय खोलना चाहता था। स्पष्ट ही विजय ने उससे पगड़ी के रूप में कोई गहरी रकम ली थी। मुझे आदमी वह बहुत शरीफ लगा और उसकी

कठिनाई का खयाल मुझे हुआ। इसलिये मैंने कोई विरोध नहीं किया। जैसा कि स्वाभाविक था, हम लोगो से उसने हेलमेल बढ़ा लिया। यह संभव नहीं था कि वह हम लोगों के यहाँ आये और चाय-पानी से उसका स्वागत न किया जाय। यह बात फिर विजय को अखरने लगी, और वह अपने ढंग से इसका विरोध करते रहे। पंजाबी लोग स्वभाव से ही ढीठ होते हैं। इसलिये जब मैं अकेली होती तब भी वह अक्सर मेरे पास आ जाता और दुख-सुख की बातें करता। किसी शरीफ आदमी से मै कैसे कहती कि वह मेरे यहाँ न आया करे। पर विजय चाहते थे कि मै स्पष्ट शब्दो में उसे मना कर दूँ कि वह अकेले में मुझसे मिलने न आवे। एक दिन जब विजय कुछ जल्दी ही दफ्तर से घर लौट आये तब शिव-राम मेरे साथ बैठकर चाय पी रहा था। उस वक्त विजय कुछ नहीं बोले, पर उसके चले जाने के बाद उन्होने जली-कटी बाते सुनानी आरंभ कर दीं। मै भी सहन न कर सकी और पलटे मे मैंने भी उनकी नीचता के कई उदाहरण उन्हे गिना दिये। अंत मे यहाँ तक नौबत पहुँची कि उन्होंने स्पष्ट शब्दो मे यह लाछन मुझ पर लगाया कि मै शिवराम से प्रेम करती हूँ। इस नीचता से मै तिलमिला उठी और विजय को गाली पर गाली देती चली गयी। उसी दिन मैं मायके चली गयी। तब से महीनो तक मैं विजय के पास नहीं गयी। विजय माँ के पास प्रायः नित्य ही क्षमा माँगने आते थे, पर मै माँ के मनाने पर भी नही मानी। अंत मे एक दिन विजय ने मेरे दोनों पाँव पकड़ कर उन पर अपना माथा टेक दिया और कहा कि यदि मैं उन्हे क्षमा नहीं करूँगी तो वह

निश्चय ही विष खा लेंगे, इसमे अन्यथा नहीं हो सकता । साथ ही उन्होंने शपथ खायी कि वह भविष्य मे कभी मेरी किसी बात का विरोध नहीं करेंगे। मैने यह सोचा कि उन्हे काफी सजा मिल चुकी है, और माँ और बाबू जी के मन मे अधिक पीड़ा पहुँचाना भी उचित नहीं है। इसलिये मैं फिर एक बार विजय के साथ चली गयी।

"जब मैं फिर उनके यहाँ गयी तब शिवराम बँगला छोड़कर चला गया था।

"मेरी भीतर की सारी विनोद-भावना, सारे बचकानापन की जड़ ही सूख गयी थी । जीवन और यौवन के सारे स्वप्न बिखर गये थे । सब समय मन के कुहासे में एक अजीब-सी उदासीनता जैसे मकड़ी का-सा जाला बुनने लगी। माँ का खयाल यदि मुझे न होता तो मै सारी परिस्थितियो पर लात मार कर कही निकल गयी होती । पर अभी तक माँ-बाप के प्रति स्नेह की दुर्बलता वर्तमान रहने से उनकी सामाजिक धारणाओं के प्रति भी मै अधिक समय तक उदासीन नहीं रह सकती थी। इसलिये मन मार कर किसी तरह विजय के साथ फिर से गार्हस्थिक सम्बन्ध स्थापित किये रही । पर उन्हें देखते ही रह-रहकर सारे शरीर में और मन मे घृणा के काँटे उठ खड़े होते थे।

"कुछ समय तक वह अत्यन्त विनम्र और बाध्य बने रहे। मेरी किसी भी बात का, मेरे किसी भी काम का कोई विरोध किसी भी रूप में न करते। पर अपने स्वभाव से लाचार थे। बीच-बीच मे छोटी-छोटी बातों पर, न चाहने पर भी वह अपना असली रूप

प्रकट कर ही डालते थे। मैं जी मसोस कर रह जाती। मारे घृणा के उनसे कुछ कहने की भी इच्छा मुझे नहीं होती थी।

"पर एक नयी बात मेरे सामने आने लगी। बीच-बीच में कुछ ऐसे लोग उनसे मिलने आते थे, जिनसे वह गुप-चुप में, सांकेतिक भाषा मे बाते किया करते थे। बाद में बिना उनसे कुछ पूछे पता चल गया कि गहरी घूसखोरी का मामला चल रहा है। उन लोगो की जितनी कुछ भी बातें मेरे कानो मे आती थीं उतनी ही मेरी इस जानकारी के लिये पर्याप्त थीं। उनके चरित्र का इस हद तक पतन मेरे लिये असह्य हो उठा। मैं भीतर ही भीतर बुरी तरह छटपटाने लगी। अपना क्रोध न सँभाल सकने के कारण मैं उनसे इस सम्बन्ध मे कुछ कहने की बात सोच ही रही थी कि एक दिन एक उच्च पदाधिकारी की स्त्री के यहाँ किसी निमंत्रण में मुझे सम्मिलित होना पड़ा। वहाँ बड़े बड़े पदाधिकारियों और कुछ मन्त्रियो की स्त्रियाँ भी आयी हुई थीं। एक विशेष मन्त्री की स्त्री से मेरा घनिष्ठ परिचय था और वह और उनके पति विजय को खूब अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने व्यंग से मुसकराते हुए मुझसे कहा कि 'आजकल तों आप के खूब गुलछर्रे उड़ रहे होगे।' मै कुछ समझी नही। कुछ देर तक बेवकूफो की तरह देखती रही। उसके बाद मैने पूछा—'आपका आशय मै समझी नहीं।' उन्होंने कहा—'आजकल विजय बाबू की दोनों मुट्ठियाँ खूब गरम हो रही है।' मै समझ गयी और आतंक से काँप उठी। कही सबके आगे बात स्पष्ट रूप मे खुल न जाय, इस भय से मैने कोई दूसरी ही चर्चा चला दी।

"उसी दिन घर आने पर मैंने दुःख और क्रोध से काँपते हुए उन्हीं महिला के उस व्यंग को बढ़ा-चढ़ाकर विजय के आगे दुहराया। साथ ही इतना अपने मन से जोड़ दिया कि 'तुम्हारी घूसखोरी से सम्बन्धित सभी हरकतों पर खुफिया पुलिस की कड़ी निगाह पड़ी हुई है और तुम्हारे खिलाफ एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की जा चुकी है और मामला जल्दी ही चलाया जायगा।' मारे घृणा और क्रोध के मैं न मालूम और क्या-क्या कह गयी मुझे याद नहीं। सुनते ही उनके चेहरे में एकदम मुर्दनी छा गई। मुख मुरझाकर इस कदर सिकुड़ गया कि मैं डर गयी। कुछ क्षणों तक वह सूनी-सी आँखों से मेरी ओर देखते रहे। उसके बाद बिना कुछ बोले ही, गिरते-पड़ते से अपने कमरे में चले गये और भीतर से किवाड़ बंद कर लिया।

"उसके बाद उन्होंने सुबह ही किवाड़ खोले। उनके मुख पर अभी तक वही प्रेत-छाया घिरी हुई थी। मुझसे वह कुछ नहीं बोले और न मेरा जी ही उनसे कुछ बोलने को चाहता था। थोड़ा-सा दया-भाव मन के एक कोने मे अवश्य जगा था, पर घृणा की प्रबलता ने उसे भी दबा दिया था।

"आठ बजे वह 'कार' पर बैठकर बाहर निकल गये और प्रायः बारह बजे लौटे। फिर अपने कमरे में बंद हो गये। मैंने कोई खबर नहीं ली। चाय के वक्त नौकर ने दरवाजा खटखटाया, पर कोई उत्तर नहीं मिला। 'बाबू जी! बाबू जी!' कहकर उसने कई बार पुकारा, पर कोई फल नहीं हुआ। मैंने सोचा कि शायद सो गये होंगे। जब पुकारते, खटखटाते और धक्का देते एक घंटे

से भी ज्यादा हो गया तब नौकर भी चिन्तित हुआ और मैं भी। पिछले दिन उनके मुख पर छायी मुर्दनी की याद मुझे आयी। मैंने नौकर को दरवाजा तोड़ डालने की आज्ञा दी। अन्त में जब हथौड़ों की चोट से दरवाजा खुला तब फर्श पर उनका मृत शरीर पड़ा पाया गया। मैं चीख उठी और अपनी दोनों आँखें मैंने बन्द कर ली।

"उसके बाद पुलिस को सूचना दी गई, पोस्ट मार्टम हुआ, जाँच हुई, बड़े-बड़े अधिकारियो के बयान लिये गये और तब जाकर यह निर्णय दिया गया कि उन्होंने आत्महत्या की है।

"इस अप्रत्याशित घटना ने और पिछले अनुभवों ने मिल-कर मेरे भीतर आँधियों के जरिये से श्मशान की-सी ऐसी राख उड़ानी शुरू कर दी कि चारों ओर उस राख के सिवा मुझे और कुछ नजर ही नही आता था। मै स्वयं आत्महत्या का कोई उपाय खोजने लगी। पर उस उड़ती हुई राख के कारण आँखो को आत्महत्या का भी कोई उपाय नही सूझ पाता था।

"जब तूफान कुछ ठढा पड़ा तब तक आत्महत्या की प्रवृत्ति भी बहुत कुछ ठंढी पड़ चुकी थी। पर लखनऊ मे एक क्षण भी रहना मेरे लिये असम्भव हो उठा। कल अचानक तुम्हारे पास चले आने का विचार मेरे मन मे पैदा हुआ। और यह विचार उठते ही मैं टिकट कटाकर चल पड़ी।"

सुनन्दा काठ की पुतली की तरह चुप बैठी थी और राजीव भी उसी तरह खड़ा था। प्रमीला ने जब अपना वक्तव्य समाप्त किया, तब फिर एक बार कमरे में श्मशान का-सा सन्नाटा छा गया।

उसके बाद एक लम्बी साँस भरते हुए राजीव ने कहा—"मुझे तभी आश्चर्य हो रहा था, प्रमीला, जब मुझे पता चला कि विजय से तुम्हारा विवाह होने जा रहा है, और उस विवाह का कोई विरोध तुम नही कर रही हो। तुम्हारी जैसी बुद्धिमती नारी के संबंध मे यह सदेह तो मेरे मन मे कभी नही रहा कि विजय को संकुचित मनोवृत्ति से तुम अपरिचित हो। पर मै यह न समझ पाया था कि वह कौन मोह है जिसने तुम्हे उसकी ओर खींचा है। आज तुम्हारी बातो से वह रहस्य खुल गया है। एक व्यक्ति, जो अत्यन्त संकीर्ण-हृदय होने पर भी अपनी चतुराई-भरी चालो से समाज मे अपने लिये काफी प्रतिष्ठित स्थान बना सकने में सफल हुआ हो, साथ ही जो दब्बू और प्रकट मे तुम्हारी वश्यता पूर्णतः स्वीकार करने का भाव जताता हो, उसे चिढ़ाने और बनाने को मोह त्यागना तुम्हारे समान विनोद-प्रिय लड़की के लिये साधारण आकर्षण की बात नही हो सकती थी। पर मैं जानता था कि तुम्हारी उससे अधिक समय तक निभ नहीं सकेगी, और इस विवाह का परिणाम कुछ अच्छा नहीं होगा, यह आशंका भी मुझे थी। फिर भी वह परिणाम यह रूप धारण करेगा यह बात मेरी कल्पना के परे थी। जो भी हो, अनिवार्य होकर रहा, और अब इसके लिये शोक करना कोई अर्थ नहीं रखता। तुम्हारे समान समझदार लड़की को यह शोभा नहीं देता। तुम्हारा कोई भी अपराध मै नहीं मानता। बल्कि सच तो यह है कि अपराध तुम्हारे प्रति ही हुआ है। तुमने अच्छा किया जो तुम यहाँ आ गयीं। नहीं तो लखनऊ का वातावरण तुम्हारे

चित्त को बुरी तरह उद्भ्रांत कर सकता था। अच्छा मैं जाता हूँ चाय बनाने। तुम बैठो, मैं दस मिनट में आया।"

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

जब राजीव चला गया तब प्रमीला ने कहा—"बुआ, मेरे लिये तो कारण है, पर तुम्हें क्या हो गया? तुम क्यों सुस्त हो गई हो?"

"आज तबीअत कुछ ठीक नहीं है, रानी, नहीं तो मैं पिछले ढाई वर्षों से यहाँ आने पर बड़ी चुस्त हो गयी थी। दिन-रात निवेश का कोई-न-कोई काम हाथ में लिये ही रहती थी। बड़ी प्रसन्नता से, बड़ी ही फुर्ती से, सब काम पूरे उत्तरदायित्व से करती रही हूँ। कभी तनिक भी थकावट मुझे मालूम नहीं हुई, पर इधर कुछ दिनों से न जाने क्या हो गया है, मन बड़ा ही चंचल, बड़ा ही उदास हो उठा है।" सुनंदा बहुत धीरे से, धीमी आवाज मे बोल रही थी, शायद इस आशंका से कि उसकी आवाज कही बाहर न सुनाई दे।

"राजीव बाबू तो पहले से अधिक स्वस्थ दिखते हैं! तुमसे तो उनकी अच्छी ही निभती होगी?" कहते हुए अपने मन की परम विषादपूर्ण अवस्था मे भी प्रमीला की कोटरगत आँखो मे एक बहुत ही हलका-सा हासाभास झलक उठा।

इस प्रश्न से सुनन्दा के मुख पर व्यंग की एक मार्मिक मुसकान झलझला उठी। बोली—"निभने न निभने की कोई बात न पहले थी, न अब है। जिस आदर्श-भावना की प्रेरणा से मैंने उनका साथ स्वीकार करने का तुम्हारा सुझाव मान लिया था,

उसी कर्तव्य-बुद्धि से परिचालित होकर मैं इतने दिनो तक बिना किसी विराम के उनकी योजना मे अपनी पूरी शक्ति से साथ देती आयी हूँ। मेरी इस कर्तव्य-परायणता से वह प्रसन्न ही है, ऐसा मेरा विश्वास है। इससे भिन्न कोई प्रश्न अगर तुम्हारे मन में है तो उसका उत्तर न मैं दे सकूँगी, न शायद तुम समझ ही पाओगी।" उसके स्वर में तीखापन होने पर भी, करुण विषाद का काफी पुट वर्तमान था, यह बात प्रमीला से छिपी न रही।

"बुआ, मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ तुम्हारी बात। मेरा प्रश्न निश्चय ही इससे भिन्न है, यह स्पष्ट ही तुम भी ताड़ गयी हो और तुम्हे उसका उत्तर मुझे देना ही होगा! मेरी भली सी बुआ, मुझे सब बताओ, कुछ छिपाओ मत!" कहती हुई प्रमीला करुणा से भींगे हुए स्नेह से विह्वल होकर सुनंदा से प्रायः लिपट गयी। आज उसका बहुत दिनों से भूला बचपन बुआ के आगे, शत-शत अन्तर-प्रतिरोधों के बावजूद मचल उठा था।

सुनन्दा की आँखें भर आयीं। प्रमीला ने अपने गद्गद स्नेह से उसके मर्म के भीतर के भी भीतर, और उसके भी भीतर छिपे हुए कोमलतम तार को झनझना दिया था।

"तुमसे क्या छिपाऊँ रानी, अवश्य ही इतने दिनों तक मेरे मन में कहीं न-कहीं यह इच्छा दबी हुई थी कि मेरे भीतर के जलते हुए रेगिस्तान मे, जहाँ चिनगारियों की तरह उड़ते हुए बालू के कणो के सिवा और कुछ नहीं हैं, वहाँ कहीं एक कोने में अगर तनिक हरियाली छा जाती! तब शायद जीवन कुछ दूसरे ही रूप में सामने आया होता। लखनऊ छोड़कर जब उनके साथ

यहाँ आयी तब अस्पष्ट—एकदम अस्पष्ट—सी आशा भी मेरे मन में वर्तमान थी कि शायद उस हरियाली के छाने का समय आ गया है। पर···आज ढाई वर्ष बीत चुके हैं, और भीतर वही दिगंत-प्रसारित जलती हुई रेत आँधियो के वेग से धायँ-धायँ, सायँ-सायँ की आवाज से उड़ी चली जा रही है! कई पीढ़ियों से बंजर पड़ी हुई जमीन तुम्हारे राजीव बाबू के दुर्दम कर्मोद्यम से आज लहलहा रही है! पर मेरे भीतर की जमीन एकदम सूखी और सूनी पड़ी है। बालू केवल बालू! पानी की बूँद भी कहीं नहीं है—हरियाली की कौन कहे!" कहते हुए एक अत्यन्त करुण मुसकान सुनन्दा के मुख पर झलक उठी!

प्रमीला ऐसी एकनिष्ठ गंभीरता से सुनन्दा की ओर देख रही थी जैसे उसकी आँखो के बाहर ही नहीं, बल्कि उनके भी भीतर अपनी दृष्टि गड़ाकर उसके अंतरतम की बात निकालना चाह रही हो।

"तब क्या राजीव बाबू के इतने निकट रहने पर भी उनसे किसी प्रकार के भी सम्बन्ध मे तुम नहीं बँध पाई हो?" अपनी आँखों मे विषाद म्लान उत्सुकता भरकर प्रमीला ने पूछा।

"क्यो नहीं," उसी करुण मुसकान के साथ, उसी क्षीण, उदास स्वर में सुनंदा ने कहा। "मै मुक्ति-निवेश में निवास करने वाले इतने बड़े सम्मिलित परिवार की भीतरी व्यवस्था की देखभाल करती रही हूँ और वह उसके बाहरी विस्तार की योजना मे दिन-रात जुटे रहते हैं।"

"बस, इसके सिवा और कोई सम्बन्ध तुम दोनो के बीच

इतने दिनों तक स्थापित न हो सका ?"

"यह क्या कोई साधारण सम्बन्ध है, रानी ? इससे बड़ा सम्बन्ध और क्या हो सकता है ! इससे उतरकर किसी छोटे—किसी व्यक्तिगत—सम्बन्ध के लिये कोई अवकाश उन्हें नहीं है। वह मध्याह्न के प्रखर सूर्य की तरह अपने विराट तेज से तपते हुए, पृथ्वी के चारो ओर अपनी जीवन-शक्ति-प्रदायिनी किरणें बिखेर रहे है, पर मेरे भीतर की मरुभूमि उनके प्रताप से तप्त होकर अधिक-अधिक जल उठती है । इसमें उनका क्या दोष है ? दोष है मेरे ही भीतर के सूखेपन का !" वही सूखी मुस-कान—मध्याह्न के सूर्य की किरणो से प्रकाशित बालुका-राशि के प्रकाश की तरह ही—सुनन्दा की आँखों में झलक उठी।

राजीव ने एक ट्रे में तीन प्यालो में चाय लाकर काठ के एक बक्स के ऊपर रख दी और स्वयं भी एक दूसरे बक्स के ऊपर बैठ गया। एक प्याला सुनन्दा की ओर और दूसरा प्रमीला की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा—"आग जलाने में कुछ देर हो गई । लकड़ी एकदम गीली है । कल जब मैं कुल्हाड़ी से चीर रहा था तब ऐसा लगा था कि लकड़ी गीली होने पर भी जलनेवाली है। पर यह मेरी भूल थी । नीम की लकड़ी गीली भी जल जाती है, पर आम की लकड़ी सूखी होने पर भी ठीक से नहीं जल पाती, फिर यह तो गीली है।"

"लकड़ी चीरने और लकड़ी जलाने की विद्याओं मे बड़ा अंतर होता है, प्रमीला," सुनन्दा ने स्पष्ट ही राजीव को सुनाने के उद्देश्य से कहा। "मैं जब से यहाँ आई हूँ तब से बराबर गीली

ही लकड़ी जलाने को मिली है। और नीम की लकड़ी यहाँ बहुत कम मिल पाती है—आम और महुआ ही ज्यादा चलता है। पर मुझे तो कभी कोई दिक्कत जलाने में महसूस नहीं हुई।"

"क्या राजीव बाबू स्वयं लकड़ी चीरते हैं ?" प्रमीला ने आश्चर्य से पूछा।

"लकड़ी स्वयं चीरता ही नहीं, पेड़ों को स्वयं काटता भी हूँ!" मुसकराता हुआ राजीव बोला।

"अच्छे लकड़हारे के साथ बुआ का पाला पड़ा !" कहकर प्रमीला ने दुष्टता-भरी मुसकान से एक बार सुनन्दा की ओर और फिर राजीव की ओर देखा।

राजीव "होः होः !" करके अट्टहास कर उठा। पर सुनन्दा के मुख पर मौन गंभीर छाया बनी रही।

राजीव को यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि कुछ ही समय पहले प्रमीला जिस मर्म-वेदना से पीड़ित हो रही थी उसे इतनी जल्दी भूलकर वह मीठी चुटकी लेने से बाज न आयी। यह तो स्पष्ट था कि अपनी जिस अन्तर्व्यथा का प्रदर्शन और वर्णन उसने किया था उसमे लेशमात्र भी कृत्रिमता नहीं थी, पर यह भी निश्चित था कि उसका परिहास भी वैसा ही सहज और स्वाभाविक था। यह कैसे सम्भव हो गया ? इस बहुत ही समझदार लड़की के भीतर की चपल बाल-प्रवृत्ति जीवन के कठिन आघातों के बावजूद हार नहीं मानना चाहती। आश्चर्य है!

"कैसी बनी है चाय ?" एक घूँट स्वयं पीने के बाद राजीव ने प्रमीला से पूछा।

' क्या सचमुच यह चाय है ?" प्रमीला ने पूछा । न तो चाय का रंग है न स्वाद ! आप चूल्हे से सम्बन्धित धन्धों की परीक्षा में 'फेल' ही रहे, राजीव बाबू !"

राजीव ने फिर एक बार ठहाका लगाया । "मैं किसी भी धंधे की परीक्षा में कभी 'पास' नहीं हो पाया, प्रमीला," उसने सहसा गंभीर होकर कहा । "आगे भी कभी किसी भी परीक्षा में 'पास' हो पाऊँगा, ऐसी आशा मुझे नहीं है । पर 'फेल' होने में भी जीवन की विशेष परिस्थितियों में एक विशेष सुख, एक विशेष प्रकार का सन्तोष होता है । इसीलिये बार-बार 'फेल' पर 'फेल' होते रहने के बाद भी मैं कभी परास्त नहीं हुआ और न हाथ पर हाथ रखकर ही बैठा रहा । कुछ व्यक्ति संसार में ऐसे भी पैदा होते हैं, जिनके जीवन की सार्थकता ही 'फेल' होने में है । मैं उन्हीं में से हूँ, प्रमीला ।"

अपने हलके से परिहास का ऐसा गंभीर उत्तर पाकर प्रमीला मौन हो गयी । सुनन्दा ने केवल एक बार कनखियों से राजीव की ओर देखा था, उसके बाद वह घूँट-घूँट करके तुलसी की पत्तियों की चाय पीती हुई, अत्यन्त गंभीर भाव से या तो अपने प्याले की ओर या प्रमीला की ओर देखती रही ।

चाय पी चुकने पर राजीव उठा । प्रमीला से बोला—"जरा भैंसों को सानी-पानी दे आऊँ, उसके बाद खाना बनेगा । अगर तुम्हें बहुत भूख लगी हो तो तुम्हारे लिये एक बड़े गिलास में दूध ले आऊँ ?"

"नहीं, मुझे तनिक भी भूख नहीं लगी है । जितनी देर में

खाना बने उतना ही अच्छा है।"

जब राजीव चला गया तब प्रमीला सुनन्दा के और निकट बैठ गयी। उसके बाद बोली—"यह सब क्या तमाशा चल रहा है, बुआ ? अपने ही हाथ से लकड़ी चीरना, अपने ही हाथ से भैंसों को सानी-पानी देना, अपने ही हाथ से खाना बनाना.. क्या कोई आदमी तुम लोगों को यहाँ काम करने के लिये नहीं मिलता ? इतनी बड़ी कालोनी के संचालक हैं राजीव बाबू, पर उनके लिये काम करने वाले आदमियों का ऐसा निपट अभाव है। यह आश्चर्य ही है।"

सुनन्दा एक रूखी हँसी हँसी, "उनके लिये काम करने वाले आदमियों का कोई अभाव नहीं है," उसने कहा। "निवेश के सभी लोग सुबह से शाम तक अपने-अपने मे कामों जुटे ही रहते है। पर इन्होंने किसी दूसरे के परिश्रम का तनिक भी लाभ न उठाने का नियम बना लिया है। इसके अतिरिक्त परिश्रम करने में इन्हें सचमुच आनंद प्राप्त होता है और तृप्ति मिलती है। जैसा कि तुमने अभी कहा, बाहर से देखनेवालों को यह सब एक तमाशा ही लगता है। और वह भी जानते हैं कि लोगों का दृष्टिकोण इस संबंध मे क्या हो सकता है। पर वास्तव मे यह तमाशा नहीं है, बल्कि उनकी सच्ची साधना-वृत्ति का फल है। 'कृच्छ्र साधना'— कुछ लोग कहेंगे और कहते भी हैं। पर उनके लिये इस साधना का मूल्य बहुत बड़ा है। निवेश के प्रत्येक व्यक्ति को वह इस साधना के लिये बराबर प्रेरित करते रहते हैं और निवेश के बाहर भी उसके महत्त्व का अधिकाधिक प्रचार किये जाने पर ज़ोर देते

रहते हैं। इतना तो मैं स्वयं भी जानती हूँ उनके इस स्वश्रम के आदर्श का ही यह फल है कि इस निवेश की स्थापना हो पायी और आज उसने ऐसा संगठित और व्यवस्थित रूप धारण कर लिया है। उनका कहना है कि यदि वह स्वश्रम के कठोर नियम मे एक क्षण के लिये भी ढीलापन आने दें तो निवेश की सारी व्यवस्था के बिखर जाने में कोई देरी नहीं लगेगी। स्वश्रम और सम-श्रम, इन दोनों आदर्शों का पालन इस निवेश में समान रूप से चलता है। कोई व्यक्ति किसी भी दूसरे व्यक्ति के श्रम पर निर्भर न करे और साथ ही सब संगठित और सम-विभाजित श्रम द्वारा संघबद्ध सहयोग और सामूहिक हित के लिये नियमित रूप से प्रयत्नशील रहे, यह आदर्श यहाँ चलता है। श्रम केवल श्रम! विश्राम के लिये इस निवेश मे तनिक भी गुञ्जाइश नहीं है!" अंतिम वाक्य कहते ही सुनन्दा की गंभीर मुद्रा व्यंग में परिणत हो गयी।

प्रमीला विस्मित और भ्रांत दृष्टि से सुनन्दा की ओर देख रही थी। ठीक से कुछ समझ नही पा रही थी, पर समझने के लिये भीतर-ही-भीतर जैसे छटपटा रही थी।

"यह आदर्श तो निश्चय ही महान् लगता है, बुआ, पर मैं सोचती हूँ कि तुमने कितनी बड़ी उलझन मे अपने को उलझा दिया," एक लंबी साँस भरती हुई प्रमीला बोली। "इस अतिमानुषी संगठित श्रम की क्या उपयोगिता तुम्हारे अपने लिये है!"

सुनन्दा के मुख पर फिर एक व्यंग्यात्मक रूखी मुसकान झलक गयी। "मैं पहले ही कह चुकी हूँ रानी, कि इस सङ्गठित श्रम ने पीढ़ियों से बंजर पड़ी हुई भूमि को लहलहाते खेतों में परिणत

कर दिया, ऊजड़ गाँव को एक नयी सृष्टि प्रदान कर दी, पर मेरे भीतर का रेगिस्तान अभी तक केवल जलती हुई चिनगारियों की सी धूल ही उड़ाता चला जा रहा है। पर राजीव बाबू के इस तर्क को हम क्यों भूल जायँ कि यहाँ समूह का ही महत्त्व है, और व्यक्ति को केवल प्रतीक के रूप में अपनी स्वतंत्र-सत्ता कायम रखते हुए, समूह में ही अपने को खपा देना होगा।"

"पर तुम क्या सचमुच इस आदर्श पर विश्वास करती हो?" प्रमीला ने पूछा।

"सामूहिक सम-श्रम के आदर्श के प्रति मेरा कोई अविश्वास नहीं है; बल्कि आंतरिक श्रद्धा ही है। पर व्यक्ति के पूर्णतया समूह में खप जाने की बात पर यदि मेरा विश्वास होता तो फिर शिकायत के लिये कोई गुंजाइश ही मेरे लिये कहाँ रह जाती। व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को एकदम मिटा देने का आदर्श तब तक मानव-समाज में सफलीभूत न होगा जब तक मानवीय सृष्टि का एकदम अन्त ही न हो जाय, मेरा यह दृढ़ विश्वास है। मानव-स्वभाव का विकास ही व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता के आधार पर हुआ है। जिस दिन कोई महान् विश्व-आदर्श उस वैयक्तिक स्वतन्त्रता की अनुभूति को मानव-मन से मिटा देने की असम्भवता को सम्भव बना देगा उस दिन जीवन का फिर कोई अर्थ ही मनुष्य के लिये नहीं रह जायगा। इस ज्वलंत तथ्य को जो महापुरुषगण भूल जाते हैं वे संसार में भ्रमजाल तो फैलाते ही हैं साथ ही अपने आपको भी कुछ कम धोखा नहीं देते। स्वयं तुम्हारे राजीव बाबू (सुनन्दा ने 'तुम्हारे' शब्द पर विशेष जोर दिया)

अपने अन्तर्मन में यह विश्वास नहीं करते होंगे कि मानव-समाज के महाकल्याण के लिये व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता को मिटाना ही होगा। यदि ऐसा होता तो वह सामूहिक सम-श्रम की महत्ता प्रचारित करने के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के स्वतंत्र स्वश्रम द्वारा स्वावलंबी बनने की बात पर जोर न देते...”

“तब बात क्या है, बुआ? तुम्हारे सम्बन्ध में वह इस तरह के अस्वाभाविक आदर्श की बात क्यों उठाने लग जाते हैं?”

सहसा सुनन्दा की आँखें जैसे जल उठीं। “असल बात यह है,” उसने कहा, “कि पुरुष चाहे कितना ही महान क्यों न हो, उसका यह युग-युग का संस्कार मिटना नहीं चाहता कि नारी व्यक्ति से भी कम है—उसके अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं उठता! अपने व्यक्तित्व को मिटा देने की जो बात आज के जन-आन्दोलनों के नेतागण कहा करते हैं वह नारी के सम्बन्ध में सामंतीय युग के भी पहले से मान्य होती आयी है और आज के युग तक उसी रूप मे मान्य है। इतने युगों के संघर्ष के बाद आज नारी में जो अपने नारीत्व की विजय की क्षीण चेतना जगी है उसे कुचलने के लिये विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न प्रकार के कूट उपाय काम में लाये जा रहे हैं। कहीं उन्हें स्वतंत्रता के नाम पर फैशन का गुलाम बनाया जा रहा है ताकि फैशन-परस्ती के मोह में पड़कर वे दूसरे क्षेत्रों में कूदने न पायें, कहीं उन्हें दाम्पत्य-क्षेत्र मे ऊपरी स्वतन्त्रता देकर भुलावे में रखा जा रहा है, कहीं उनकी ‘स्वतन्त्रता’ को कारखानों के बद्ध जीवन में भाग ले सकने तक सीमित रखा जा रहा है—केवल

चींटियो और मधुमक्खियो का सा यांत्रिक जीवन बिताने के लिये; कहीं उन्हें युद्ध की भी शिक्षा दी जा रही है—चींटियो के सङ्गठन के भीतर स्थित लड़ाकू वर्ग की सी अंध युद्ध-चेतना द्वारा उनके भीतर 'स्वतंत्रता' का भ्रम उत्पन्न करके सङ्कीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से! ठंढी विश्लेषणात्मक बुद्धि से सारे संसार के नारी आन्दोलनों पर दृष्टि डालने पर—आज के युग के किसी प्रगतिशीलतम राष्ट्र के नारी-समाज की स्थिति पर विचार करने पर भी मुझे तो यही दिखायी देता है कि आज की नारी की बाहरी शिक्षा और बाहरी स्वतन्त्रता के जितने भी तथाकथित उन्नत रूप हैं वे भी अंध-चेतना की बाह्य परिष्कृति—ऊपरी पालिश—के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, जो केवल भीतरी दासता के ऊपर स्वतन्त्रता का झोल है। नारी के भीतर नारीत्व की परिपूर्ण चेतना—विभिन्न राष्ट्रो के पुरुष-नियामकों द्वारा कूट उपायों से थोपी गयी किसी भी विवशता से रहित मूलतः स्वतंत्र सत्ता की भावना—अभी तक जग ही नही पायी है। उसे जगने ही नहीं दिया जा रहा है। विश्वव्यापी मानवीय स्वतंत्रता और समता के महान् आदर्श की कल्पना करने पर भी पुरुष मूल शक्ति को केवल अपने ही हाथो मे लिये रहने का स्वप्न देख रहा है। यह कल्पना ही न तो उसके सचेत मन मे न अंतर्मन में जग पाती है कि नारी को भी विश्व मानव-परिचालन की मूल शक्ति की बागडोर अपने हाथो ले लेने का उतना ही अधिकार है जितना कि वह अपने लिये महसूस करता है। मैं आजकल दिन-रात इन्हीं सब बातों

पर विचार करती रहती हूँ, रानी, और विचार करते करते मैं एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँची हूँ। वह यह कि नारी के सम्बन्ध में पुरुष की—और स्वयं नारी की भी—अंतरात्मा के अणु-अणु में समायी हुई यह युग-युगव्यापी भ्रांत धारणा तभी मिट सकती है जब नारी के भीतर प्रतिदिन, प्रतिपल प्रचंड हथौड़ों की चोटों से नारीत्व की परिपूर्ण स्वतन्त्रता की चेतना जगायी जाय, आज के संसार का सबसे अधिक प्रगतिशील नारी-समाज भी जो इस भ्रम में है कि वह नारीत्व की स्वतंत्रता के संबंध में पूर्णतया सचेत है—बल्कि पूर्णतया स्वतंत्र हो चुका है—उसके भ्रम को अत्यन्त निर्मम आघातों से चकनाचूर कर दिया जाय, और उसे समझाया जाय कि 'नहीं, अभी तुम झूठी स्वतन्त्रता के मोहजाल में बुरी तरह लिपटी हो जो पुरुष-परिचालित परतंत्रता का ही उन्नत रूप है, अभी तुम अर्द्ध-अज्ञात अवस्था में अर्द्ध-स्वप्नाच्छन्न स्थिति में ही बँधी हो, और सामूहिक हिप्नोटिक मनःस्थिति में किसी बाध्यता-वश यह समझ रही हो कि तुम पूर्णरूप से अपनी स्वतन्त्रता के संबंध मे सजग हो उठी हो। इसलिये सावधान हो जाओ, जागो, और अपने चारों ओर के इस हिप्नोटिक जाल को छिन्न-भिन्न कर डालो! परिपूर्ण चेतनावस्था प्राप्त करके संसार के सभी पार्थिव और अपार्थिव क्षेत्रों की मूलशक्ति अपने हाथों में लो! उसके बाद पुरुष-जाति उसमें हाथ बटाना चाहे तो अच्छा है, नहीं तो तुम अकेले अपनी स्वतन्त्र सत्ता पर निर्भर करके बढ़ी चलो!' रानी, इस संदेश के विश्वव्यापी प्रचार का व्रत मैं लेने जा रही हूँ। अपनी क्षीणतम शक्ति को मैं जिस हद तक भी

विकसा पाऊँ उस हद तक मैं उसे निरंतर प्रतिदिन, प्रतिपल इस विराट उद्देश्य की सफलता के उपयोग में लगाती रहूँगी। इसी महाव्रत की पूर्ति के लिये मैं निरन्तर अलख जगाती रहूँगी। यह ठीक है कि मेरे आगे हिमालय की तरह भीषण अवरोध खड़े हैं, फिर भी मैं अपने कर्त्तव्य-पथ से विमुख नहीं होऊँगी। यह भी निश्चित है कि मुझे अकेले विशेष सफलता नहीं मिल सकती, और जो थोड़ी बहुत संगिनियाँ मैं जुटा पाऊँगी उनके सहयोग से भी अधिक वज्र-अवरोध नही टूट सकेंगे। पर मेरा यह विश्वास है कि 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'…"

प्रमीला भ्रांत दृष्टि से सुनन्दा की उन्मादक आँखों की ओर देख रही थी और अतृप्त कानो से उसके एक-एक शब्द को पूरे मनोयोग से सुन रही थी । वह कभी स्वप्न में भी यह नही सोच सकती थी कि उसकी वही बुआ, जिसका प्रतिदिन का कार्यक्रम घर के सब लोगों के लिये चाय बनाने, रसोई और चूल्हे-चौके का प्रबंध करने, नोन-तेल-लकड़ी का हिसाब रखने, बच्चों को खेलाने और उनकी देखभाल करने तक ही सीमित था, वह आज विश्व-नारी के भीतर नारीत्व की पूर्णतः स्वतंत्र चेतना जगाने की विराट कल्पना कर रही है—केवल कोरी भावुकता-वश नही, बल्कि बौद्धिक विश्लेषण द्वारा भी वह अपने ध्येय का वास्तविक स्वरूप स्पष्टतया देख सकने मे समर्थ है । इस महाव्रत को वह किस हद तक निभा सकेगी, क्षुरधारा के समान तीक्ष्ण पथ पर कितनी दूर तक चल सकेगी, यह प्रश्न बिलकुल दूसरा है, पर इस संबंध की जिस धारणा को वह अपने भीतर बाँध पायी है वही

क्या अपने में कुछ कम महान् है ! कहाँ से पाया उसने इतना बड़ा बौद्धिक जाग्रत बल, इतनी चेतनशीलता और इतनी विशाल कल्पना ? प्रमीला सब कुछ सुनने और देखने पर भी जैसे स्वयं अपने कानों और आँखों पर विश्वास नहीं करना चाहती थी । कुछ क्षणों तक वह पत्थर की मूर्ति की तरह ही स्तब्ध दृष्टि से सुनन्दा की ओर देखती रही। उसके बाद प्रायः फुसफुसाती हुई सी बोली—"बुआ, तुम कभी, किसी भी बदली हुई परिस्थिति मे, इतनी दूर पहुँच सकोगी, इसकी कल्पना मैं नहीं कर सकती थी । तुम बहुत दूर पहुँच चुकी हो बुआ, और क्षितिज के पार न जाने किसी अलक्ष्य बिंदु तक तुम्हारी दृष्टि प्रसारित हो चुकी है। यह असंभवप्राय बात किस जादू से संभव हुई, बुआ ? इस जादू के जादूगर बहुत कुछ अंश तक राजीव बाबू हैं इतना अनुमान मै कर सकती हूँ, पर इसके अलावा भी निश्चय ही कोई और कारण है।"

"तुम्हारा अनुमान गलत नहीं है, रानी," सुनन्दा ने भाव-लोक के कुछ नीचे, यथार्थ की ओर उतरते हुए कहा । "तुम्हारे राजीव बाबू के प्रति मैं तनिक भी अकृतज्ञ नहीं हूँ । निश्चय ही उन्होने मेरी अंतरात्मा की जड़ता पर निरंतर हथौड़े चलाकर जो चेतना जगायी है वह केवल उन्हीं के समान दृढ़व्रती पुरुष द्वारा संभव हो सकती थी, इसे मैं अस्वीकार नहीं कर सकती । साथ ही मुझे लगता है कि मेरे भीतर बीज रूप मे स्वतंत्रता के जो तत्त्व वर्तमान थे वे उपयुक्त वातावरण और अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर पूर्णतया विकसित और जाग्रत होने में सफल हुए हैं…"

"पर राजीव बाबू के ही कारण यह पूर्ण विकास होने पर भी तुम्हारे भीतर उन्हीं के विरुद्ध विद्रोह की सी जो भावना जग उठी है, वह क्या अंततः तुम्हारे लिये कल्याणकर सिद्ध हो सकेगी ? और तुम्हारी स्वतंत्र नारी की चेतना को जगाने की योजना राजीव बाबू की सम-श्रम द्वारा उत्पन्न होने वाली संपूर्ण मानव-जातीय सम-व्यवस्था, सम-नियम और सम-अधिकार की योजना मे क्या बाधा-स्वरूप नही होगी ? क्या तुमने इस बात पर भी विचार करके देखा है ?"

"देखा है," अत्यन्त शांत भाव से सुनंदा ने कहा। "मेरा विश्वास है कि मेरी योजना अंततः उनकी व्यापक योजना की पूरक ही सिद्ध होगी, विरोधी नही। विरोध जो कुछ पड़ेगा वह उस आत्यंतिक स्थिति के आने के पूर्व ही समाप्त हो जायगा। मानवीय विकास की उस चरम और अंतिम स्थिति के आने के पूर्व उस विरोध को स्वाभाविक नियम क्रम से चलना ही पड़ेगा और अपने उद्देश्य की पूर्ति के बाद उस चरम स्थिति के पूर्व ही उसे पुरुष-परिचालित महायोजना मे ही मिल जाना होगा—पुरुष और नारी के वास्तविक अर्थ मे सम अधिकार की महासागरीय एक-रूपता मे विलीन होने के लिये। तुम्हारे राजीव बाबू अपने महा-स्वप्न को सफल करने के उद्देश्य से जिस बृहत् श्रम मे अपने को तद्गत भाव से खपा रहे है उसमें मैं उनका साथ पूरी लगन से देने के बाद भी उनके अज्ञात मन मे केवल एक साधारण साधना के रूप में वर्तमान हूँ, पर नारी की स्वतंत्र और जाग्रत चेतना को जगाने की ओर जब मेरे कदम बढ़ेंगे तब मेरी और मेरे वर्ग की

सत्ता के स्वतंत्र अस्तित्व की अनिवार्य आवश्यकता के प्रति उन्हें सचेत होना ही पड़ेगा। और मैं यही चाहती हूँ।"

प्रमीला को लग रहा था कि अपने जीवन और यौवन की व्यर्थता की जिस गढ़ैया में डूबने पर वह समस्त जग को डूबा हुआ समझने लगी थी वह सुनन्दा की महासागरीय कल्पना के आगे कितनी नगण्य है! सुनंदा का भी यौवन यथार्थ जीवन के निर्मम चक्रों के पेषण मे पिसने के कारण निष्फल सिद्ध हुआ है, उसकी सफलता की जो क्षीण आश शेष थी वह भी अब निःशेष हो चुकी है, सुनंदा की बातों से ऐसा लगता है; पर यौवन की वह महाव्यर्थता भी उसके जीवन को विफल बना सकने में हर तरह से असमर्थ प्रमाणित हुई है। और उसका अपना यह हाल है कि अपनी बचकानी खामखयाली के फेर में पड़कर वह जिस लघुप्राणी के विवाह-बंधन में स्वेच्छा से बँधी थी उसके आत्मघात करने पर उसे लगने लगा है कि जीवन की सारी सत्ता ही जैसे विलीन हो गयी और अब कहीं कुछ भी स्पंद शेष नहीं रह गया है जिसके सहारे वह एक पग भी कहीं गति पा सके! यह कितना बड़ा भ्रम था उसका! नहीं, वह अपने मन की इस निपट जड़ स्थिति में अब अधिक डूबी न रहेगी! नारी-जीवन की सार्थकता के जिस विराट क्षेत्र का चित्र उसकी आँखों के आगे सुनंदा ने खींचा है उसे सब समय ध्यान मे रखती हुई वह अपनी कूप-बद्धता से बाहर निकलेगी और मुक्ति के महापथ की ओर निरंतर अग्रसर होती चली जायगी।

प्रमीला के भीतर यह जो आकस्मिक प्रेरणा सौ-सौ प्रकांड

सर्चलाइटों के सम्मिलित प्रकाश की तरह चमक उठी उसने उसके प्राणों के मूल धातु को ही जैसे किसी अपूर्व, अलौकिक रहस्यमयी मायाशक्ति से मूलतः बदल दिया।

कुछ देर तक दोनो मौन बैठी रहीं। उसके बाद सुनन्दा उठी और बोली—"मैं जाकर जल्दी खाना तैयार किये देती हूँ। तुम तब कोई पुस्तक या पत्र लेकर पढ़ो।"

प्रमीला अपनी विवशता पर लज्जित हुई कि वह इस विषय में बुआ की तनिक भी सहायता नहीं कर सकती। इस तरह का काम उसने कभी सीखा ही नहीं था।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी, बुआ, मुझे भी यह सब काम सीखना है। आज से मुझे अपनी शिष्या बना लो।"

सुनन्दा सस्नेह मुसकरायी। उसके बाद दोनों रसोई के कमरे में चली गयीं।

\+ \+ \+

उस दिन प्रमीला ने राजीव के आगे अपना यह निश्चय प्रकट किया कि वह भी निवेश की ही एक सदस्या बनकर अपना सारा जीवन उसी के कामो लगा देना चाहती है। विजय जो सम्पत्ति छोड़ गया था वह सब निवेश को अर्पित कर देने के अपने सङ्कल्प से उसने राजीव को परिचित किया।

बस्ती के बीच में ही एक अलग और अपेक्षाकृत सुसज्जित कमरा प्रमीला को दे दिया गया और उस कमरे के अगल-बगल मे रहनेवाली स्वयंसेविकाओं को राजीव ने यह हिदायत दे दी कि वे प्रमीला को तब तक किसी भी बात का कष्ट न

होने दें जब तक वह पूर्णतः स्वावलंबी होने की आदतें डाल नहीं लेती।

चवालीसवाँ परिच्छेद

सुनन्दा के व्यवहार मे आकस्मिक परिवर्तन देखकर राजीव पिछले कुछ दिनो से बड़ा परेशान था। सुनन्दा उससे सीधे, प्रत्यक्ष सम्बोधन द्वारा कोई बात न करती थी। अपने-आप वह कुछ भी नहीं बोलती थी, पर राजीव के प्रश्न का उत्तर वह परोक्ष भाव से दे देती थी। राजीव ठीक से कुछ समझ ही नहीं पाता था कि मामला क्या है। सुनन्दा को वह इतने वर्षो से देख रहा है, और निश्चित रूप से इतना जानता है कि किसी तुच्छ कारण से वह ऐसा रुख अख्तियार नही कर सकती। निश्चय ही कोई बहुत बड़ा और गहरा कारण उसके लिये होना चाहिये। पर अपनी सारी व्यस्तता के बीच मे, जहाँ तक उसकी जानकारी है, सुनन्दा को इतनी बड़ी नाराजगी, ऐसे प्रचड अभिमान का कोई बड़ा क्या छोटा कारण भी उसने नही दिया है। तब बात क्या है? सोच-सोचकर उसकी बुद्धि चकराने सी लगी। पिछले दो दिनो से राजीव इस कोशिश मे था कि एकांत मे सुनन्दा से बातें करे जिससे सारी स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाय। पर रमला गिडवानी आयी हुई थी और जब जब वह सुनन्दा के अवकाश के समय उसके पास जाता तब तब उसे रमला के साथ बातो मे व्यस्त पाता था।

अन्त मे एक दिन वह जब दोपहर का खाना खा चुकने के

बाद, अपने सब आवश्यक काम स्थगित करके सुनन्दा के पास गया तब उसे अकेली पाकर वह जमकर बैठ गया। सुनन्दा कहीं जाने की तैयारी मे थी, ऐसा राजीव को लगा। उसने सोचा कि वह प्रतिदिन के अभ्यासवश निवेश के महिला-विभाग के कार्य का निरीक्षण करने और सभी कार्यकर्त्रियो को आवश्यकतानुसार सुझाव और सलाह देने के उद्देश्य से चक्कर लगाने की तैयारी मे होगी।

"नंदा, बैठो, आज कुछ अत्यन्त आवश्यक बातें तुमसे करनी है," राजीव ने कहा।

सुनन्दा शायद शाल खोज रही थी। उसने लौटकर राजीव की ओर देखा। राजीव के मुख पर अत्यन्त गभीर, चिताग्रस्त भाव देखकर वह भी भीतर ही भीतर शायद कुछ उद्विग्न सी हुई। पर बाहर से [illegible]वा भाव जताते हुए उसने धीमे और अस्पष्ट स्वर मे कहा—"क्या बात है ?"

'तनिक बैठो तो सही। जो बातें मै कहना चाहता हूँ वे व्यस्तता और हड़बड़ी के बीच मे नही कही जा सकती। आज कुछ समय के लिये नित्य-नैमित्तिक कार्यक्रम स्थगित कर दो। बाद मे उसके लिये बहुत समय मिलता रहेगा, पर जो बातें मै इस समय करना चाहता हूँ उनके लिये, संभव है, कभी समय न मिले।"

सुनन्दा की बाहरी उपेक्षा का भाव भी राजीव के मुँह से इस तरह की भूमिका सुनने के बाद जाता रहा। वह धीरे से अपनी खटिया पर बैठ गयी। राजीव उसके सामने काठ के एक बक्स पर बैठा हुआ था।

"नन्दा, मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ कि अचानक तुमने

इस तरह का रुख क्यों अख्तियार कर लिया।"

राजीव का स्वाभाविक धीर और शांत स्वर सुनन्दा को कुछ काँपता हुआ सा लगा। वह एकांत परीक्षण की सी दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी।

"किस तरह का रुख मैंने अख्तियार किया है?" उसी रुखाई के साथ वह बोली।

"मुझसे तुमने सीधे ढंग से बोलना तक छोड़ दिया है, मेरी किसी भी बात का कोई उत्तर भी तुम सहज भाव से नहीं देती हो। तुमसे मेरी कर-बद्ध प्रार्थना है, नन्दा, कि अभियुक्त को उसका अपराध बताये बिना ही, उसका बयान सुने बिना ही, सजा न दो! मुझे बताओ कि आखिर कौन महा-अपराध इस बीच मुझसे हुआ है।"

'मैंने न किसी को अभियुक्त ठहराया है न अपराधी, और न सजा देने की ही कोई बात है। मुझे अधिकार ही क्या है कि मैं किसी को कोई सजा दूँ! यह आरोप नितांत अनुचित है।"

"तुम्हारी नाराज़गी तुम्हारे बोलने के ढंग से स्पष्ट है, नन्दा," अत्यन्त शांत भाव, अतिशय करुण मुसकान मुख पर झलकाता हुआ राजीव बोला।

"अपने बोलने के ढंग के लिये मैं उत्तरदायी नहीं हूँ।" सुनन्दा की भौहें अभी तक टेढ़ी लकीर खींच रही थीं और वह आधी और तिरछी दृष्टि से राजीव की ओर देख रही थी।

"तुम अवश्य उत्तरदायी नहीं हो, इसके लिये उत्तरदायी है है तुम्हारे मन का बदला हुआ भाव। मैं उस बदले हुए भाव का

कारण जानना चाहता हूँ, नंदा ।" उसी करुण मुसकान के साथ राजीव ने कहा ।

इस बार सुनन्दा की आधी दृष्टि कुछ और खुली और तिरछी आँखें तनिक सीधी हुईं । "जो आदमी मन के भावो के बदलाव के सम्बन्ध में इतनी जानकारी रखता है," पहले से अधिक खुले हुए स्वर मे सुनन्दा बोली, "उससे कारण भी छिपा नहीं रहना चाहिये ।"

"मनोभावों के परिवर्तन का पता तो मुख-मुद्रा और बोलने के ढंग से ही लग जाता है । पर उस परिवर्तन का कारण खोज निकालने के लिये मनुष्य के अंतर्जगत् में गहरी डुबकियाँ लगाने की आवश्यकता होती है । और मैं बाह्य जगत् से संबंधित कामो मे और उनके चिन्तन में इतना अधिक उलझा हुआ रहता हूँ कि न अपने और न दूसरे के अंतर्जगत् से प्रवेश कर पाता हूँ । मेरे मस्तिष्क का विकास ही कुछ इस ढंग से हुआ है कि अंतर्जगत् की सूक्ष्मता का प्रतिबिब उस पर ठीक से पड़ ही नही पाता । यही कारण है कि मनुष्य की भीतरी दुनिया में प्रवेश करने—उसके मन के सागर मे डुबकियाँ लगाने—की कला से मैं कोसो दूर हूँ···"

सुनंदा अत्यन्त उदास भाव से, किन्तु पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखने लगी थी । उसकी बात के ढंग से वह तिलमिला उठी । तनिक तीखे स्वर में बोली—"पर इस कला से तुम तब अच्छी तरह परिचित थे जब लखनऊ में मेरे मन मे चलनेवाले द्वन्द्वों, मेरे भीतर उठने वाली आँधियों, मेरी अवचेतना में उमड़ उठने वाली तूफानी लहरों का ठीक-ठीक वर्णन और विश्लेषण तुम किया करते थे !"

राजीव का मुख गंभीर हो आया, और एक गाढ़ी छाया उसके मुख पर घिर आयी। कुछ क्षणों तक वह सुनन्दा के मुख पर उतरने और चढ़ने वाले रंगों से यह जानने का प्रयत्न करता रहा कि उसकी बात से क्या ध्वनि निकलती है, उसका इंगित ठीक किस ओर है।

"हो सकता है, सुनंदा," उसने एक हलकी-सी उसाँस भरते हुए कहा। "मेरे मन की तब की और अब की परिस्थितियों में बहुत अंतर आ गया है। मेरा विश्वास है कि यह अंतर ह्रास का नहीं बल्कि विकास का ही लक्षण है। क्योंकि वैयक्तिक मनुष्य के अंतर्द्वन्द्वों के विश्लेषण मे सफलता तभी मिल सकती है जब बाह्य जगत् के चिन्तन में बिखरी हुई मानसिक शक्तियों को बटोर कर उन्हें भीतरी जगत् की ओर केन्द्रित किया जाय और उसी भीतरी सीमा तक ही उसे बाँध दिया जाय। और ऐसा करने का अर्थ है विराट विश्व को एक अंतर्बिन्दु में समेट लिया जाय। मैं उस अंतर्बिन्दु की गहराई नापने और उसके मूल स्रोत का पता लगाने के फेर मे पड़कर अब उस विराट को खोना नहीं चाहता, जिसकी झाँकी बाह्य जगत् के कार्यक्षेत्र की विशालता में मुझे मिल चुकी है, और जिसे मैं प्रत्यक्ष जीवन मे अवतरित करना चाहता हूँ।"

"तब तुम्हारा क्या यही विश्वास है कि तुम्हारा वह 'विराट' मनुष्यों को कठपुतलों और कठपुतलियों में परिणत करके ही प्रत्यक्ष जीवन में अवतरित हो सकता है?"

"कदापि नहीं, मैं जाग्रत जीवन-चेतना से फड़कते हुए

मनुष्यों के बीच मे उसकी अवतारणा करना चाहता हूँ।"

"पर अंतर्जगत् के सुख-दुःख, स्नेह-प्रेम, राग-विराग, हास और रुदन, संवेदन और अनुभावन की प्रवृत्तियो की नितान्त उपेक्षा करके, केवल बाहरी योजनाओं की सफलता और बाहरी व्यवस्था के ध्येय की पूर्ति के उद्देश्य से ही मानवीय जीवन का अस्तित्व मान कर चलना जाग्रत जीवन-चेतना से फड़कते हुए मनुष्यों का काम नहीं है। यह केवल यंत्र-परिचालित मनुष्यो का काम है, क्या इतनी सीधी-सी बात भी तुम्हे समझानी पड़ेगी?"

"यह मैं मानता हूँ। पर सामूहिक हित के लिये, मनुष्य को अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख और राग-विराग की भावनाओ को विश्व-व्यवस्था की एक विशेष स्थिति के स्थापित हो जाने तक तिलांजलि देनी ही होगी।"

"अर्थात् उस स्थिति को पूर्णतया स्थापित होते-होते चाहे हजार वर्ष क्यो न लग जायँ, तब तक मनुष्यो को यंत्र-परिचालित कठपुतलों और कठपुतलियो का जीवन बिताना ही होगा?"

"ऐसी निराशाजनक धारणा तुम्हारे मन मे क्यों जमी हुई है कि उस स्थिति को आने मे हजार वर्ष लग सकते हैं?"

"हजार वर्ष लगेंगे या पाँच हजार यह कोई नहीं कह सकता। यह भी मैं नहीं कहती कि वह स्थिति जल्दी ही नहीं आ सकेगी। हो सकता है तुम अपनी अतिमानुषी शक्तियों के पूर्ण विकास द्वारा ऐसा विश्व-वातावरण उत्पन्न कर दो जिससे सौ-पचास वर्षों में, या उससे भी कम समय मे तुम्हारी सम-व्यवस्था और स्थायी शांति वाली योजना सफल हो जाय। पर

मैं यह जानना चाहती हूँ कि उस स्थिति को लाने के लिए उतने भी समय तक क्या मानव को पशुओं से भी जड़तर, निर्जीव यंत्रमय जीवन बिताना ही होगा ? क्या यह अनिवार्य है ? क्या ऐसा रास्ता नहीं निकाला जा सकता कि मनुष्य, मनुष्य की तरह ही—बल्कि उससे भी उन्नत और सुसंस्कृत—अन्तर्जीवन को अपनाने के साथ ही समानान्तर रूप से उस महान् योजना की सफलता की ओर बढ़ता चला जाय ? यदि ऐसा संभव नहीं है तो उसकी सारी बाह्य प्रगति का मूल्य ही क्या रह जायगा ? यंत्र-चालित कठ-पुतलों के प्रयत्नों से जो महा-व्यवस्था कायम होगी उससे मानवीय संस्कृति के महान् विकास की आशा करने के बराबर मूर्खता दूसरी क्या हो सकती है यह मैं नहीं जानती।"

सुनन्दा की आवाज तीव्र से तीव्रतर होती चली जा रही थी और भावोत्तेजना से उसकी आँखों की चमक भी उसी अनुपात मे उत्तरोत्तर प्रज्वलित रूप धारण करती जा रही थी।

राजीव उसके भाव-गंभीर तर्कों से कुछ डगमगाने लगा था। फिर भी उसे अपने ऊपर पूरा विश्वास था। इतने दिनो के चितन और कर्म-सङ्गठन से जो दृढ़ धारणा उसके मन मे जम चुकी थी उससे कोई भी शक्ति उसे विरत कर सकती है, यह वह नहीं मानता था, फिर किसी के भावुकतापूर्ण तर्क उसे विचलित कर सकते हैं यह बात तो उसकी कल्पना मे क्षण-भर के लिये भी नहीं आ सकती थी।

वह उसी काठ के बक्स के ऊपर जमकर बैठ गया। फिर अत्यन्त गंभीर मुद्रा मे, गुरु-गंभीर वाणी में बोला—"देखो नन्दा,

तुम्हारी बात भाव-जगत् में सही हो सकती है। भावुकता की कोई कमी मुझमें भी नहीं रही है, पर मैं मूलतः व्यावहारिक जगत् का आदमी हूँ। इसलिये मेरा निश्चित विश्वास है कि मानव-जीवन की यथार्थता का आधार है मानवीय श्रम। पत्थर के युग से लेकर आज तक मानव-जाति ने जो उन्नति की है उसके मूल में यही संगठित श्रम है। विराट पाषाण पर्वतो को तोड़-फोड़कर, जंगलो को काटकर, दलदल भूमि को सुखाकर, जमीन को जोतकर, सैकड़ो मील दूर से नदी की धारा उलटकर, क्रमशः नये-नये यान-वाहनो का आविष्कार और उपयोग कर, नये-नये यंत्रो का निर्माण करता हुआ हज़ारो लाखों वर्षों से मनुष्य निरन्तर प्रगति की ओर बढ़ता चला जा रहा है। यदि आदि काल से ही वह केवल भाव-जगत् मे मग्न होकर निष्कर्म अवस्था मे यह सोचता रहता कि सब कुछ अपने आप ठीक हुआ चला जा रहा है, मनुष्य-मात्र का जोवन सुखमय बनता चला रहा है, कहीं कोई अभाव किसी भी परिमाण में शेष नही है, सर्वत्र सुख, शान्ति और सन्तोष का ही अटल राज्य स्थापित हो रहा है, चारो ओर केवल चिदानंद ही चिदानंद छाता चला जा रहा है, तब क्या उस स्थिति मे सभ्यता का विकास इस हद तक सम्भव हो पाता ? संस्कृति की कल्पना इतने ऊँचे स्तर तक पहुँच पाती जहाँ तक वह आज पहुँची हुई है ? तनिक कल्पना तो करो कि जड़ता की उस स्थिति को अपनाने से आज मानव क्या उन विचित्र महा-पशुओ की अवस्था को प्राप्त न हो गया होता। जो जीवन की कठोर यथार्थ परिस्थितियों से अपने स्वभाव का मेल

न बैठा सकने के कारण इस धरातल से सदा के लिये विलुप्त हो गये ? मैं मानता हूँ कि जिस सभ्यता और जिस संस्कृति की स्थिति मे आज मानव पहुँचा हुआ है उसके भीतर अनेक अन्तर्विरोध और विडंबनाएँ वर्तमान है। पर उन अन्तर्विरोधों को दूर करने के प्रयत्नों को अपनाने के बजाय यदि हम समग्र बाह्य प्रगति को ही निन्दित ठहरायें तो क्या यह किसी भी रूप मे बौद्धिक दृष्टि से उचित है ?…"

राजीव अपनी बातों के आवेग मे स्वयं ही बहने लगा था। सुनन्दा उसके मुख की उस प्रकार की तेजोद्दीप्त अभिव्यक्ति को कई बार देख चुकी थी, और जब-जब देखती थी तब-तब वह उसे एकदम नया और आश्चर्यजनक रूप से सम्मोहक लगता था। इस समय भी वह चुम्बकाकर्षित-सी, मौन भाव से उसकी ओर एकटक देख रही थी।

राजीव कहता चला गया—"जिस अथक और अनवरत प्रवृत्ति ने, जिस श्रम-शक्ति की निरन्तर विकासशीलता ने, मानव को पत्थर के युग से वर्तमान युग में लाकर खड़ा किया है उसको जड़ता का लक्षण किसी भी रूप में मानने के लिये मैं तैयार नहीं हूँ। उसी के अविरत सञ्चालन का ही यह प्रभाव था कि मानव ने अपनी अन्तःप्रवृत्तियों का दमन और नियमन सीखा और उन्हे बाह्य परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के प्रयत्नों को बराबर जारी रखा। श्रम की प्रवृत्ति स्वभावतः कोई प्रिय प्रवृत्ति नहीं थी। पर महत्-जीवन के निर्माण मे उसकी परम उपयोगिता समझकर ही मानव उस श्रेय-पथ को अपनाता

आया है। और उस श्रेय-पथ मे चलने में भी एक विशेष सुख है, जिसका स्वाद कुछ बिरले ही सौभाग्यशाली लोगों को मिल पाता है। मैं वह स्वाद पा चुका हूँ, नन्दा, इसलिए किसी दूसरे सुख की कोई कल्पना ही मेरे मन मे नहीं उठ पाती। श्रम! केवल श्रम! जीवन के रुद्ध-स्रोतों को प्रवाह और गति केवल वही दे सकता है। जानती हो, नन्दा, जब मै तालाब के बद्ध जल को खेतो तक पहुँचाने के लिये नहर काट रहा था तब मेरे मन मे क्या भाव उपन्न हो रहे थे? मिट्टी खोदते हुए फावड़े की एक-एक चोट, पत्थरों को तोड़ते हुए हथौड़े का एक-एक आघात मेरे कानों में कह रहा था कि 'तुम्हारी बद्ध आत्मा की मुक्ति का पथ उन्मुक्त करती हुई लोहे की एक-एक दीवार टूटती चली जा रही है, विराट प्रस्तरों से दबे हुए विश्व-जीवन का एक-एक स्तर खुलता चला जा रहा है! खोदो! खोदो! तोड़ो! तोड़ो! तब तक विश्राम न लो जब तक इस तालाब की तरह ही बद्ध पड़ा हुआ काई-कलुषित जीवन मुक्त होकर सहज, सुन्दर, प्राकृतिक रूप मे सम-भाव से सम-व्यवस्था से समस्त विश्व में फैल नहीं जाता।' फावड़ों और हथौड़ों की वह आवाज मानव जीवन की व्यापक मुक्ति का महामन्त्र लिये हुए निरंतर मेरे भीतरी कानों की कंदराओं मे गूँजती रहती है।"

सुनन्दा को लग रहा था जैसे महाफावड़ो और महाहथौड़ो की आवाजें उसके भीतर भी अत्यन्त निर्ममता से गूँजने लगी हैं।" "बंद करो बंद करो इस आवाज को!"—उसके भीतर के किसी अज्ञात कोने से कोई भगोड़ा कराह उठा—"बंद करो, नहीं तो मेरे कानो के पर्दे फट जायेगे!"

जब तक अपने अन्तर के उस भगोड़े को वह शांत न कर पायी तब तक निश्चित दृष्टि से, मौन भाव से वह राजीव की ओर देखती रही। उसके बाद दृढ़ और निश्चित स्वर में बोली—"आप ठीक कहते हैं, राजीव बाबू! श्रम के प्रति जो विश्वास, जो लगन आप मे है वह निःसंदेह महान् है और उसके प्रति कोई विरोध मेरे मन में नहीं है। पर केवल एक बात को आप बराबर ध्यान मे रखियेगा, श्रम के प्रति अपनी तन्मयता मे भूल न जाइयेगा कि बाह्य जगत में श्रम के आवश्यकता से बहुत अधिक विकास और अंतर्जगत् में उसकी नितांत उपेक्षा का ही यह परिणाम है कि आज की अंतर-राष्ट्रीय आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ असन्तुलित होकर एक दूसरे से इस कदर उलझ रही है कि विश्व-जीवन मे भयकर विस्फोटक विषमताएँ उत्पन्न करती चली जा रही है और केवल व्यापक विनाश के साधनों को जुटाने में ही सफल हो पा रही हैं। इसलिये आप यदि कोई ऐसी विश्व-योजना चाहते हैं जो सम-श्रम द्वारा सच्चे अर्थों मे सम-कल्याण और स्थायी शांति की स्थापना करने में सफल हो तो बाहर के पार्थिव जीवन के विकास के साथ भीतर के भाव-जीवन के विकास की ओर भी उतना ही सचेष्ट रहें। विश्व के बद्ध जीवन को मुक्त करने के लिये केवल बाहर के तालाबों से नहर काटकर प्रवाह पथ मुक्त करने की ही आवश्यकता नहीं है, वरन् भीतर के बद्ध जलाशयों के जल के भी विकास और निकास की उतनी ही—शायद उससे भी अधिक—आवश्यकता है···"

राजीव देख रहा था कि सुनन्दा के जिस विरोधी भाव को

शांत करने के इरादे से आज वह ढाई वर्ष के बाद पहली बार अपने अविरत कर्मोद्यम जीवन मे तनिक अवकाश जुटाकर, जमकर बैठा था, वह शांत होने के बजाय उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जा रहा है। वह अपने जिस भाव को जितने आवेग से, जितने ही आंतरिक विश्वासपूर्ण तर्कों से उसके आगे रखता है उतना ही अधिक भाव-संघर्ष वह सुनन्दा के भीतर उत्पन्न कर रहा है। सुनन्दा का आज ढाई वर्ष बाद पहली बार उसे 'आप' संबोधन भी उसे कुछ कम नही खल रहा था। वह अपनी बात को फिर एक बार ठीक से समझाने और सुनन्दा को शांत करने के उद्देश्य से कुछ कहने ही जा रहा था कि सुनन्दा ने उसे देखते हुए सहज स्वर मे और स्वाभाविक भाव से फिर कहना आरंभ किया—

"और एक बात आज आप से कह दूँ, राजीव बाबू! कौन जानता है, फिर कभी उसे कहने का अवसर मिलेगा या नही। आपने अभी बताया कि आप जब तालाब का पानी खेतो मे लाने के लिये मिट्टी खोद रहे थे और पत्थरो को तोड़ रहे थे तब फवड़े की एक-एक चोट, हथौड़े का एक-एक आघात बद्ध जीवन का एक-एक द्वार तोड़ रहा था, एक-एक स्तर खोल रहा था, जो इस प्रकार मुक्ति का पथ विस्तृत कर रहा था। आपने यह भी बताया कि उस श्रम सुख के अतिरिक्त, जीवन मे किसी दूसरे सुख की चाह आपको नही रह गई है। आज आपकी इन बातों से मेरी यह धारणा, जो पिछले कुछ दिनो से जड़ पकड़ चुकी है, और अधिक पुष्ट होती है कि आपका और

मेरा पथ एक नहीं है। आप श्रम—केवल श्रम, और उसके द्वारा मुक्ति—केवल मुक्ति चाहते हैं। मैं जीवन मे श्रम भी चाहती हूँ और विश्राम भी, मुक्ति भी चाहती हूँ और बंधन भी। उस श्रम का क्या महत्त्व जिसके सुख का अनुभव विश्राम के एकांत क्षणों मे न किया जा सके! उस मुक्ति का क्या मूल्य जो सहस्रों बंधनों के बीच मे अपना आभास न दे सके! जानते हैं, राजीव बाबू, जब मैंने आपका साथ दिया था तब मेरे मन में क्या भावना छिपी थी? यह भूलकर भी न समझियेगा कि मैंने पारिवारिक जीवन के प्रतिदिन के तुच्छ बंधनों से मुक्ति पाने के इरादे से ऐसा किया था। आपने जिस बृहत् परिवार की अस्पष्ट झाँकी तब मेरे आगे रखी थी वह मेरे लिये प्रबल आकर्षक सिद्ध हुई। अपने प्रतिदिन के तुच्छ बंधनों को महाबंधनों मे परिणत करके मै महामुक्ति का स्वाद लेना चाहती थी। पर उसके मूल सूत्र के रूप मे मैं एक ऐसे व्यक्ति के कंधों का सहारा पकड़ना चाहती थी, जिसकी सबल मुष्टि उस महाबंधन को कसते रहने में सहायक सिद्ध हो—जो उसे किसी भी हालत में तनिक भी ढीला न होने दे। और इसी उद्देश्य से मैंने आपको पकड़ा था। पर आपने ऐन मौके पर मुष्टि को ढीला कर दिया और फलतः बंधन भी ढीला होता चला गया। आपने उस अंतर्बंधन का कोई मूल्य ही स्वीकार नही किया और उससे अपने को किसी भी रूप मे संबंधित नहीं होने देना चाहा। मुक्ति की ऐसी प्रबल आकांक्षा आपके भीतर घर किये हुए है! आपने केवल मेरे श्रम को स्वीकार किया मेरे प्राणों को नहीं। मेरी उपयोगिता आपके आगे

केवल इसी रूप मे आई कि आप मेरी गार्हस्थिक कार्यक्षमता से परिचित थे और उस क्षमता को एक बृहत् परिवार की व्यवस्था के लिये उपयोजित करना चाहते थे। आपने यह नहीं सोचा कि किसी भी कुटुम्ब की व्यवस्था वा सुचारु संचालन केवल जड़-बंधनों को मौन भाव से स्वीकार कर लेने वाले यन्त्र-परिचालित पुतलो और पुतलियो द्वारा नहीं होता। उन पुतलों के भीतर प्राण-स्पंदन कर सकने वाले, स्नेह-प्रेम, करुणा और ममता का अंतः-स्रोत निरंतर बहाते रहने वाले किसी महाप्राण-प्रेरक की आव-श्यकता मूल रूप में होती है। मैने उसी सूत्र मे आपको पाने की आशा इतने दिनो तक बाँध रखी थी। मैं मनुष्य हूँ, राजीव बाबू, कोई यंत्रचालित पुतली नही। मैने सारे पिछले बंधनो को तोड़कर जो आपका साथ दिया था, वह केवल इस मूलगत आशा से कि मेरे अंतर्जीवन की अनंत-प्रसारित जलती हुई मरुभूमि को भी आप अतःप्राणो के अविरल स्नेह-रस से सींच-सींच कर, बाहर की बंजर भूमि की तरह ही, उवरा और हरा-भरा बना पायेंगे। पर आपको तो केवल मेरे बाहरी जड़-श्रम की आवश्यकता थी, भीतर के स्नेह-रस-सिंचित आश्रम की नहीं।······"

प्रमीला और रमला गिडवानी ने सहसा भीतर प्रवेश किया। सुनदा और राजीव को एकांत वार्तालाप मे तल्लीन देख-कर रमला लौटना ही चाहती थी कि सुनन्दा ने संकेत से उसे ठहरे रहने को कहा। दोनो खड़ी रही। सुनन्दा राजीव को लक्ष्य करके कहती चली गई—"फिर भी मै आपके प्रति अकृतज्ञ नहीं हूँ। आपने नारी के प्राणो का मूल्य स्वीकार नही किया इस

भूल के कारण आप एक दिन पछतायेंगे, यह निश्चित है; हालाँकि इससे आपका तथाकथित महापुरुषत्व घटने के बजाय शायद बढ़ ही जाय। पर मैं कभी नहीं पछताऊँगी। आपने अपने ऊँचे दृष्टिकोण से जिस मुक्तिपथ का द्वार मेरे लिये खोल दिया था उसकी बहुत बडी आवश्यकता मुझको थी, क्योंकि उसीने उस महाबंधन का स्वरूप मेरे आगे स्पष्ट कर दिया जिसे मैं भावो नारी-समाज के महा अभियान पथ का चरम विश्राम—और मुक्ति भी—मानती हूँ। उसीने मुझे नारीत्व की उस महाचेतना का पाठ पढ़ाया है, जो नारी-समाज को पुरुषों की आश्रितावस्था से पूर्णतः मुक्त करके उसे पुरुषों के साथ केवल बाहरी सम-अधिकार ही नहीं बल्कि सम-चेतना भी प्रदान करेगी; जो नारीत्व के स्वाभिमान को पूर्णतया जगाकर नारी को पुरुष के अवलंबन से सर्वथा मुक्त करके, अंत मे उसकी परिपूर्ण स्वतंत्रता की महाकांक्षा की अत्यन्त सुन्दर सामञ्जस्यमूलक परिणति उसी विश्व-मंगलकारी महाबन्धन के रूप में करेगी जिसका उल्लेख मैं कर चुकी हूॅ। मैं आपको विश्वास दिलाती हूॅ, आपकी महायोजना से मेरी योजना का कोई मूलगत विरोध न होकर वह उसकी पूरक ही सिद्ध होगी। खैर···यह अच्छा ही हुआ कि आपको आज मेरी दो बातें सुन सकने का अवकाश मिल गया। मैं बहुत दिनों से आपके आगे अपने भीतर भरी पड़ी इतनी सब बातें खोलकर रखना चाहती थी, पर आपने कभी मौका ही नहीं दिया। जो भी हो···" कहती हुई सुनन्दा उठ खड़ी हुई, "मै अब चलती हूँ। रमला, तुम तैयार हो न ?"

"जी हाँ। 'बस' भी तैयार है।" रमला ने तनिक दबी हुई आवाज में अत्यन्त प्रेम और श्रद्धा भरे स्वर में कहा।

"तब ठीक है। अच्छा राजीव बाबू, नमस्ते!... प्रमीला, रानी..."

"बुआ, कहाँ चलने की बात कह रही हो?" प्रमीला ने रोने की-सी आवाज में कहा। वह सुनन्दा के एकदम समीप चली आयी और उसने दोनों हाथों से उसे जकड़ लिया, जैसे कसकर बाँध लेना चाहती हो।

सुनन्दा का जो स्वर बिजली की हजारों वोल्टवाली मशीन की तरह धड़धड़ाता हुआ चल रहा था वह सहसा एकदम दब गया और उसका गला भर आया। प्रमीला के सिर पर और पीठ पर हाथ फेरती हुई और अपनी भीगी पलकों से आँसुओं को गिरने से रोकने का प्रयत्न करती हुई सुनन्दा गद्गद स्वर में बोली—"रानी, तुम्हीं मुझे एक दिन उस मुक्तिपथ पर घसीट लायी थीं जिसकी कल्पना मेरे मन में थी, जिसकी प्रेरणा मुझे मिल चुकी थी, पर जिसकी ओर कदम रखने और बढ़ने की व्यावहारिक क्षमता मुझमे नही थी। तुमने बलपूर्वक मेरा हाथ घसीट कर उस पथ पर मुझे रख दिया था। ढाई वर्षों तक मैं उसी पथ पर चलती रही। पर अब देख रही हूँ कि वह पथ भी जैसे रुद्ध हो गया है। वह सडक जहाँ तक मुझे ले जा सकती थी, ले आयी है। अब उसकी सीमा तक पहुँचने पर मुझे लग रहा है कि लक्ष्य उसके भी बहुत आगे है। इसलिये मेरा पथ छोड़ दो, रानी, जो मार्ग तुमने सुझाया था उसके पूरक मार्ग की

और मुझे आगे बढ़ने दो ! मेरी भली सी रानी, फिर कभी जीवन में कहीं तुम से, उपयुक्त अवसर पर, भेंट होगी, ऐसा मेरी अंतरात्मा मुझसे कह रही है । इसलिये इस समय मुझे न रोको" मुझे विश्वास है कि राजीव बाबू के आश्रय में रहकर तुम भी एक दिन महामुक्ति का वही पथ अपने लिये खोज निकालोगी। पर मेरा समय हो चुका है।" कहकर सुनन्दा ने एक प्रकार से बरबस ही अपने को प्रमीला के बाहुपाश से छुड़ा लिया।

"रमला, चलो !" कहकर रमला का हाथ पकड़ कर सुनन्दा चलने लगी।

राजीव अब तक एकदम हतबुद्धि और हतप्रभ-सा, जड़ निश्चल अवस्था मे काठ के उसी बक्स पर बैठा था । वह बहुत सी बातें सुनन्दा की बातों के उत्तर मे कहना चाहता था, पर एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं फूट पाता था । उसकी जीभ को जैसे लकवा मार गया हो । उसे लग रहा था कि सुनन्दा ने कुछ ही मिनटों के भीतर जितनी बातें कही है उनका उत्तर देते देते उसे युग बीत जायगा और तब भी उत्तर पूरा नहीं होगा।

जब सुनन्दा रमला का हाथ पकड़ कर सचमुच जाने लगी तब राजीव की मोहाच्छन्नता भंग हुई। वह बिजली के वेग से सहसा उठ खड़ा हुआ और बोला—"सुनन्दा, तनिक ठहरो, एक बात सुनती जाओ, केवल एक अंतिम बात !"

पर सुनन्दा ने पीछे मुड़कर देखा तक नहीं, चलती ही रही।

"सुनन्दा, मुझसे सचमुच बड़ी ही भयंकर भूल हुई है, उसके

लिये मुझे क्षमा कर दो ! जाओ मत, रह जाओ। फिर यह भूल न होगी !"

सुनन्दा, ठिठककर ठहर गयी। मुड़कर उसने एक बार करुण और खीझ मिश्रित दृष्टि से राजीव की ओर देखा। फिर धीरे से, स्नेह-भरे तिरस्कार के स्वर में बोली—"राजीव बाबू ! आपको क्या हो गया ! छी-छी ! इतनी दुर्बलता का प्रदर्शन करते आपको लज्जा नहीं मालूम होती ? जाइये, निवेश के निवासियो के बीच मे तमाशा खड़ा न कीजिये। आपकी महायोजना के महापथ को रोकने की शक्ति हज़ारों सुनन्दाओ मे भी नहीं है। यह आप भी जानते हैं और मैं भी। इसलिये जाइए, और अपना प्रतिदिन का कार्यक्रम पूरा कीजिये !" कहकर सुनन्दा द्रुत पगों से आगे को बढ़ती चली गई। राजीव पाषाण मूर्ति की तरह जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। और प्रमीला भित्ति-चित्र सी मौन और निश्चल अवस्था मे सुनन्दा के बढ़ते हुए कदमों की ओर देखती रही।

—समाप्त—